हिन्दी का गद्य साहित्य

(Hindi Prose Literature)

शीतल शानू

हिन्दी का गद्य साहित्य

हिन्दी का गद्य साहित्य
(Hindi Prose Literature)

शीतल शानू

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5475-8

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल भारत के इतिहास के बदलते हुए स्वरूप से प्रभावित था। स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीयता की भावना का प्रभाव साहित्य में भी आया। भारत में औद्योगीकरण का प्रारंभ होने लगा था। आवागमन के साधनों का विकास हुआ। अंग्रेजी और पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव बढ़ा और जीवन में बदलाव आने लगा। ईश्वर के साथ साथ मानव को समान महत्त्व दिया गया। भावना के साथ साथ विचारों को पर्याप्त प्रधानता मिली। पद्य के साथ साथ गद्य का भी विकास हुआ और छापेखाने के आते ही साहित्य के संसार में एक नयी क्रांति हुई।

भारतेंदु काल में सामान्य जीवन से संबंधित विषयों पर गद्य लिखा जाने लगा और विषयानुसार भाषा-प्रयोग में वैविध्य लाया गया । गद्य का क्षेत्र व्यापक बना । नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, व्यंग्य आदि सभी कुछ लिखे जाने लगे।

इनके सभी लेखक अपनी-अपनी स्वच्छ प्रवृत्ति के अनुसार भाषा का प्रयोग करते रहे, मगर यह प्रयोग की स्थिति में ही रहा । गद्य का रूप निश्चित नहीं हो पाया था, साथ ही व्याकरण-व्यवस्था भी कमजोर बनी रही ।

राजा लक्ष्मण सिंह, राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद, देवकी नंदन खत्री, प्रताप नारायण मिश्र, लाला श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुंद गुप्त, बद्री नारायण चौधरी आदि भारतेंदु काल के प्रमुख गद्य लेखक रहे । भारतेंदु काल की भाषा-विषयक स्वच्छंदता तथा व्याकरण शिथिलता को मिटाकर हिंदी-भाषा की

स्थिरता तथा गद्य-साहित्य का वैविध्य प्रदान किया, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और 'सरस्वती' पत्रिका ने। इसी काल में कामता प्रसाद गुरु लिखित हिंदी का प्रामाणिक व्याकरण ग्रंथ प्रकाशित हुआ था।

हिंदी-ग्रंथ के परिष्कार के साथ आचार्य द्विवेदी ने प्रचलित विधाओं के अलावा विविध सामयिक तथा विज्ञान-विषयक निबंध, संस्मरण, आत्मकथा, पत्रकारिता आदि विषयों पर लिखने की प्रेरणा दी थी। समीक्षा विधा में विविध शैलियों का भी प्रवर्तन किया गया था। जैसे-विश्लेषणात्मक गवेषणात्मक निर्णयात्मक शैलियाँ। इस युग में अनुवाद का भी काम बढ़-चढ़कर हुआ।

इस प्रकार द्विवेदी युग में गद्य-साहित्य सर्वांगीण तथा बहुमुखी बना । इस युग के गद्यकारों में प्रेमचंद, श्यामसुंदर दास, चंद्रधर शर्मा ' गुलेरी पद्य सिंह शर्मा, सरदार पूर्ण सिंह, आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदि प्रमुख हैं। इस युग के कवियों में अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत आदि।

छायावाद को मध्यवर्गीय चेतना का विद्रोह कहा जाता है। काव्य-विधा में ही नहीं, अपितु गद्य-विधाओं में भी विद्रोह की वह छटा द्रष्टव्य है। भाषा में लाक्षणिक और कलात्मक शब्दावली को प्रश्रय मिला था। गद्य-साहित्य में जीवन के अंतद्वंद्वों की मनोवैज्ञानिक परख का स्वागत हुआ।

समीक्षा-विधा में रचनाओं के मूल्यांकन में कवि के दृष्टिकोण और वातावरण को भी मान्यता प्राप्त हुई। रेडियो-नाटकों तथा भाव-चित्रों का पर्याप्त विकास हुआ। ये विशेषताएँ महादेवी, प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, पं. बेचन शर्मा 'उग्र', राम कुमार वर्मा, नंददुलारे वाजपेयी, वियोगी हरि तथा रायकृष्ण दास की गद्य-कृतियों में प्रस्फुटित है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ। आशा करती हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखिका

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**हिन्दी उपन्यास का इतिहास**	**1**
	भारतेन्दु युग	1
	द्विवेदी युग	2
	प्रेमचन्द युग	4
	प्रेमचन्दोत्तर युग	8
	भारतेन्दु युग	14
	नवजागरण काल	15
	प्रमुख कवि	15
	जीवन परिचय	17
	प्रगतिशील लेखक	20
	प्रताप नारायण मिश्र	68
	हिन्दी के प्रति अनुराग	69
	मासिक पत्र का सम्पादन	69
	विचारात्मक शैली	71
	ठाकुर जगमोहन सिंह	73
	निबन्धकार	74
	जन्म तथा शिक्षा	76

व्यावसायिक जीवन 76
हिन्दी साहित्य में स्थान 77
द्विवेदी युग 80
द्विवेदी जी का योगदान 81
मूल्यांकन 88
मौलिक पद्य रचनाएँ 90
मौलिक गद्य रचनाएँ 91
अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' 92
सर्वाधिक प्रसिद्धि 93
अन्य साहित्यिक कृतित्त्व 94
जीवन परिचय 98
भाषा-शैली 101
कृतियाँ 102
हिन्दी साहित्य निर्माता 104
साहित्यिक विशेषताएँ 104
जीवन परिचय 109
मैथिलीशरण गुप्त 111
काव्य सौन्दर्य 115
पतिवियुक्ता नारी का वर्णन 117
विष्णुप्रिया खण्डकाव्य 122
2. हिन्दी निबन्ध का इतिहास 128
भारतेन्दु युग 128
प्रसाद-युग 133
3. हिन्दी नाटक का इतिहास 139
प्राचीन हिन्दी नाटक 139
आधुनिक हिन्दी नाटक 140
भारतेन्दु-युगीन नाटक 140
संस्कृत 146
भट्टनारायण 147
द्विवेदी-युगीन नाटक 148
पौराणिक नाटक 149

ऐतिहासिक नाटक 150
4. हिन्दी कहानी का इतिहास 169
प्रारम्भिक युग 169
5. हिन्दी एकांकी का इतिहास 177
भारतेन्दु-द्विवेदी युग 179
प्रसाद-युग 181
प्रसादोत्तर-युग 187
6. हिन्दी आत्मकथा का इतिहास 198
आरंभिक-युग 198
स्वतंत्रता-पूर्व युग 199
स्वातंत्र्योत्तर युग 200
7. हिन्दी यात्रा-साहित्य का इतिहास 202
आरंभिक युग 202
स्वतंत्रता-पूर्व युग 203
8. हिन्दी रिपोर्ताज का इतिहास 205
आरंभिक युग 205
9. हिन्दी रेखाचित्र का इतिहास 207
आरंभिक युग 207
उत्कर्ष युग 208
10. हिन्दी व्यंग्य का इतिहास 210
आरंभिक युग 210
स्वतंत्रता-पूर्व युग 211
स्वातंत्र्योत्तर युग 212
11. हिन्दी संस्मरण का इतिहास 215
आरंभिक युग 215

1

हिन्दी उपन्यास का इतिहास

भारतेन्दु युग

इस युग का नाम भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाम पर रखा गया था।इसी युग में हिंदी में पहली उपन्यास 'परीक्षा गुरु' लाला श्रीनिवासदास द्वारा लिखी गयी थी। हिंदी में भारतेंदु से पूर्व जो कथात्मक पुस्तकें लिखी गईं। वे आधुनिक उपन्यास और कहानी से मिलती-जुलती होने पर भी उनसे भिन्न थीं। वास्तव में उपन्यास और कहानी पश्चिमी साहित्य की देन है। भारतेन्दु युग में जो उपन्यास लिखे गये, उनमें उपन्यास विद्या का उचित निर्वाह न होने के कारण उन्हें सच्चा उपन्यास नहीं कहा जा सकता है। सच तो यह है कि हिन्दी में वास्तविक उपन्यास की रचना सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने ही की। यों, ऐतिहासिक दृष्टि से लाला श्रीनिवास दास का 'परीक्षा-गुरु' (1882 ई.) ही हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है। यह पश्चिमी उपन्यास की शैली पर आधारित है और यथार्थ जीवन का चित्र भी प्रस्तुत करता है, परन्तु कला की दृष्टि से बहुत अपरिपक्व है। इसमें उपदेश की प्रवृत्ति प्रधान है। 'परीक्षा-गुरु' के पूर्व भी 'देवरानी-जेठानी' (1872 ई.) 'रीति-रत्नाकर', 'वामा शिक्षक', 'भाग्यवती' आदि कुछ उपन्यास जैसी कथा-पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं परन्तु वे भी मुख्यत: शिक्षात्मक तथा अपरिपक्व हैं। भारतेन्दु ने भी 1866 ई. में कहानी 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' लिखने का यत्न किया था और चन्द्र प्रभा और पूर्ण प्रकाश शीर्षक मराठी उपन्यास का अनुवाद व

संशोधन भी किया था। उनकी प्रेरणा से राधा चरण गोस्वामी, गदाधर सिंह, राधाकृष्णदास, प्रतापनारायण मिश्र आदि ने बंगला के बहुत से उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया और मौलिक उपन्यास भी लिखे। इन लेखकों के अतिरिक्त बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री, रामकृष्ण वर्मा आदि और भी कई लेखकों ने बंगला उपन्यासों का अनुवाद किया। अंग्रेजी से भी कुछ उपन्यासों का अनुवाद हुआ।

भारतेन्दु काल के मौलिक कथा-ग्रन्थों और उपन्यासों में महत्त्वपूर्ण हैं–ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्याम स्वप्न' (काव्यात्मक गद्य-कथा), पं. बालकृष्ण भट्ट रचित 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान और एक सुजान' किशोरी लाल गोस्वामी का 'स्वर्गीय कुसुम', राधाचरण गोस्वामी का 'विधवा-विपत्ति', राधाकृष्ण दास का 'निःसहाय हिन्दू'।

द्विवेदी युग

द्विवेदी युग में भी मौलिक और अनुदित दोनों प्रकार के उपन्यासों का प्रकाशन हुआ। इस समय अधिकतर तिलस्म, ऐयारी, जासूसी और रोमांस के कथानक प्रस्तुत किए गए। उपन्यास घटना-प्रधान बना रहा। अंग्रेजी से भी साहसिक, जासूसी तथा प्रेमचर्या-प्रधान उपन्यासों का अनुवाद हुआ। इस युग के तीन उपन्यासकार बहुत प्रसिद्ध हैं–देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी। खत्री जी ने 'चन्द्रकांता', 'चन्द्रकांता-संतति' तथा 'भूतनाथ' नामक तिलस्म और ऐयारी के रोचक उपन्यास कई भागों में प्रकाशित किए। इन उपन्यासों के पहले भी भारतेन्दु काल में उन्होंने 'नरेन्द्रमोहनी', वीरेन्द्र वीर' आदि उपन्यास लिखे थे। हरेकृष्ण जोहरी आदि कई लेखकों ने उनके अनुकरण पर तिलस्मी उपन्यास लिखे। बहुत लोगों ने उनके मनोरंजक उपन्यास पढ़ने के लिए ही हिन्दी सीखी।

किशोरीलाल गोस्वामी ने सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। गोस्वामी जी के सामाजिक उपन्यास वस्तुतः नाम के ही सामाजिक हैं। उनमें समाज की बहुत ही स्थूल और ऊपरी झलक है, यथार्थ चित्रण नहीं। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के तथ्यों का उचित निर्वाह नहीं हुआ। देशकाल का भी ध्यान उन्होंने कहीं-कहीं नहीं रखा। कुछ उपन्यासों में समाज की कुरीतियों पर प्रहार करने का यत्न किया गया और यत्र-तत्र राष्ट्र-प्रेम की भावना भी है। परन्तु गोस्वामी जी के अधिकांश उपन्यास उत्तेजक शृंगार से युक्त हल्के मनोरंजन के साधन हैं। गोस्वामी जी ने लगभग पैंसठ उपन्यास लिखे हैं। उनमें

कुछ उपन्यासों के नाम हैं 'कुसुमकुमारी', 'हृदयहारिणी', 'लबंगलता', 'रजिया बेगम', 'तारा', 'कनक कुसुम', 'मल्लिका देवी', 'राजकुमारी', लखनऊ की कब्र', 'चपला', 'प्रेममयी'। जैसा कि नामों में प्रकट है ये उपन्यास नारी-प्रधान और श्रृंगारिक हैं। वास्तव में उनमें समाज और इतिहास के संदर्भ में कामुकता तथा विलासिता का अंकन हुआ है। उन्होंने 'उपन्यास' नामक पत्रिका भी निकाली थी जिसमें उनके पैंसठ छोटे-बड़े उपन्यास प्रकाशित हुए थे। आचार्य शुक्ल ने गोस्वामी जी के सम्बन्ध में लिखा है कि 'इस द्वितीय उत्थानकाल के भीतर उपन्यासकार इन्हीं को कह सकते हैं, परन्तु वस्तुतः उपन्यासकार की सच्ची प्रतिभा इनमें भी नहीं है।'

गोपालराम गहमरी 'जासूस' नामक पत्रिका प्रकाशित करते थे, जिसमें उनके साठ के लगभग उपन्यास छपे। अंग्रेजी के जासूसी उपन्यासों के अनुकरण पर उन्होंने 'जासूस की भूल', 'घर का भेदी', 'अद्‌भुत खून', 'भोजपुर की ठगी', आदि रहस्यपूर्ण, साहसिक और डकैती तथा ठगी की कथाएं निर्मित कीं। वैसे उन्होंने जासूसी उपन्यासों के क्षेत्र में भी आदर्श के निर्वाह और लोकोपकार की भावना के समावेश का यत्न किया और आदर्श जासूसों की सृष्टि की। गहमरी जी ने बंगला से गृहस्थ जीवन-सम्बन्धी कुछ उपन्यासों का अनुवाद भी किया था। दूसरी ओर द्विवेदी युग में कुछ ऐसे उपन्यासकार भी हुए, जिन्होंने अपनी रचनाओं में नैतिकता का ध्यान रखते हुए स्वच्छ-स्वस्थ सामग्री प्रस्तुत की। इस तरह के उपन्यासकारों में उल्लेखनीय हैं–हरिऔध, लज्जाराम मेहता और ब्रजनन्दन सहाय। हरिऔध जी ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' लिखकर इनमें मुहावरेदार ठेठ भाषा का नमूना भी पेश किया। मेहता जी ने सुधारवादी दृष्टिकोण से 'आदर्श हिन्दू', 'आदर्शदम्पति' और 'हिन्दू गृहस्थ आदि उपन्यास लिखे। ब्रजनन्दन सहाय के 'सौन्दर्योपासक' में काव्य का आनन्द मिलता है। स्पष्ट है कि गोस्वामी जी, गहमरी जी और खत्री जी के उपन्यासों में जहाँ स्थूल सौन्दर्य और उत्तेजक श्रृंगारिकता प्रस्तुत है वहाँ इन उपन्यासकारों के ग्रन्थ 'उपदेशात्मक भावना की छटा दिखाने वाले या काव्यात्मक हैं'। मानव चरित्र और मानव जीवन के सच्चे चित्रण और उपन्यास-काल की पूर्णता की ओर इस समय तक किसी का भी यथोचित् ध्यान नहीं गया था। इस काल में किशोरीलाल गोस्वामी के अतिरिक्त कुछ और लेखकों ने भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखें। इनमें उल्लेखनीय हैं–गंगाप्रसाद गुप्त का 'वीर पत्नी' और 'मिश्र बंधुओं के विक्रमादित्य', चन्द्रगुप्त मौर्य' तथा 'पुष्य मित्र'।

द्विवेदी युग में भी अधिकतर साधारण जनता के मनोरंजन और मनोविनोद के लिए घटना प्रधान उपन्यास ही लिखे गये। उनमें कथा का रस तो है, किन्तु चरित्र-चित्रण का सौन्दर्य, समाज का सही अंकन और उपन्यास का परिपक्व शिल्प नहीं। इस समय के उपन्यासकारों को न तो मानव जीवन का और न मानव स्वभाव का सूक्ष्म एवं व्यापक ज्ञान था और न उपन्यास की कला से ही उनका अच्छा परिचय था। इस काल में अधिकतर प्रेम प्रधान, साहसिक तथा विस्मयकारक (तिलस्मी-जासूसी) उपन्यास ही लिखे गये। ऐतिहासिक, शिक्षात्मक और काव्यात्मक उपन्यास भी लिखे गये, परन्तु कम। पात्र अधिकतर सौंदर्य के प्रति आकर्षित होने वाले विलासी प्रेमी-प्रेमिका और राजकुमार-राजकुमारी हैं या फिर ऐयार तथा जासूस। इस काल के उपन्यास भारतेन्दु काल के उपन्यासों की अपेक्षा रोचक और मनोरंजक अधिक हैं। शिक्षा देने की प्रवृत्ति भी कम है। प्रताप नारायण मिश्र, गोपालराम गहमरी, ईश्वरी प्रसाद शर्मा, हरिऔध, कार्तिक प्रसाद खत्री, रूप नारायण पाण्डेय, रामकृष्ण वर्मा आदि साहित्यकारों ने बंगला, अंग्रेजी और उर्दू आदि भाषाओं के उपन्यासों का अनुवाद किया। आचार्य शुक्ल का कथन है कि हिन्दी के मौलिक उपन्यास-सृजन पर इन अनुवाद कार्यों का अच्छा प्रभाव पड़ा और इसके कारण हिन्दी उपन्यास का आदर्श काफी ऊँचा हुआ।

प्रेमचन्द युग

द्विवेदी युग के अन्त तक (1917 ई. तक) हिन्दी के मौलिक और अनुदित दोनों प्रकार के उपन्यास काफी संख्या में लिखे जा चुके थे। मौलिक उपन्यास अनेक प्रकार के और अनेक विषयों पर थे। उपन्यास क्रमशः जीवन और समाज के निकट आ रहा था, परन्तु अब भी उसमें बहुत-सी, त्रुटियां थी। प्रेमचन्द के समय से विशेष कर उनके 'सेवासदन' के प्रकाशन काल (सन् 1918 ई.) से हिन्दी-कथा साहित्य में एक नये युग का आरम्भ होता है। प्रेमचंद ने ही उपन्यास में मानव मन का स्वाभाविक एवं सजीव अंकन आरम्भ किया। उन्होंने ही पहली बार हिन्दी उपन्यास में घटना और चरित्र का संतुलन स्थापित कर मनोविज्ञान का उचित समावेश किया। उन्होंने ही समाज की समस्याओं को सर्वप्रथम कथा-साहित्य में स्थापित किया। उन्होंने जीवन और जगत के विविध क्षेत्रों का, समाज के विभिन्न वर्गों का ग्रामीण तथा नागरिक क्षेत्रों की बहुत-सी दशाओं तथा परिस्थितियों का सूक्ष्म निरीक्षण कर व्यापक अनुभव प्राप्त किया था। मनोविज्ञान के वे पंडित थे। मानव-स्वभाव के विविध पक्षों से भली-भांति परिचित थे।

उपन्यास-कला का भी उन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था। पश्चिम के ताल्सताय, दोस्तोवस्की, तुर्गनेव, गोर्की, अनातोले प्रफांस आदि महान उपन्यासकारों की रचनाओं का भी उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था।

प्रेमचन्द प्रारम्भ में उर्दू के लेखक थे और कहानियां लिखते थे। उर्दू में उनके कुछ उपन्यास भी प्रकाशित हुए थे। बाद में उन्होंने हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया। उनके महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं–सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, गोदान और मंगलसूत्र (अपूर्ण)। प्रेमचन्द उपन्यास को मनोरंजन की वस्तु नहीं मानते थे। वे अपने उपन्यासों द्वारा भारतीय जनता के जागरण और सुधार तथा निर्माण की भावना का प्रसार करना चाहते थे। प्रेमचन्द मानवतावादी सहृदय व्यक्ति थे। वे गरीबी में पले थे, गरीबों के दु:ख-दर्द को समझते थे। समाज के निम्न वर्ग से उन्हें सहानुभूति थी। जीवन के अन्तिम समय में, जैसा कि उनके अन्तिम उपन्यासों ('गोदान' और 'मंगलसूत्र') से प्रकट है, उनका झुकाव साम्यवाद की ओर हो गया था और वे सच्चे अर्थ में यथार्थवादी और प्रगतिशील हो गये थे। अपनी पुस्तकों में प्रेमचन्द ने किसानों की आर्थिक दशा, जमींदारों और पुलिस के अत्याचारों, ग्रामीण जीवन की कमजोरियों, समाज की कुरीतियों, शहरी समाज की कमियों, विधवाओं और वेश्याओं की समस्याओं, नारी की आभूषणप्रियता, मध्यवर्ग की झूठी शान और दिखावे की प्रवृत्ति, सम्मिलित हिन्दू-परिवार में नारी की दयनीय स्थिति आदि प्रश्नों और पक्षों पर प्रकाश डाला। उन्होंने अपने कई उपन्यासों में गांव और शहर की कहानी, ग्रामीण और नागरिक जीवन की झांकी साथ-साथ प्रस्तुत की है। उनके उपन्यासों में कथानक सुगठित है चरित्र-चित्रण प्राय: मनोविज्ञान के अनुकुल सजीव और स्वाभाविक है। संवाद, पात्रों और परिस्थितियों के अनुसार हैं और भाषा सरल एवं व्यवहारिक है।

प्रेमचन्द की उपन्यास-कला की मुख्य विशेषताएं हैं–व्यापक सहानुभूति-विशेषकर शोषित किसान, मजदूर और नारी का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण, यथार्थवाद अर्थात् उपन्यास में जीवन का यथार्थ चित्रण, मानव-जीवन और मानव-स्वभाव की अच्छी जानकारी होने से सजीव पात्रों और सजीव वातावरण का निर्माण। चरित्र-चित्रण में नाट्कीय कथोपकथनात्मक तथा घटनापरक पद्धतियों का उपयोग, समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि पात्रों की सृष्टि, अपने व्यक्तित्त्व को पात्रों से पृथक् रखकर उन्हें प्राय: अपनी सहज-स्वच्छन्द गति से चलने देना, अनेकानेक सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं का चित्रण, समाज

के साथ पारिवारिक जीवन की सुन्दर अभिव्यक्ति, मानव-कल्याण की ओर संकेत करने वाले नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा और सरल व्यावहारिक भाषा का संग्रह। प्रेमचन्द युग के अन्य उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, प्रसाद, निराला, सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावन लाल वर्मा, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, सियारामशरण गुप्त, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', भगवती प्रसाद वाजपेयी, गोविन्दवल्लभ पंत, राहुल सांकृत्यायन और जैनेन्द्र। कोशिक जी के उपन्यास 'मां' और भिखारिणी नारी-हृदय का मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करते हैं। आचार्य चतुरसेन ने नारी की समस्या पर 'हृदय की परख', 'हृदय की प्यास', 'अमर अभिलाषा' आदि उपन्यास प्रारम्भ में लिखे थे। बाद में उनके बहुत से सामाजिक ऐतिहासिक और वैज्ञानिक उपन्यास प्रकाशित हुए। उनके कुछ उल्लेखनीय उपन्यास हैं–'गोली', 'वैशाली की नगर वधू' 'वयं' रक्षामः' 'सोमनाथ' 'महालय', 'सोना और खून' तथा 'खग्रास'। वृन्दावनलाल वर्मा ने इतिहास के तथ्यों की पूर्णतः रक्षा करते हुए कई महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है। उन्होंने 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी', 'कचनार', 'मृगनयनी', 'माधवजी सिंधिया' आदि उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। हिन्दी के कुछ अन्य उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यास हैं। जयशंकर प्रसाद का 'इरावती' (अधूरा), हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'चारु चन्द्रलेख', चतुरसेन का 'वैशाली की नगरवधू', 'राजसिंह', 'सोमनाथ', 'सह्याद्रि की चट्टानें', सेठ गोविन्ददास का 'इन्दुमती', राहुल सांकृत्यायन के 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय', सत्यकेतु दिद्यालंकार का 'आचार्य चाणक्य', रांगेय राघव का 'अंधा रास्ता', उमाशंकर का 'नाना फड़नवीस' तथा 'पेशवा की कंचना'।

प्रसाद जी ने 'इरावती' के पहले 'कंकाल' और 'तितली' नामक दो उपन्यास और लिखे थे, 'कंकाल' में हिन्दू नारी की असहाय स्थिति और धार्मिक पाखंड पर प्रकाश डाला गया है। 'तितली' में नारी-हृदय की महत्ता के उद्घाटन के साथ-साथ ग्राम-सुधार और यथास्थिति के विरुद्ध आन्दोलन की भावना है। प्रसाद जी मूलतः कवि हैं। उनके उपन्यासों में भी प्रायः जीवन की काव्यात्मक और भावपूर्ण व्याख्या मिलती है। निराला जी ने भी 'अप्सरा' 'अल्का', 'निरूपमा' आदि उपन्यास लिखे। इनके उपन्यासों में भी प्रसाद जी की भांति रोमांटिक वातावरण है। नारी को निराला जी ने महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव के प्रारम्भिक उपन्यासों में 'विदा', 'विसर्जन' और 'विजय' उल्लेखनीय हैं।

सियारामशरण गुप्त के 'गोद', 'अन्तिम आकांक्षा' और 'नारी' उपन्यासों में नारी, जीवन और उसकी सामाजिक स्थिति का मार्मिक अंकन हुआ है। साधारण मनुष्य में भी उच्च गुण दिखाने में गुप्त जी निपुण है। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के प्रारम्भिक उपन्यासों में पत्रात्मक शैली में लिखे 'चन्द हसीनों के खतूत' का विशिष्ट स्थान है। इसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रश्न उपस्थित करते हुए प्रेम का महत्त्व दिखाया गया है। उनके 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी', 'जीजी जी' आदि उपन्यासों में दुष्टों द्वारा भोली युवतियों को फंसाएं जाने की कथाएं हैं। सभ्य समाज की भीतरी दुर्बलताओं और दुष्प्रवृत्तियों का उन्होंने अच्छा उद्घाटन किया है। भगवती प्रसाद वाजपेयी के 'प्रेममयी', 'अनाथ स्त्री', 'त्यागमयी', 'पतिता की साधना' आदि शुरू के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष के रूपाकर्षण और प्रेम के चित्र हैं। उनके 'गुप्त धन', 'चलते-चलते', 'पतवार', 'उनसे न कहना', 'रात और प्रभाव', 'टूटते बन्धन' आदि कई उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। गोविन्दवल्लभ पंत के 'सूर्यास्त', 'प्रतिमा', आदि उपन्यास काफी पहले प्रकाशित हुए थे। बाद में भी उनके 'जल समाधि', 'नारी के सपने', 'मैत्रेय' आदि उपन्यास निकले हैं।

जैनेन्द्र के परख (सन् 1929 ई.) से हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक नई प्रवृत्ति का आरम्भ होता है। वस्तुतः यह उपन्यास एक लम्बी कहानी है जिसमें कट्टो नाम की देहातिन बाल विधवा के भावुकतापूर्ण आत्म-समर्पण का चित्रण किया गया है। जैनेन्द्र ने आगे चलकर कई महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'सुनीता', 'सुखदा', 'त्यागपत्र', विवत' आदि लिखे, जिनमें प्रायः स्त्री का पर-पुरुष की ओर झुकाव दिखाकर आधुनिक नारी के कण्ठाग्रस्त मन पर प्रकाश डाला है। मनोविश्लेषण की इस प्रवृत्ति का विकास किया इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय ने। प्रेमचन्द काल के उत्तरार्द्ध में इस क्षेत्र में आने वाले अन्य प्रतिभाशाली उपन्यासकार हैं। ऋषभचरण जैन (कैंदी गदर, भाई, भाग्य, रहस्यमयी, तपोभूमि, बादशाह की बेटी, सत्याग्रह, दिल्ली का व्याभिचार आदि), भगवतीचरण वर्मा (पतन, तीन वर्ष, चित्रलेखा, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, सबहिं नचावत राम गुसाई) राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह (राम-रहीम, पुरुष और नारी, टूटा तारा, सूरदास, संस्कार आदि)

इस काल में जो उपन्यास लिखे गए, उन्हें चार वर्गों में विभिक्त किया जा सकता है—यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, स्वच्छन्दतापरक उपन्यास और मनोवैज्ञानिक उपन्यास। उपन्यास-लेखन की बहुत-सी शैलियों

(ऐतिहासिक, आत्म-कथात्मक, पत्रात्मक आदि) का प्रयोग हुआ है। इस काल में यूरोप की अनेक समृद्ध भाषाओं (रूसी, अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि) से उपन्यासों का अनुवाद भी हुआ।

प्रेमचन्दोत्तर युग

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यास कई मोड़ों से गुजरता हुआ दिखाई पड़ता है। सन् '40 से' 50 तक की कालावधि के उपन्यास मुख्यत: फ्रायड और मार्क्स की विचारधारा से, सन् '50 से' 60 तक के उपन्यास प्रयोगात्मक विशेषताओं से और सन् '60 से' अब तक के उपन्यास आधुनिकतावादी विचारधारा से प्रभावित हैं। प्रेमचन्द समाज की स्वीकृत मान्यताओं के भीतर संघर्ष करते रहे। किन्तु प्रथम महायुद्ध के बाद पश्चिम के पुराने मूल्यों का तेजी के साथ विघटन हुआ। फ्रायड ने काम-सम्बन्धी मान्यताओं को नैतिकता-अनैतिकता से परे बताकर सामाजिक नैतिकता के आगे प्रश्नचिह्न लगा दिया। पूंजीवादी समाज में व्यक्ति-चेतना उभर कर सामने आई। मार्क्स ने समष्टि चेतना पर विशेष बल दिया। हिन्दी उपन्यास इन विचारधाराओं से प्रभावित हुए बिना न रहा। फलस्वरूप सन् '50 के' बाद उपन्यासकारों का ध्यान व्यक्ति और समाज की मुक्ति की ओर गया। किन्तु स्वतंत्रता के बीस वर्षों बाद भी मानव जीवन में एक विशेष प्रकार की कुण्ठा, निराशा, त्रस, अर्थहीनता आदि की अनुभूति होने के कारण सन् '60 के' बाद के उपन्यासों में इन्हीं मनोदशाओं का चित्रण किया गया। प्रेमचन्द-युग में ही जैनेन्द्र ने फ्रायड से प्रभावित होकर मानव-चरित्र के स्थान पर व्यक्ति-चरित्र की सृष्टि की थी। किन्तु सन् '51 में अज्ञेय के 'शेखर–एक जीवनी' के प्रकाशन के साथ ही, हम उपन्यास की दिशा में एक नया मोड़ पाते हैं। अज्ञेय के तीन उपन्यास प्रकाशित हुए हैं।–'शेखर–एक जीवनी' (दो भाग), 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी'। पहले दो उपन्यासों में व्यक्ति पात्रों के मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति है। तीसरी रचना में कोई सम्बद्ध कथानक नहीं है। अज्ञेय ने उपन्यास को पात्र-प्रधान बनाया और सामाजिक मानव के स्थान पर व्यक्ति-मानव के अन्तर्मन का विश्लेषण करने का यत्न किया।

इलाचन्द्र जोशी को उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठा 'संन्यासी' (1914) उपन्यास-प्रकाशन के द्वारा मिली। इन उपन्यासों में ही पहली बार मनोविश्लेषणात्मक पद्धति की विकृति देखी जा सकती है। 'सन्यासी' के अतिरिक्त 'पर्दे की रानी' (1941), 'प्रेत और छाया' 'निर्वासित', 'मुक्तिपथ' (1950) 'सुबह के भूले'

(1957), 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी' (1955) और 'ऋतुचक्र' उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। उनके उपन्यासों की विकास-यात्रा में 'मुक्तिपथ' एक नए मोड़ की सूचना देता है। 'मुक्तिपथ' के पूर्ववर्ती उपन्यास ग्रन्थियों के विश्लेषण पर आधारित है। उनकी भाव-भूमियाँ एकांगी, संकुचित और छोटी हैं। 'मुक्तिपथ' तथा उसके बाद जो उपन्यास लिखे गये, उनमें परिदृश्य का विस्तार और सामाजिकता का समावेश दिखाई पड़ता है।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में अपनी विशिष्ट विचारधारा, ईमानदारी और सर्जनात्मक शक्ति के कारण यशपाल ने स्वतंत्र व्यक्तित्त्व बना लिया। ऐतिहासिक दृष्टि से यशपाल को प्रेमचन्द उपन्यास-परम्परा की अगली कड़ी के रूप में माना जा सकता है। यशपाल का प्रारम्भिक जीवन क्रांतिकारी दल से सम्बद्ध था। वे इसके सक्रिय सदस्य थे, इसके लिए उन्हें चौदह वर्ष का कारावास भी मिला। कारावास काल में उनका सारा समय अध्ययन-मनन में व्यतीत हुआ। इसी समय मार्क्सवादी विचारधारा का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा। साहित्य के क्षेत्र में उतरने पर उन्होंने इसी विचारधारा को आगे बढ़ाया। उनके उपन्यास हैं–'अमिता', 'दिव्या', 'दादा कामरेड' (1941), 'देशद्रोही' (1943), 'पार्टी कामरेड' (1946), 'मनुष्य के रूप में' (1949), 'झूठा सच'–प्रथम भाग, 'वतन और देश' (1958), दूसरा भाग 'देश का भविष्य' (1960)।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' यशपाल की परम्परा में आते हैं। चढ़ती धूप, नई इमारत, उल्का और मरुप्रदीप उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। पर इनमें द्वन्दात्मक चेतना पूरे तौर पर नहीं उभरती। भगवतीचरण वर्मा प्रेमचन्दीय परम्परा के उपन्यासकार हैं। सन् 50 तक यह परम्परा चलती रही प्रेम चन्द ने अपने साहित्य में समसामयिक समस्याओं को चित्रित किया और वर्मा जी परिवर्तमान ऐतिहासिक धारा को मध्यमवर्ग के माध्यम से अंकित करते रहे हैं–मुख्यतः सन् 40 के बाद लिखे गये उपन्यासों में। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दाव' 'भूले-बिसरे-चित्र', 'सामर्थ्य और सीमा', 'सबहिं नचावत राम गुसाईं', मुख्य हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क को प्रेमचन्द-परम्परा का उपन्यासकार कहा जाता है। पर वे समग्र रूप से प्रेमचन्दीय परम्परा से नहीं जुड़ पाते। जहाँ तक मध्यवर्गीय परिवारों और व्यक्तियों की परिस्थितियों, समस्याओं और परिवेश का सम्बन्ध है, वहाँ तक वे प्रेमचन्दीय परम्परा के उपन्यासकार हैं प्रेमचन्द की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी, इसलिए प्रामाणिक भी। प्रेमचन्द के वैविध्य और जीवन-चेतना का इनमें अभाव है। 'सितारों के खेल' के बाद इनके कई उपन्यास प्रकाशित हुए हैं–गिरती दीवारें,

'गर्म राख' 'बड़ी-बड़ी आँखें', पत्थर अल पत्थर', 'शहर में घूमता आइना' और 'एक नन्हीं किन्दील'। 'गिरती दीवारें' इनका सर्वोत्तम उपन्यास है। गर्म राख, बड़ी-बड़ी आँखें, पत्थर अल पत्थर सुगठित उपन्यासों की श्रेणी में रखे जायेंगे। अन्तिम दोनों उपन्यास 'गिरती दीवारें' का विस्तार हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के आवर्त्त में पड़ा व्यक्ति कभी अपने को उनके अनुरूप ढालता है कभी उनसे आहत होता है, कभी छोटे-मोटे सुधारों के द्वारा समाज का परिष्कार करता है। वहाँ समाज प्रधान है, व्यक्ति गौण है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने व्यक्ति की सनकों, अन्तर्द्वन्द्वों को समाज से अधिक महत्त्व दिया है।

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के सापेक्षिक सम्बन्धों को चित्रित किया गया है। 'नवाबी मसनद', 'सेठ बाँकेमल', 'महाकाल', 'बूंद और समुद्र', शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर', 'एकदा नैमिषारण्ये' और 'मानस का हंस' उनके प्रकाशित उपन्यास हैं। अपने विस्तार और गहराई के कारण 'बूंद और समुद्र' विशेष महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है।

50 के बाद के दशक को आंचलिक उपन्यासों का दशक मान लिया जाता है। वस्तुतः इस समय के उपन्यासों वैयक्तिकता और सामाजिकता दोनों हैं। वैयक्तिक इसलिए कि वह पुराने नैतिक मूल्यों से मुक्त होकर खुले वातावरण में सांस लेना चाहता है, सामाजिक इसलिए कि अभी समाज को आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होने में लम्बी मंजिल तय करनी थी। देश के विभाजन के कारण जो नई समस्याएं उत्पन्न हुई, उन्हें भी औपन्यासिक रूप दिया गया। प्रवृत्तिक दृष्टि से इस दशक के उपन्यासों को तीन प्रवृत्तियों में बांटा जा सकता है–ग्रामांचल के उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास और प्रयोगशील उपन्यास।

ग्रामांचल समग्रता से चित्रित करने वाले उपन्यासों को ही आंचलिक कहकर आंचलिकता के अर्थ को सीमित कर दिया जाता है। फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आंचल' के प्रकाशन के पूर्व नागार्जुन का 'बलचनमा' (1952) प्रकाशित हो चुका था। पर इसे आंचलिक नहीं कहा गया। यद्यपि इसमें आंचलिकता का कम रंग नहीं है। नागार्जुन के उपन्यासों में दरभंगा-पूर्णिया जिले का राजनीतिक-सांस्कृतिक साक्षात्कार होता है। इनका मार्क्सवादी दृष्टिकोण गाँव की कहानी पर आरोपित प्रतीत होता है। कथानक स्वयं विकसित न होकर पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार चलता है। इसके फलस्वरूप उपन्यासों की सर्जनात्मकता शिथिल और अवरुद्ध हो जाती है। 'बलचनमा', 'रतिनाथ की

चाची', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'दुखमोचन', 'वरुण के बेटे' आदि उनके प्रकाशित उपन्यास हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों को ही सर्वप्रथम आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी गयी क्योंकि स्वयं रेणु ने ही 'मैला आंचल' को आंचलिक उपन्यास कहा। 'मैला आंचल' के प्रकाशन के बाद 'परती परिकथा' प्रकाशित हुआ।

उदयशंकर भट्ट का 'सागर, लहरे और मनुष्य' (1955) में बम्बई के पश्चिमी तट पर बसे हुए बरसोवा गांव के मछुओं की जीवन-गाथा वर्णित है। रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ' में जरायमपेशा नटों की जिन्दगी को उजागर किया गया है। नट जीवन और आधुनिक जीवन की असंगतियों को चित्रित करते हुए लेखक ने उज्ज्वल भविष्य का संकेत किया है कि शोषण की घुटन सदैव नहीं रहेगी। भैरव प्रसाद गुप्त का 'सत्ती मैया का चौरा' मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लिखा गया ग्रामांचल का ही उपन्यास है।

सातवें दशक में भी ग्रामांचल को आधार बना कर राही मासूम रजा, शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र आदि ने उपन्यास लिखे। राही का 'आधा गांव' शिया मुसलमानों की जिन्दगी पर लिखा गया है और शिवसाद सिंह की 'अलग-अलग वैतरणी' में आधुनिकता-बोध को सन्निविष्ट करने का प्रयास किया गया है। किन्तु इनके मूल स्वर त्रासद (ट्रेजिक) हैं। रामदरश मिश्र के 'जल टूटता हुआ' तथा 'सूखता हुआ तालाब' और देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिये' ग्रामांचलीय उपन्यास हैं। श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' पारंपरिक अर्थ में उपन्यास नहीं हैं। यद्यपि इसकी कथा ग्रामांचल से सम्बद्ध है। फिर भी यह आंचलिक नहीं है। रिपोर्ताज शैली में लिखे गये इस उपन्यास में स्वतंत्र देश की नवीन व्यवस्थाओं का मखौल उड़ाया गया है।

छठे दशक में देवराज मुख्यत: मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार की श्रेणी में आते हैं। धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता' मनोविज्ञान पर आधारित उपन्यास है, यद्यपि वह पांचवे दशक में प्रकाशित हुआ। भारती और देवराज दोनों के उपन्यासों का वातावरण महाविद्यालयीय है। 'गुनाहों का देवता' अपनी कैशोर्य भावुकता तथा रूमानियत के कारण काफी लोकप्रिय हुआ। 'पथ को खोज', 'बाहर भीतर', 'रोड़े और पत्थर', 'अजय की डायरी' और 'मैं, वे और आप' देवराज के उपन्यास हैं। इन सभी उपन्यासों की मूलवर्तिनी धारा है–विवाह के बाहर का प्रेम।

मन्मथनाथ गुप्त, भैरव प्रसाद गुप्त, अमृतराय, लक्ष्मीनारायण लाल, राजेन्द्र यादव आदि नवीन सामाजिक चेतना के उपन्यासकार हैं। भैरव प्रसाद गुप्त के

'मशाल', 'गंगा मैया', 'सती मैया का चौरा', अमृतराय के 'बीज', 'नागफनी का देश', 'हाथी के दांत' संघर्ष और प्रगति के मिथक के सूचक हैं। लक्ष्मीनारायण लाल के 'धरती की आँखें', काले फूलों का पौधा', रूपाजीवा' में उपर्युक्त स्तर की सामाजिक चेतना को उभारने की कोशिश है। 'काले फूलों का पौधा' चरित्र-चित्रण, संस्कृति-संघर्ष और नव्यतर तकनीक के कारण विशिष्ट बन पड़ा है।

'प्रेत बोलते हैं', 'सारा आकाश', 'उखड़े हुए लोग' और 'एक इंच मुस्कान' राजेन्द्र यादव के उपन्यास हैं। 'एक इंच मुस्कान' यादव और मन्नू भंडारी का सहयोगी लेखन है। इसमें खंडित व्यक्तित्त्व वाले आधुनिक व्यक्तियों की प्रेम-त्रासदी (ट्रेजिडी) है। आधुनिक जीवन की इस त्रासदी को अंकित करने के कारण यह उपन्यास यादव के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा कहीं अधिक समकालीन और महत्त्वपूर्ण है।

कविता में नए प्रयोगों के साथ-साथ कहानी-उपन्यास आदि में भी नये प्रयोग हुए हैं। अब कहानी का तत्त्व क्षीण हो गया है, कथानक का पुराना रूप विघटित होकर नया हो गया है। अब जिन्दगी पूरे तौर पर विश्लेषित न होकर चेतना प्रवाह, स्वप्न सृष्टि के साथ जुड़ गई है, प्रतीक, कालांतर आदि के द्वारा उपन्यासों में नए शिल्प के दर्शन हुए हैं। इस प्रयोग-संपर्क में प्रभाकर माचवे के परन्तु', 'साँचा' और आभा', भारती का 'सूरज का सांतवा घोड़ा', गिरधर गोपाल का 'चांदनी रात के खंडहर', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल' नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' आदि अनेक प्रकार की विसंगतियों से भरे हुए प्रयोगशील उपन्यास हैं। उद्योगीकरण, महानगरीय सभ्यता, बदले हुए मानसिक परिवेश और भ्रष्ट व्यवस्था के कारण आज व्यक्ति यांत्रिक, अजनबी, अकेला या विद्रोही हो गया है। इसकी अभिव्यक्ति मुख्यत: साठोत्तरी साहित्य में होती है, भले ही उपन्यास, नाटक की अपेक्षा इसका तेवर कविता और कहानी में ही अधिक तेजस्वितापूर्ण दिखाई देता है। इस प्रकार के उपन्यासों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है–

(1) यौन विकृतियों में पनाह खोजने वाले उपन्यास–मोहन राकेश के 'अन्धेरे बन्द कमरे', 'न आने वाला कल' और 'अन्तराल', निर्मल वर्मा का 'वे दिन', महेन्द्र भल्ला का 'एक पति के नोट्स' राजकमल चौधरी के 'मछली मरी हुई' और 'शहर था शहर नहीं था', श्री कान्त वर्मा का 'दूसरी बार', ममता कालिया का 'बेघर', गिरिराज किशोर का 'यात्राएं' मणिमधुकर का 'सफेद

मेमने', कृष्णा सोबती का 'सूरजमुखी अंधेरे के' आदि उपन्यास इसी कोटि के हैं। इन उपन्यासों के प्राय: सभी नायक मानसिक दृष्टि से अनिर्णयात्मक, आत्म-निर्वासित और नपुंसक हैं। वे मुक्त होने की प्रक्रिया में ऐसी उलझन में फंस जाते हैं, जहां से उन्हें निष्कृति नहीं मिलती। इन उपन्यासों से आधुनिकता का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है, उसमें स्त्री-शरीर 'नशे' या 'ड्रग' का काम करता है। राकेश को छोड़कर शेष उपन्यासों में प्रामाणिकता की भी कमी है।

(2) दी हुई मानवीय स्थितियों में बेमेल व्यक्तियों को चित्रित करने वाले उपन्यास—इस श्रेणी में ऊषा प्रियंवदा का 'रुकोगी नहीं राधिका'और मन्नू भंडारी के 'आय बंटी'की गणना की जाएगी। इन उपन्यासों की आधारभूमियां ठोस और प्रामाणिक हैं।

(3) व्यवस्था की घुटन को अपनी नियति मानने या उसके विरुद्ध युद्ध करने वाले उपन्यास—नरेश मेहता का 'वह पथ बन्धु था', गोविन्द मिश्र का वह 'अपना चेहरा', बदीउज्जमा का 'एक चूहे की मौत', काशीनाथ सिंह का 'अपना मोर्चा, नरेन्द्र कोहली का 'आश्रितों का विद्रोह' आदि उपन्यास इस कोटि के अन्तर्गत आते हैं। लक्ष्मीकान्त वर्मा ने भी कई प्रयोगशील और प्रतिबद्ध उपन्यास लिखे हैं।

इनके अतिरिक्त गिरिराज किशोर का 'जुगलबन्दी' और 'ढाई आखर', लेख बख्शी का 'वैशाखियों वाली इमारत', देवराज उपाध्याय का 'दूसरा सूत्र' और 'अजय की डायरी' कमलेश्वर का 'डाक बंगला' और 'काली आंधी' और मन्नू भंडारी का 'महाभोज' श्री लाल शुक्ल का 'मकान' शिवप्रसाद सिंह का 'नीला चाँद' आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं। रमेश चौधरी आरिगमूडि, ओंकार शरद, मार्कण्डेय, मुद्राराक्षस, आनन्द प्रकाश चौबे, श्रीलाल शुक्ल, मोहन सिंह सेंगर, सत्येन्द्र गुप्त, राजेन्द्र अवस्थी, हंसराज रहबर, रामदरश मिश्र, मनहर चौहान, शिवप्रसाद सिंह, राही मासूम रजा, शिवानी आदि उपन्यास के क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रहे हैं। यूरोप के पुराने और नये उपन्यासों के अनुवाद का कार्य भी हो रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास का युग प्रयोग का युग रहा। जीवन-मरण सम्बन्धी पुराने सभी मत मतान्तरों को चुनौती दी गई है। महानगरीय अकेलापन, अत्यधिक निकटता में अजनबी पन, विसंगति, संत्रास यांत्रिक तटस्थता आदि का चित्रण किया गया है। बाह्य यथार्थ की अपेक्षा आन्तरिक यथार्थ को अधिक महत्ता दी गई है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'सोया

हुआ लाल', लक्ष्मी नारायण लाल का 'हरा समन्दर गोपी चन्दर' जैसे आधुनिक उपन्यासों में कथा का ह्रास हुआ है कथानक का नहीं। उपन्यासों में पीढ़ियों का वैचारिक मतभेद, पति-पत्नी, भाई-बहन, माँ-बाप के सम्बन्ध में दोहरा व्यक्तित्त्व, अन्तः-बाह्य संघर्ष, मिल मालिक और मजदूरों का संघर्ष, कृषकों का जागरुक होना पुलिस की धांधलियाँ, महाजनों के धन शोषण के तरीके महानगर, कस्बे और गाँवों के परिवर्तन को समग्रता में रेखांकित किया गया है। उपन्यासों में पूर्वदीप्ति शैली, आत्म-कथात्मक शैली, संकेत शैली, प्रतीक शैली द्वारा मानवीय संवेदना को उभारा गया है। विषय और शैली दोनों दृष्टियों से आज के उपन्यास समृद्ध दिखाई देते हैं।

भारतेन्दु युग

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल के प्रथम चरण को 'भारतेन्दु युग' की संज्ञा प्रदान की गई है और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। भारतेन्दु का व्यकितत्त्व प्रभावशाली था, वे सम्पादक और संगठनकर्ता थे, वे साहित्यकारों के नेता और समाज को दिशा देने वाले सुधारवादी विचारक थे, उनके आस-पास तरुण और उत्साही साहित्यकारों की पूरी जमात तैयार हुई, अतः इस युग को भारतेन्दु-युग की संज्ञा देना उचित है। डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है कि 'प्राचीन से नवीन के संक्रमण काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारतवासियों की नवोदित आकांक्षाओं और राष्ट्रीयता के प्रतीक थे, वे भारतीय नवोत्थान के अग्रदूत थे। जय भारत जय भारती जिस समय खड़ी बोली गद्य अपने प्रारम्भिक रूप में थी, उस समय हिन्दी के सौभाग्य से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। उन्होंने राजा शिवप्रसाद तथा राजा लक्ष्मण सिंह की आपस में विरोधी शैलियों में समन्वय स्थापित किया और मध्यम मार्ग अपनाया।

इस काल में हिन्दी के प्रचार में जिन पत्र-पत्रिकाओं ने विशेष योगदान दिया, उनमें उदन्त मार्तण्ड, कवि वचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन अग्रणी हैं। इस समय हिन्दी गद्य की सर्वांगीण प्रगति हुई और उसमें उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, आलोचना, जीवनी आदि विधाओं में अनुदित तथा मौलिक रचनाएं लिखी गयीं।

आधुनिक हिंदी काव्य के प्रथम चरण को 'भारतेन्दु युग' की संज्ञा प्रदान की गई है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र को हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि

माना जाता है। उन्होंने 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और 'हरिश्चंद्र पत्रिका' भी निकाली। इसके साथ ही अनेक नाटकों आदि की रचना भी की। भारतेन्दु युग में निबंध, नाटक, उपन्यास तथा कहानियों की रचना हुई।

नवजागरण काल

भारतेंदु काल को 'नवजागरण काल' भी कहा गया है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के संक्राति काल के दो पक्ष हैं। इस समय के दरम्यान एक और प्राचीन परिपाटी में काव्य रचना होती रही और दूसरी ओर सामाजिक राजनीतिक क्षेत्रों में जो सक्रियता बढ़ रही थी और परिस्थितियों के बदलाव के कारण जिन नये विचारों का प्रसार हो रहा था, उनका भी धीरे-धीरे साहित्य पर प्रभाव पड़ने लगा था। प्रारंभ के 25 वर्षों (1843 से 1869) तक साहित्य पर यह प्रभाव बहुत कम पड़ा, किन्तु सन् 1868 के बाद नवजागरण के लक्षण अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे थे। विचारों में इस परिवर्तन का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है। इसलिए इस युग को 'भारतेन्दु युग' भी कहते हैं। भारतेन्दु के पहले ब्रजभाषा में भक्ति और श्रृंगार परक रचनाएँ होती थीं और लक्षण ग्रंथ भी लिखे जाते थे। भारतेन्दु के समय से काव्य के विषय चयन में व्यापकता और विविधता आई। श्रृंगारिकता, रीतिबद्धता में कमी आई। राष्ट्र-प्रेम, भाषा-प्रेम और स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम कवियों के मन में भी पैदा होने लगा। उनका ध्यान सामाजिक समस्याओं और उनके समाधान की ओर भी गया। इस प्रकार उन्होंने सामाजिक राजनीतिक क्षेत्रों में गतिशील नवजागरण को अपनी रचनाओं के द्वारा प्रोत्साहित किया।

प्रमुख कवि

भारतेन्दु हरिश्चंद्र, बाबा सुमेर सिंह, बद्री नारायण प्रेमघन (1855-1923), प्रताप नारायण मिश्र (1856-1894), राधाकृष्ण दास (1865-1907), अंबिका दत्त व्यास (1858-1900) और ठाकुर जगमोहन सिंह (1857-1899) इस युग के प्रमुख कवि थे। अन्य कवियों में रामकृष्ण वर्मा, श्री निवासदास, लाला सीताराम, राय देवी प्रसाद, बालमुकुंद गुप्त, नवनीत चौबे आदि हैं। इस काल के लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, राधा चरण गोस्वामी, उपाध्याय बद्रीनाथ चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्रीनिवास दास, देवकीनन्दन खत्री और किशोरी लाल गोस्वामी आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से अधिकांश लेखक होने के साथ-साथ पत्रकार भी थे।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र का योगदान

भारतेन्दु युग के पूर्व कविता में रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं। अतिशय श्रृंगारिकता, अलंकार मोह, रीति निरुपण एवं चमत्कार प्रियता के कारण कविता जन-जीवन से कट गई थी। देशी रियासतों के संरक्षण में रहने वाले कविगण रीतिकाल के व्यामोह से न तो उबरना चाहते थे और न ही उबरने का प्रयास कर रहे थे। ऐसी परिस्थितियों में भारतेन्दु जी का काव्य-क्षेत्र में पदार्पण वस्तुतः आधुनिक हिन्दी काव्य के लिये वरदान सिद्ध हुआ। उन्होंने काव्य क्षेत्र को आधुनिक विषयों से संपन्न किया और रीति की बँधी-बँधायी परिपाटी से कविता-सुन्दरी को मुक्त करके ताजी हवा में साँस लेने का सुअवसर प्रदान किया। भारतेन्दु युग में परंपरागत धार्मिकता और भक्ति भावना को अपेक्षतः गौण स्थान प्राप्त हुआ, फिर भी इस काल के भक्ति काव्य को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैं-

- निर्गुण भक्ति
- वैष्णव भक्ति
- स्वदेशानुराग-समन्वित ईश्वर-भक्ति

इस युग में हास्य-व्यंग्यात्मक कविताओं की भी प्रचुर परिणाम में रचना हुई।

भारतेन्दु युग के कवियों की सबसे बड़ी साहित्यिक देन केवल यही मानी जा सकती है कि उन्होंने कविता को रीतिकालीन परिवेश से मुक्त करके समसामयिक जीवन से जोड़ दिया। भारतेन्दु आधुनिक काल के जनक थे और भारतेन्दु युग के अन्य कवि उनके प्रभामंडल में विचरण करने वाले ऐसे नक्षत्र थे, जिन्होंने अपनी खुली आँखों से जन-जीवन को देखकर उसे अपनी कविता का विषय बनाया। इस काल में कविता और जीवन के निकट का संबंध स्थापित हुआ और यही इस कविता का महत्त्व है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र

भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र (जन्मः 9 सितम्बर, सन् 1850, काशी, मृत्युः 6 जनवरी, सन् 1885) आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह कहे जाते हैं। भारतेन्दु हिन्दी में आधुनिकता के पहले रचनाकार थे। जिस समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का आविर्भाव हुआ, देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। अंग्रेजी शासन में अंग्रेजी चरमोत्कर्ष पर थी। शासन तंत्र से सम्बन्धित सम्पूर्ण

कार्य अंग्रेजी में ही होता था। अंग्रेजी हुकूमत में पद लोलुपता की भावना प्रबल थी। भारतीय लोगों में विदेशी सभ्यता के प्रति आकर्षण था। ब्रिटिश आधिपत्य में लोग अंग्रेजी पढ़ना और समझना गौरव की बात समझते थे। हिन्दी के प्रति लोगों में आकर्षण कम था, क्योंकि अंग्रेजी की नीति से हमारे साहित्य पर बुरा असर पड़ रहा था। हम गुलामी का जीवन जीने के लिए मजबूर किये गये थे। हमारी संस्कृति के साथ खिलवाड़ किया जा रहा था। ऐसे वातावरण में जब बाबू हरिश्चन्द्र अवतरित हुए तो उन्होंने सर्वप्रथम समाज और देश की दशा पर विचार किया और फिर अपनी लेखनी के माध्यम से विदेशी हुकूमत का पर्दाफाश किया।

जीवन परिचय

युग प्रवर्तक बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म काशी नगरी के प्रसिद्ध 'सेठ अमीचंद' के वंश में 9 सितम्बर, सन् 1850 को हुआ। इनके पिता 'बाबू गोपाल चन्द्र' भी एक कवि थे। इनके घराने में वैभव एवं प्रतिष्ठा थी। जब इनकी अवस्था मात्र 5 वर्ष की थी, इनकी माता चल बसीं और दस वर्ष की आयु में पिता जी भी चल बसे। भारतेन्दु जी विलक्षण प्रतिभा के व्यक्ति थे। इन्होंने अपनी परिस्थितियों से गम्भीर प्रेरणा ली। इनके मित्र मण्डली में बड़े-बड़े लेखक, कवि एवं विचारक थे, जिनकी बातों से ये प्रभावित थे। इनके पास विपुल धनराशि थी, जिसे इन्होंने साहित्यकारों की सहायता हेतु मुक्त हस्त से दान किया। इनकी साहित्यिक मण्डली के प्रमुख कवि थे-

पं. बालकृष्ण भट्ट

पं. प्रताप नारायण मिश्र

पं. बद्रीनारायण उपाध्याय 'प्रेमधन' आदि।

बाबू हरिश्चन्द्र बाल्यकाल से ही परम उदार थे। यही कारण था कि इनकी उदारता लोगों को आकर्षित करती थी। इन्होंने विशाल वैभव एवं धनराशि को विविध संस्थाओं को दिया है। इनकी विद्वता से प्रभावित होकर ही विद्वतजनों ने इन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि प्रदान की। अपनी उच्चकोटी के लेखन कार्य के माध्यम से ये दूर-दूर तक जाने जाते थे। इनकी कृतियों का अध्ययन करने पर आभास होता है कि इनमें कवि, लेखक और नाटककार बनने की जो प्रतिभा थी, वह अद्‌भुत थी। ये बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न साहित्यकार थे।

कृतियाँ

यद्यपि भारतेन्दु जी विविध भाषाओं में रचनायें करते थे, किन्तु ब्रजभाषा पर इनका असाधारण अधिकार था। इस भाषा में इन्होंने अद्‌भुत श्रृंगारिकता का परिचय दिया है। इनका साहित्य प्रेममय था, क्योंकि प्रेम को लेकर ही इन्होंने अपने 'सप्त संग्रह' प्रकाशित किए हैं। प्रेम माधुरी इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। जिसकी कुछ पंक्तियाँ निम्नवत् हैं –

मारग प्रेम को समुझै 'हरिश्चन्द्र' यथारथ होत यथा है
लाभ कछु न पुकारन में बदनाम ही होन की सारी कथा है।
जानत ही जिय मेरौ भली विधि और उपाइ सबै बिरथा है।
बावरे हैं ब्रज के सिगरे मोंहि नाहक पूछत कौन बिथा है।

भारतेन्दु जी अत्यन्त कम अवस्था से ही रचनाएँ करने लगे थे। इन्होंने नाटक के क्षेत्र में भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। इनके प्रमुख नाटक और रचनायें निम्नवत् हैं –

क्रम	काव्यकृतियां	वर्ष
1.	भक्तसर्वस्व	
2.	प्रेममालिका	1871
3.	प्रेम माधुरी	1875
4.	प्रेम-तरंग	1877
5.	उत्तरार्द्ध भक्तमाल	1876 - 77
6.	प्रेम-प्रलाप	1877
7.	होली	1879
8.	मधुमुकुल	1881
9.	राग-संग्रह	1880
10.	वर्षा-विनोद	1880
11.	विनय प्रेम पचासा	1881
12.	फूलों का गुच्छा	1882
13.	प्रेम फुलवारी	1883
14.	कृष्णचरित्र	1883
15.	दानलीला	
16.	तन्मय लीला	

17. नये जमाने की मुकरी
18. सुमनांजलि
19. बन्दर सभा (हास्य व्यंग)
20. बकरी विलाप (हास्य व्यंग)

क्रम	नाटक	वर्ष
1.	वैदिक हिंसा हिंसा न भवति	1873
2.	भारत दुर्दशा	1875
3.	साहित्य हरिश्चंद्र	1876
4.	नीलदेवी	1881
5.	अंधेर नगरी	1881
6.	सत्य हरिश्चंद्र	
7.	चंद्रावली	1881
8.	प्रेम योगिनी	
9.	धनंजय विजय	
10.	मुद्रा राक्षस	

क्रम	सप्त संग्रह
1.	प्रेम फुलवारी
2.	प्रेम प्रलाप
3.	प्रेमाश्रु वर्णन
4.	प्रेम मालिका
5.	प्रेम तरंग
6.	प्रेम सरोवर
7.	प्रेम माधुरी

साहित्यिक सेवाएँ

हरिश्चन्द्र जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे, अतः उन्होंने साहित्य के हर क्षेत्र में काम किया है। कविता, नाटक, निबन्ध, व्याख्यान आदि पर उन्होंने कार्य किया। 'सुलोचना' आपका प्रमुख आख्यान है। 'बादशाह दर्पण' आपका इतिहास की जानकारी प्रदान करने वाला ग्रन्थ है। इन्होंने संयोग का बड़ा ही सजीव एवं सुन्दर चित्रण किया है–

रोकत है तो अमंगल होय और प्रेम नसै जो कहैं प्रिय जाइए।
जो कहें जाहु न, तो प्रभुता, जो कछु न कहैं तो सनेह नसाइए।
जो हरिश्चन्द्र कहैं, तुमरे बिन, जियें न तो यह क्यों पतियाइए।
तासो पयान समै तुझसौं हम का कहैं प्यारे हमें समझाइए।।

भारत की विभिन्नता पर खिनता व्यक्त की है–हिन्दी के उत्थान के लिए कहना है कि–हिन्दी की प्रतिष्ठा करते हुए वे कहते हैं कि–

भारत में सब भिन्न अति,
ताहीं सों उत्पात।
विविध बेस मतहूँ विविध
भाषा विविध लखात।
अंग्रेजी पढ़ कै जदपि,
सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन
रहत हीन कै हीन।
निजभाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को भूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के
मिटे न हिय को सूल।

प्रगतिशील लेखक

भारतेन्दु हरिश्चंद्र

भारतेन्द्र जी ने भक्ति प्रधान एवं श्रृंगारयुक्त रचनाएँ की हैं। उनमें अपने देश के प्रति बहुत बड़ी निष्ठा थी, उन्होंने सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन की बात की है, उनकी भक्ति प्रधान रचनाएँ घनानंद एवं रसखान की रचनाओं की कोटि की हैं। उन्होंने संयोग की अपेक्षा वियोग पर विशेष बल दिया है। वे स्वतंत्रता प्रेमी एवं प्रगतिशील विचारक व लेखक थे। उन्होंने माँ सरस्वती की साधना में अपना धन पानी की तरह बहाया और साहित्य को समृद्ध किया। उन्होंने अनेक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया। जीवन का अन्तिम दौर आर्थिक तंगी से गुजरा, क्योंकि धन का उन्होंने बहुत बड़ा भाग साहित्य समाज सेवा के लिए लगाया। ये भाषा की शुद्धता के पक्ष में थे। इनकी भाषा बड़ी परिष्कृत एवं प्रवाह

से भरी है। भारतेन्दु जी की रचनाओं में उनकी रचनात्मक प्रतिभा को भली प्रकार देखा जा सकता है।

सभी विधाओं में लेखन

भारतेन्दु जी ने अपनी प्रतिभा के बल पर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। हिन्दी गद्य साहित्य को इन्होंने विशेष समृद्धि प्रदान की है। इन्होंने दोहा, चौपाई, छन्द, बरवै, हरिगीतिका, कवित्त एवं सवैया आदि पर काम किया। इन्होंने न केवल कहानी और कविता के क्षेत्र में कार्य किया अपितु नाटक के क्षेत्र में भी विशेष योगदान दिया। किन्तु नाटक में पात्रों का चयन और भूमिका आदि के विषय में इन्होंने सम्पूर्ण कार्य स्वयं के जीवन के अनुभव से सम्पादित किया है।

साहित्य में योगदान

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि बाबू हरिश्चन्द्र बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न थे। उन्होंने समाज और साहित्य का प्रत्येक कोना झाँका है। अर्थात् साहित्य के सभी क्षेत्रों में उन्होंने कार्य किया है। किन्तु यह खेद का ही विषय है कि 35 वर्ष की अल्पायु में ही वे स्वर्गवासी हो गये थे। यदि ऐसा न होता तो सम्भवत: हिन्दी साहित्य का कहीं और ज्यादा विकास हुआ होता। यह उनके व्यक्तित्त्व की ही विशेषता थी कि वे कवि, लेखक, नाटककार, साहित्यकार एवं सम्पादक सब कुछ थे। हिन्दी साहित्य को पुष्ट करने में आपने जो योगदान प्रदान किया है वह सराहनीय है तथा हिन्दी जगत आप की सेवा के लिए सदैव ऋणी रहेगा। इन्होंने अपने जीवन काल में लेखन के अलावा कोई दूसरा कार्य नहीं किया। तभी तो 35 वर्ष की अल्पायु में ही 72 ग्रन्थों की रचना करना सम्भव हो सकता था। इन्होंने छोटे एवं बड़े सभी प्रकार के ग्रन्थों का प्रणयन किया है। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है और अपने कार्यों से इन्होंने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सदा के लिए स्थायी रूप से स्थान बनाया है। अपनी विशिष्ट सेवाओं के कारण ही ये आधुनिक हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के प्रवर्तक कहे जाते हैं। पंत जी ने इनके बारे में ठीक ही कहा है–

1. भारतेन्दु कर गये,
2. भारती की वीणा निर्माण।

3. किया अमर स्पर्शों में,
4. जिसका बहु विधि स्वर संधान।

अत: यह कहा जा सकता है कि बाबू हरिश्चन्द्र जी हिन्दी साहित्य के आकाश के एक देदीप्यमान नक्षत्र थे। उनके द्वारा हिन्दी साहित्य में दिया गया योगदान महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय है।

मेरे मित्र बाबू बालेश्वरप्रसाद बी.ए. ने मुझ से कहा कि आप कोई ऐसा नाटक भी लिखें, जो लड़कों को पढ़ाने के योग्य हो क्योंकि शृंगार रस के आपने जो नाटक लिखे हैं वे बड़े लोगों के पढ़ने के हैं लड़कों को उनसे कोई लाभ नहीं। उन्हीं की इच्छानुसार मैने यह सत्य हरिश्चन्द्र नामक रूपक लिखा है। इस में सूर्य कुल सम्भूत राजा हरिश्चन्द्र की कथा है। राजा हरिश्चन्द्र सूर्य वंश का अट्ठाइसवाँ राजा रामचन्द्र के 35 पीढ़ी पहले राजा त्रिशंकु का पुत्र था। इसने शौभपुर नामक एक नगर बसाया था और बड़ा ही दानी था। इसकी कथा शास्त्रों में बहुत प्रसिद्ध है और संस्कृत में राजा महिपाल देव के समय में क्षेमीश्वर कवि ने चंडकौशिक नामक नाटक इन्हीं हरिश्चन्द्र के चरित्र में बनाया है। अनुमान होता है कि इस नाटक को बने चार सौ बरस से ऊपर हुए क्योंकि विश्वरनाथ कविराज ने अपने साहित्य ग्रंथ में इसका नाम लिखा है। कौशिक विश्वामित्र का नाम है। हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र दोनों शब्द व्याकरण की रीति से स्वयं सिद्ध हैं। विश्वामित्र कान्य कुब्ज का क्षत्रिय राजा था। वह एक बार संयोग से वशिष्ठ के आश्रम में गया और जब वशिष्ठ ने सैन समेत उसकी जाफत अपनी शबला नाम की कामधेनु गऊ के प्रताप से बड़े धूम-धाम से की तो विश्वामित्र ने वह कामधेनु लेनी चाही। जब हजारों हाथी, घोड़े और गऊ के बदले भी वशिष्ट ने गऊ न दी तो विश्वामित्र ने गऊ छीन लेनी चाही। वशिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु ने विश्वामित्र की सब सेना का नाश कर दिया और विश्वामित्र के सौ पुत्र भी वशिष्ठ ने शाप से जला दिए। विश्वामित्र इस पराजय से उदास होकर तप करने लगे और महादेव जी से वरदान में सब अस्त्र पाकर फिर वशिष्ठ से लड़ने आए। वशिष्ठ ने मंत्र के बल से एक ऐसे ब्रह्म दंड खड़ा कर दिया कि विश्वामित्र के सब अस्त्र निष्फल हुए। हार कर विश्वामित्र ने सोचा कि अब तप कर के ब्राह्मण होना चाहिए और तप कर के अंत में ब्राह्मण और ब्रह्मर्षि हो गए। यह वाल्मीकी, रामायण के अयोध्या कांड के 52 से 60 सर्ग तक सविस्तार वर्णित हैं।

जब हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु ने इसी शरीर से स्वर्ग जाने के हेतु वशिष्ठ जी से कहा तो उन्होंने उत्तर दिया कि वह अशक्य काम हम से न होगा। तब

त्रिशंकु वशिष्ठ के सौ पुत्रों के पास गया और जब उन से भी कोरा जवाब पाया तब कहा कि तुम्हारे पिता और तुम लोगों ने हमारी इच्छा को पूरा नहीं किया और हम को कोरा जवाब दिया इसलिए अब हम दूसरा पुरोहित करते हैं। वशिष्ठ के पुत्रों ने इस बात से रुष्ट होकर त्रिशंकु को शाप दिया कि तू चांडाल हो जा। बिचारा त्रिशंकु चांडाल बन कर विश्वामित्र के पास गया और दुखी होकर अपना सब हाल वर्णन किया। विश्वामित्र ने अपने पुराने बैर का बदला लेने का अच्छा अवसर सोचकर राजा से प्रतिज्ञा की कि इसी देह से तुम को स्वर्ग भेजेंगे और सब मुनियों को बुलाकर यज्ञ करना चाहा। सब ऋषि तो आए पर वशिष्ठ के सौ पुत्र नहीं आए और कहा कि जहाँ चांडाल यजमान और क्षत्रिय पुरोहित वहाँ कौन जाये। क्रोधी विश्वामित्र ने इस बात से रुष्ट होकर शाप से वशिष्ठ के उन सौ पुत्रों को भस्म कर दिया। यह देखकर और बिचारे ऋषि मारे डर के यज्ञ में करने लगे। जब मंत्रों से बुलाने से देवता लोग यज्ञ में भाग लेने न आए तो विश्वामित्र ने क्रोध से श्रुवा उठाकर कहा कि त्रिशंकु यज्ञ से कुछ काम नहीं तुम हमारे तपोबल से स्वर्ग जाओ। त्रिशंकु इतना कहते ही आकाश की ओर उड़ा। जब इन्द्र ने देखा कि त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग में आना चाहता है तो पुकारा कि अरे तू यहाँ आने के योग्य नहीं है नीचे गिर। त्रिशंकु यह सुनते ही उल्टा होकर नीचे गिरा और विश्वामित्र से त्राहि-त्राहि पुकारा।

विश्वामित्र ने तप बल से उसको वहाँ बीच ही में स्थिर रखा। कर्म्मनाशा नामक नदी त्रिशंकु के ही लार से बनी है। फिर देवताओं पर क्रोध करके विश्वामित्र ने सृष्टि ही दूसरी करनी चाही। दक्षिण ध्रुव के समीप सप्तर्षि और नक्षत्र इन्होंने नए बनाए और बहुत से जीव जंतु फल मूल बनाकर जब इन्द्रादिक देवता भी दूसरे बनाने चाहे तब देवता लोग डर कर इनसे क्षमा मांगने गए। इन्होंने अपनी बनाई सृष्टि स्थिर रखकर और दक्षिणाकाश में त्रिशंकु को ग्रह की भाँति प्रकाशमान स्थिर रखकर क्षमा किया। यह सब भी रामायण में ही है। फिर एक बेर पानी नहीं बरसा इससे बड़ा काल पड़ा। विश्वामित्र एक चांडाल के घर भीख माँगने गए और जब कुत्ते का माँस पाया तो उसी से देवताओं को बलि दिया। देवता लोग इन के भय से काँप गए और इन्द्र ने उसी समय पानी बरसाया। यह प्रसंग महाभारत के शांति पर्व के 141 अध्याय में है। फिर हरिश्चन्द्र की विपत्ति सुन पर क्रोध से वशिष्ठ जी ने उनको शाप दिया कि तुम बकुला हो जाओ और विश्वामित्र ने यह सुनकर वशिष्ठ को शाप दिया कि तुम आड़ी हो जाओ। पक्षी बनकर दोनों ने बड़ा घोर युद्ध किया जिससे त्रैलोक्य कांप गया। अन्त में ब्रह्मा

ने दोनों से मेल कराया। यह उपाख्यान मार्कंडेय पुराण के नवें अध्याय में है। इनकी उत्पत्ति यों है। भृगु ने जब अपने पुत्र च्यवन ऋषि को ब्याह किए देखा तो बड़े प्रसन्न हुए और बेटा बहू देखने को उनके घर आए। उन दोनों ने पिता की पूजा की और हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गए। भृगु ने बहू से कहा कि बेटी वर माँग। सत्यवती ने यह वर माँगा कि मुझे तो वेद शास्त्र जानने वाला और मेरी माता को युद्ध विद्या विशारद् पुत्र हो। भृगु ने एवमस्तु कह कर ध्यान से प्राणायाम किया और उनके श्वास से दो चरु उत्पन्न हुए। भृगु ने वह बहू को देकर कहा कि यह लाल चरु तो तुम्हारी माता प्रति ऋतु समय में अश्वत्थ का आलिंगन करके खाये और तुम यह सफेद चरु उसी भांति उदुम्बर का आलिंगन करके खाना। भृगु के वाक्यानुसार सत्यवती ने कन्नौज के राजा गाधि की स्त्री अपनी माता से सब कहा। उसकी माता ने यह समझकर कि ऋषि ने अपनी पतोहू को अच्छा बालक होने को चरु दिया होगा। जब ऋतु काल आया तब लाल चरु तो कन्या को खिलाया और सफेद आप खाया। भगवान भृगु ने तपोबल से जब यह बात जानी तो आकर बहू से कहा कि तुमने चरु को उल्ट-पुलट किया इससे तुम्हारा लड़का ब्राह्मण होकर भी क्षत्रिय कर्म होगा और तुम्हारा भाई क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण हो जायेगा सत्यवती ने जब ससुर से अपराध की क्षमा चाही तब उन्होंने कहा कि अच्छा तुम्हारे पुत्र के बदले पौत्र क्षत्रिय कर्मा होगा वही राजा गाधि को विश्वामित्र हुए और च्यवन को जमदाग्नि और जमदाग्नि को परशुराम हुए। यह उपाख्यान कालिका पुराण के 84 अध्याय में स्पष्ट है।

सत्य हरिश्चन्द्र (एक रूपक)

करुण रस अंगी
भयानक और बीर अंग
चार अंकों में
प्रथम अंक ... ... इन्द्रसभा
द्वितीय अंक ... ... हरिश्चन्द्र की सभा
तृतीय अंक ... ... काशी में विक्रय
चतुर्थ अंक ... ... शमशान

अथ सत्य हरिश्चन्द्र

(मंगलाचरण)

सत्यासक्त दयाल द्विज प्रिय अघ हर सुख कन्द।
जनहित कमला तजन जय शिव नृप कवि हरिचन्द।। 1।।

(नान्दी के पीछे सूत्रधार आता है)

सू.–अहा! आज की सन्ध्या भी धन्य है कि इतने गुणज्ञ और रसिक लोग एकत्र हैं और सबकी इच्छा है कि हिन्दी भाषा का कोई नवीन नाटक देखैं। धन्य है विद्या का प्रकाश कि जहाँ के लोग नाटक किस चिड़िया का नाम है इतना भी नहीं जानते थे भला वहाँ अब लोगों की इच्छा इधर प्रवृत्त तो हुई। परन्तु अहा! शोच की बात है कि जो बड़े-बड़े लोग हैं और जिनके किए कुछ हो सकता है वे ऐसी अन्ध परम्परा में फँसे हैं और ऐसे बेपरवाह और अभिमानी हैं कि सच्चे गुणियों की कहीं पूछ ही नहीं है। केवल उन्हीं की चाह और उन्हीं की बात है जिन्हें झूठी खैरखाही दिखाना वा लंबा चौड़ा गाल बजाना आता है। (कुछ सोच कर) क्या हुआ, ढंग पर चला जायेगा तौ यों भी बहुत कुछ हो रहैगा। काल बड़ा बली है, धीरे-धीरे सब आप से आप ही कर देगा। पर भला आज इन लोगों को लीला कौन-सी दिखाऊं। (सोचकर) अच्छा, उनसे भी तो पूछ लें ऐसे कौतुकों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की बुद्धि विशेष लड़ती है। (नेपथ्य की ओर देख कर) मोहना! अपनी भाभी को जरा इधर तो भेजना।

(नेपथ्य में से-मैं तो आप ही आती थी कहती हुई नटी आती है)

न.–मैं तो आप ही आती थी। वह एक मनिहारिन आ गई थी उसी के बखेड़े में लग गई, नहीं तो अब तक कभी की आ चुकी होती। कहिए, आज जो लीला करनी हो वह पहिले ही से जानी रहै तो मैं और सभी से कह के सावधान कर दूं।

सू.–आज का नाटक तो हमने तुम्हारी ही प्रसन्नता पर छोड़ दिया है।

न.–हम लोगों को तो सत्य हरिश्चन्द्र आज कल अच्छी तरह याद है और उसका खेल भी सब छोटे-बड़े को भज रहा है।

सू.–ठीक है, यही हो। भला इससे अच्छा और कौन नाटक होगा। एक तो इन लोगों ने उसे अभी देखा नहीं है, दूसरे आख्यान भी करुणा पूर्ण राजा हरिश्चन्द्र का है, तीसरे उसका कवि भी हम लोगों का एक मात्र जीवन है।

न.–(लंबी सांस लेकर) हा! प्यारे हरिश्चन्द्र का संसार ने कुछ भी गुण रूप न समझा। क्या हुआ। कहैंगे सबै ही नैन नीर भरि भरि पाछे प्यारे हरिचंद की कहानी रहिजायगी।। 2।।

सू.–इसमें क्या संदेह है? काशी के पंडितों ही ने कहा है।।

सब सज्जन के मान को कारन इक हरिचंद।
जिमि सुझाव दिन रैन के कारन नित हरिचंद।। 3।।

और फिर उनके मित्र पंडित शीतला प्रसाद जी ने इस नाटक के नायक से उनकी समता भी किया है। इससे उनके बनाए नाटकों में भी सत्य हरिश्चन्द्र ही आज खेलने को जी चाहता है।।

न.–कैसी समता, मैं भी सुनूं।

सू.–जो गुन नृप हरिचन्द मैं जगहित सुनियत कान।
सो सब कवि हरिचन्द मैं लखहु प्रतच्छ सुजान।। 4।।1

(नेपथ्य में)

अरे!

यहाँ सत्यभय एक के कांपत सब सुर लोक।
यह दूजो हरिचन्द को करन इन्द्रउर सोक।। 2।।

सू.–(सुनकर और नेपथ्य की ओर देखकर) यह देखो! हम लोगों को बात करते देर न हुई कि मोहना इन्द्र बन कर आ पहुँचा। तो अब चलो हम लोग भी तैयार हों।

(दोनों जाते हैं)

इतिप्रस्तावना

प्रथम अंक

जवनिका उठती है

(स्थान इन्द्रसभा, बीच में गद्दी तकिया धरा हुआ, घर सजा हुआ)

(इन्द्र आता है)

इ.–('यहाँ सत्यभय एक के' यह दोहा फिर से पढ़ता हुआ इधर-उधर घूमता है।)

(द्वारपाल आता है)

द्वा.–महाराज! नारद जी आते हैं।

इ.–आने दो, अच्छे अवसर पर आए।

द्वा.–जो आज्ञा। (जाता है)

इ.–(आप ही आप) नारद जी, सारी पृथ्वी पर इधर-उधर फिरा करते हैं। इनसे सब बातों का पक्का पता लगेगा। हमने माना कि राजा हरिश्चन्द्र को स्वर्ग लेने की इच्छा न हो तथापि उस के धर्म की एक बेर परीक्षा तो लेनी चाहिए।

(नारदजी आते हैं)

इ.–(हाथ जोड़कर दंडवत् करता है)

आइए आइए धन्य भाग्य, आज किधर भूल पड़े।

ना.–हमैं और भी कोई काम है, केवल यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ-यही हमैं है कि और भी कुछ।

इ.–साधु स्वभाव ही से परोपकारी होते हैं। विशेष कर के आप ऐसे हैं, जो हमारे से दीन गृहस्थों को घर बैठे दर्शन देते हैं क्योंकि जो लोग गृहस्थ और काम काजी हैं वे स्वभाव ही से गृहस्थी के बन्धनों से ऐसे जकड़ जाते हैं कि साधु संगम तो उनको सपने में भी दुर्लभ हो जाता है, न वे अपने प्रबन्धों से छुट्टी पावेंगे न कहीं जायंगे।

ना.–आप को इतनी शिष्टाचार नहीं सोहती। आप देवराज हैं और आप के संग की तो बड़े-बड़े ऋषि मुनि इच्छा करते हैं फिर आप को सत्संग कौन दुर्लभ हैं। केवल जैसा राजा लोगों में एक सहज मुँह देखा व्यापार होता है वैसी ही बातैं आप इस समय कर रहे हैं।

इ.–हम को बड़ा सोच है कि आप ने हमारी बातों को शिष्टाचार समझा। क्षमा कीजिए आप से हम बनावट नहीं कर सकते। भला, बिराजिये तो सही, यह बातें तो होती ही रहेंगी।

ना.–बिराजिये (दोनों बैठते हैं)।

इ.–कहिए, इस समय कहाँ से आना हुआ।

ना.–अयोध्या से! अहा! राजा हरिश्चन्द्र धन्य है। मैं तो उसके निष्कपट अकृत्रिम सुझाव से बहुत ही संतुष्ट हुआ। यद्यपि इसी सूर्यकाल में अनेक बड़े-बड़े धार्मिक हुए पर हरिश्चन्द्र तो हरिश्चन्द्र ही है।

इ.–(आप ही आप) यह भी तो उसी का गुण गाते हैं।

ना.–महाराज। सत्य की तो मानो हरिश्चन्द्र मूर्ति है। निःसन्देह ऐसे मनुष्यों के उत्पन्न होने से भारत भूमि का सिर केवल इनके स्मरण से उस समय भी ऊँचा रहेगा जब वह पराधीन होकर हीनावस्था को प्राप्त होगी।

इ.–(आप ही आप) अहा! हृदय भी ईश्वर ने क्या वस्तु बनाई है। यद्यपि इसका स्वभाव सहज ही गुणग्राही हो तथापि दूसरों की उत्कट कीर्त्ति से इसमें ईर्ष्या होती ही हैं, उसमें भी जो जितने बड़े हैं उनकी ईर्ष्या भी उतनी ही बड़ी हैं। हमारे ऐसे बड़े पदाधिकारियों को शत्रु उतना संताप नहीं देते जितना दूसरों की सम्पत्ति और कीर्ति।

ना.–आप क्या सोच रहे हैं?

इ.–कुछ नहीं। यों ही मैं यही सोचता था कि हरिश्चन्द्र की कीर्ति आज कल छोटे-बड़े सबके मुँह से सुनाई पड़ती है इससे निश्चय होता है कि नहीं हरिश्चन्द्र नि:संदेह बड़ा मनुष्य है।

ना.–क्यों नहीं, बड़ाई उसी का नाम है जिसे छोटे-बड़े सब मानैं और फिर नाम भी तो उसी का रह जायेगा जो ऐसा दृढ़ हो कर धर्म साधन करेगा। (आप ही आप) और उसकी बड़ाई का यह भी तो एक बड़ा प्रमाण है कि आप ऐसे लोग उससे बुरा मानते हैं क्योंकि जिससे बड़े-बड़े लोग डाह करें पर उसका कुछ बिगाड़ न सकें वह नि:संदेह बहुत बड़ा मनुष्य है।

इ.–भला उसके गृह चरित्र कैसे हैं?

ना.–दूसरों के लिए उदाहरण बनाने के योग्य। भला पहिले जिसने अपने निज के और अपने घर के चरित्र ही नहीं शुद्ध किए हैं उसकी और बातों पर क्या विश्वास हो सकता है। शरीर में चरित्र ही मुख्य वस्तु है। वचन से उपदेशक और क्रियादिक से कैसा भी धर्मनिष्ठ क्यों न हो पर यदि उसके चरित्र शुद्ध नहीं हैं तो लोगों में वह टकसाल न समझा जायेगा और उसकी बात प्रमाण न होंगी! महात्मा और दुरात्मा में इतना ही भेद है कि उनके मन वचन और कर्म एक रहते हैं, इनके भिन्न-भिन्न नि:संदेह हरिश्चन्द्र महाशय है। उसके आशय बहुत उदार हैं इसमें कोई संदेह नहीं।

इ.–भला आप उदार वा महाशय किसको कहते हैं?

ना.–जिसका भीतर बाहर एक-सा हो और विद्यानुरागिता उपकार प्रियता आदि गुण जिसमें सहज हों। अधिकार में क्षमा, विपत्ति में धैर्य, सम्पत्ति में अनाभिमान और युद्ध में जिसको स्थिरता है वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है और उसी की माता पुत्रवती है। हरिश्चंद्र में ये सब बातें सहज हैं। दान करके उसको प्रसन्नता होती है और कितना भी दे पर संतोष नहीं होता, यही समझता है कि अभी थोड़ा दिया।

इ.–(आप ही आप) हृदय! पत्थर के होकर तुम यह सब कान खोल के सुनो।

ना.–और इन गुणों पर ईश्वर की निश्चला भक्ति उसमें ऐसी है, जो सब का भूषण है क्योंकि उसके बिना किसी की शोभा नहीं। फिर इन सब बातों पर विशेषता यह है कि राज्य का प्रबन्ध ऐसा उत्तम और दृढ़ है कि लोगों को संदेह होता है कि इन्हें राज-काज देखने की छुट्टी कब मिलती है। सच है छोटे जी

के लोग थोड़े ही कामों में ऐसे घबरा जाते हैं मानो सारे संसार का बोझ इन्हीं पर है, पर जो बड़े लोग हैं उन के सब काम महारम्भ होते हैं तब भी उनके मुख पर कहीं से व्याकुलता नहीं झलकती, क्योंकि एक तो उनके उदार चित्त में धैर्य और अवकाश बहुत है, दूसरे उनके समय व्यर्थ नहीं जाते और ऐसे यथायोग्य बने रहते हैं जिससे उन पर कभी भीड़ पड़ती ही नहीं।

इ.—भला महाराज वह ऐसे दानी हैं तो उनकी लक्ष्मी कैसे स्थिर है।

ना.—यही तो हम कहते हैं। निःसंदेह वह राजा कुल का कलंक है जिसने बिना पात्र विचारे दान देते-देते सब लक्ष्मी का क्षय कर दिया, आप कुछ उपार्जन किया ही नहीं, जो था वह नाश हो गया। और जहाँ प्रबन्ध है वहाँ धन ही क्या कमती है। मनुष्य कितना धन देगा और जाचक कितना लेंगे।

इ.—पर यदि कोई अपने वित्त के बाहर माँगे या ऐसी वस्तु मांगे जिससे दाता की सर्वस्व हानि हो तो वह दे कि नहीं?

ना.—क्यों नहीं। अपना सर्वस्व वह क्षण भर में दे सकता है, पात्र चाहिए। जिसको धन पाकर सत्पात्र में उसके त्याग की शक्ति नहीं है वह उदार कहाँ हुआ।

इ.—(आप ही आप) भला देखेंगे न।

ना.—राजन्! मानियों के आगे प्राण और धन तो कोई वस्तु ही नहीं है। वे तो अपने सहज सुभाव ही से सत्य और विचार तथा दृढ़ता में ऐसे बंधे हैं कि सत्पात्र मिलने या बात पड़ने पर उनको स्वर्ण का पर्वत भी तिलसा दिखाई देता है। और उसमें भी हरिश्चन्द्र-जिसका सत्य पर ऐसा स्नेह है जैसा भूमि, कोष, रानी और तलवार पर भी नहीं है। जो सत्यानुरागी ही नहीं है भला उससे न्याव कब होगा और जिसमें न्याव नहीं है वह राजा ही काहे का है। कैसी भी विपत्ति और उभय संकष्ट पड़ै और कैसी ही हानि वा लाभ हो पर जो न्याव न छोड़े वही धीर और वही राजा। और उस न्याव का मूल सत्य है।

इ.—तो भला वह जिसे जो देने को कहैगा देगा वा जो करने को कहैगा वह करैगा।

ना.—क्या आप उसका परिहास करते हैं? किसी बड़े के विषय में ऐसी शंका ही उसकी निन्दा है। क्या आप ने उसका यह सहज साभिमान वचन कभी नहीं सुना है-

चन्द टरै सूरज टरै टरै जगत व्योहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को टरै न सत्य विचार।।

इ.–(आप ही आप) तो फिर इसी सत्य के पीछे नाश भी होंगे, हमको भी अच्छा उपाय मिला। (प्रगट) हाँ पर आप यह भी जानते हैं कि क्या वह यह सब धर्म स्वर्ग लेने को करता है?

ना.–वाह। भला जो ऐसे उदार हैं उनके आगे स्वर्ग क्या वस्तु है। क्या बड़े लोग धर्म स्वर्ग पाने को करते हैं। जो अपने निर्मल चरित्र से संतुष्ट हैं उन के आगे स्वर्ग कौन वस्तु है। फिर भला जिनके शुद्ध हृदय और सहज व्योहार हैं वे क्या यश वा स्वर्ग की लालच में धर्म करते हैं। वे तो आपके स्वर्ग को सहज में दूसरे को दे सकते हैं। और जिन लोगों को भगवान के चरणारविंद में भक्ति है वे क्या किसी कामना से धर्माचरण करते हैं, यह भी तो एक क्षुद्रता है कि इस लोक में एक देकर परलोक में दो की आशा रखना।

इ.–(आप ही आप) हमने माना कि उस को स्वर्ग लेने की इच्छा न हो तथापि अपने कर्मों से वह स्वर्ग का अधिकारी तो हो जायेगा।

ना.–और जिनको अपने किये शुभ अनुष्ठानों से आपको संतोष मिलता है उन के उस असीम आनंद के आगे आप के स्वर्ग का अमृतपान और अप्सरा तो महा महा तुच्छ हैं। क्या अच्छे लोग कभी किसी शुभ कृत्य का बदला चाहते हैं।

इ.–तथापि एक बेर उनके सत्य की परीक्षा होती तो अच्छा होता।

ना.–राजन्! आपका यह सब सोचना बहुत अयोग्य है। ईश्वर ने आपको बड़ा किया है तो आप को दूसरों की उन्नति और उत्तमता पर संतोष करना चाहिए। ईर्ष्या करना तो क्षुद्राशयों का काम है। महाशय वही है, जो दूसरों की बड़ाई से अपनी बड़ाई समझै।

इ.–(आप ही आप) इन से काम न होगा। (बात बहलाकर प्रगट) नहीं-नहीं मेरी यह इच्छा थी कि मैं भी उनके गुणों को अपनी आँखों से देखता। भला मैं ऐसी परीक्षा थोड़े लेना चाहता हूँ जिससे उन्हें कुछ कष्ट हो।

ना.–(आप ही आप) अहा! बड़ा पद मिलने से कोई बड़ा नहीं होता। बड़ा वही है जिसका चित्त बड़ा है। अधिकार तो बड़ा है पर चित्त में सदा क्षुद्र और नीच बातैं सूझा करती हैं। वह आदर के योग्य नहीं है, परन्तु जो कैसा भी दरिद्र है पर उसका चित्त उदार और बड़ा है, वही आदरणीय है।

(द्वारपाल आता है)

द्वा.–महाराज! विश्वामित्र जी आए हैं।

इ.–(आप ही आप) हां इनसे वह काम होगा। अच्छे अवसर पर आए। जैसा काम हो वैसे ही स्वभाव के लोग भी चाहिएं। (प्रकट) हां हां लिवा लाओ।

द्वा.–जो आज्ञा। (जाता है)

(विश्वामित्र आते हैं)

इ.–(प्रणामादि शिष्टाचार करके) आइए भगवन्, विराजिए।

वि.–(नारद जी को प्रणाम करके और इन्द्र को आशीर्वाद देकर बैठते हैं)

ना.–तो अब हम जाते हैं, क्योंकि पिता के पास हमें किसी आवश्यक काम को जाना है।

वि.–यह क्या? हमारे आते ही आप चले, भला ऐसी रुष्टता किस काम की।

ना.–हरे हरे! आप ऐसी बात सोचते हैं, राम राम भला आप के आने से हम क्यों जायंगे। मैं तो जाने ही को था कि इतने में आप आ गये।

इ.–(हंसकर) आपकी जो इच्छा।

ना.–(आप ही आप) हमारी इच्छा क्या अब तो आप ही की यह इच्छा है कि हम जायें, क्योंकि अब आप तो विश्व के अमित्र जी से राजा हरिश्चन्द्र को दुख देने की सलाह कीजिएगा तो हम उसके बाधक क्यों हो, पर इतना निश्चय रहे कि सज्जन को दुर्जन लोग जितना कष्ट देते हैं उतनी ही उनकी सत्य कीर्ति तपाए सोने की भांति और भी चमकती है क्योंकि विपत्ति बिना सत्य की परीक्षा नहीं होती। (प्रगट) यद्यपि 'जो इच्छा' आप ने सहज भाव से कहा है तथापि परस्पर में ऐसे उदासीन बचन नहीं कहते क्योंकि इन वाक्यों से रूखापन झलकता है। मैं कुछ इसका ध्यान नहीं करता, केवल मित्र भाव से कहता हूँ। लो, जाता हूँ और यही आशीर्वाद दे कर जाता हूँ कि तुम किसी को कष्टदायक मत हो क्योंकि अधिकार पाकर कष्ट देना यह बड़ों की शोभा नहीं, सुख देना शोभा है।

इ.–(कुछ लज्जित होकर प्रणाम करता है)।

(नारद जी जाते हैं)

वि.–यह क्यों? आज नारद भगवान ऐसी जली कटी क्यों बोलते थे, क्या तुमने कुछ कहा था।

इ.–नहीं तो। राजा हरिश्चन्द्र का प्रसंग निकला था सो उन्होंने उसकी बड़ी स्तुति की और हमारा उच्च पद का आदरणीय स्वभाव उस परकीर्त्ति को सहन न कर सका। इसी में कुछ बात ही बात ऐसा सन्देह होता है कि वे रुष्ट हो गए।

वि.–तो हरिश्चन्द्र में कौन से ऐसे गुण हैं? (सहज की भृकुटी चढ़ जाती है)।

इ.–(ऋषि का भ्रूभंग देखकर चित्त में संतोष करके उनका क्रोध बढ़ाता हुआ) महाराज सिपारसी लोग चाहे जिसको बढ़ा दें, चाहे घटा दें। भला सत्य धर्म पालन क्या हंसी खेल है? यह आप ऐसे महात्माओं ही का काम है जिन्होंने घर-बार छोड़ दिया है। भला राज करके और घर में रह के मनुष्य क्या धर्म का हठ करैगा। और फिर कोई परीक्षा लेता तो मालूम पड़ती। इन्हीं बातों से तो नारद जी बिना बात ही अप्रसन्न हुए।

वि.–मैं अभी देखता हूँ न। तो हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं। भला मेरे सामने वह क्या सत्यवादी बनैगा और क्या दानीपने का अभिमान करैगा।

(क्रोधपूर्वक उठ कर चलना चाहते हैं कि परदा गिरता है)।

।। इति प्रथम अंक।।

दूसरा अंक

स्थान राजा हरिश्चन्द्र का राजभवन।

रानी शैय्या1 बैठी हैं और एक सहेली बगल में खड़ी है।

रा.–अरी? आज मैंने ऐसे बुरे-बुरे सपने देखे हैं कि जब से सो के उठी हूँ कलेजा कांप रहा है। भगवान कुसल करे।

स.–महाराज के पुन्य प्रताप से सब कुसल ही होगी आप कुछ चिन्ता न करें। भला क्या सपना देखा है मैं भी सुनूँ?

रा.–महाराज को तो मैंने सारे अंग में भस्म लगाए देखा है और अपने को बाल खोले और (आँखों में आँसू भर कर) रोहितास्व को देखा है कि उसे साँप काट गया है।

स.–राम! राम! भगवान सब कुसल करेगा। भगवान करे रोहितास्व जुग-जुग जिए और जब तक गंगा-जमुना में पानी है आप का सोहाग अचल रहे। भला आप ने इस की शांती का भी कुछ उपाय किया है।

रा.–हाँ गुरुजी से तो सब समाचार कहला भेजा है देखो वह क्या करते हैं।

स.–हे भगवान हमारे महाराज-महारानी कुंवर सब कुसल से रहैं, मैं आंचल पसार के यह वरदान मांगती हूँ।

(ब्राह्मण आता है)

ब्रा.–(आशीर्वाद देता है)

स्वस्त्यस्तुतेकुशलमस्तुचिरायुरस्तु
गोवाजिहस्तिधनधान्यसमृद्धिरस्तु
ऐश्वर्य्यमस्तुकुशलोस्तुरिपुक्षयोस्तु
सन्तानवृद्धिसहिताहरिभक्तिरस्तु॥

रा.–(हाथ जोड़ कर प्रणाम करती है)

ब्रा.–महाराज गुरुजी ने यह अभिमंत्रित जल भेजा है। इसे महारानी पहिले तो नेत्रों से लगा लें और फिर थोड़ा–सा पान भी कर लें और यह रक्षाबंधन भेजा है। इसे कुमार रोहिताश्व की दाहिनी भुजा पर बांध दें फिर इस जल से मैं मार्जन करूंगा।

रा.–(नेत्र में जल लगाकर और कुछ मुँह फेर कर आचमन करके) मालती, यह रक्षाबन्धन तू सम्हाल के अपने पास रख। जब रोहितास्व मिले उस के दाहिने हाथ पर बाँध दीजियो।

स.–जो आज्ञा (रक्षाबन्धन अपने पास रखती है)।

ब्रा.–तो अब आप सावधान हो जायें मैं मार्जन कर लूँ।

रा.–(सावधान होकर) जो आज्ञा।

ब्रा.–(दुर्बा से मार्जन करता है)

देवास्त्वामभिषिंचन्तुब्रह्मविष्णुशिवादयः
गन्धर्व्वाःकिन्नराः नागाः रक्षा कुर्व्वन्तुतेसदा
पितरोगुह्यकायक्षाः देव्योभूताचमातरः
सर्व्वेत्वामभिषिंचन्तुरक्षांकुर्वन्तुतेसदा
भद्रमस्तुशिवंचास्तुमहालक्ष्मीप्रसीदतु
पतिपुत्रयुतासाध्विजीत्ववं शरदांशतं॥
(मार्जन का जल पृथ्वी पर फेंककर)
यत्पापंरोगमशुभंतद्दूरेंप्रतिहतमस्तु
(फिर रानी पर मार्जन करके)
यन्मंगलंशुभं सौभाग्यधनधान्यमारोग्यं बहु
पुत्रत्वं तत्सर्व्वमीशप्रसादात्ब्राम्हणवचनात्त्वय्यस्तु

(मार्जन कर के फूल अक्षत रानी के हाथ में देता है)

रा.–(हाथ जोड़कर ब्राह्मण को दक्षिणा देती है)

महाराज गुरु जी से मेरी ओर से बिनती करके दंडवत् कह दीजिएगा।

ब्रा.–जो आज्ञा (आशीर्वाद देकर जाता है)

रा.–आज महाराज अब तक सभा में नहीं आए?

स.–अब आते होंगे, पूजा में कुछ देर लगी होगी।

(नेपथ्य में बैतालिक गाते हैं)

(राग भैरव)

प्रगटहु रविकुलरबि निसि बीती प्रजा कमलगन फूले। मन्द परे रिपुगन तारा सम जन भय तम उन भूले।। नसे चोर लम्पट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो। मागध बंदी सूत चिरैयन मिलि कलरोर मचायो।। तुव कस सीतल पौन परसि चटकीं गुलाब की कलियां। अति सुख पाइ असीस देत सोइ करि अंगुरिन चट अलियां।। भए धर्म मैं थित सब द्विज जन प्रजा काज निज लागे। रिपु जुवती मुख कुमुद मन्द जन चक्रवाक अनुरागे।। अरध सरिस उपहार लिए नृप ठाढ़े तिन कहं तोखौ। न्याव कृपा सों ऊंच-नीच सम समुझि परसि कर पोखौ।

(नेपथ्य में से बाजे की धुनि सुन पड़ती है)

रा.–महाराज ठाकुर जी के मंदिर से चले, देखो बाजों का शब्द सुनाई देता है और बंदी लोग भी गाते आते हैं।

स.–आप कहती हैं चले? वह देखिये आ पहुंचे कि चले।

रा.–(घबरा कर आदर के हेतु उठती हैं)

(परिकर सहित महाराज हरिश्चन्द्र आते हैं)

(रानी प्रणाम करती हैं और सब लोग यथा स्थान बैठते हैं)

ह.–(रानी से प्रीतिपूर्वक) प्रिये! आज तुम्हारा मुखचन्द्र मलीन क्यों हो रहा है?

रा.–पिछली रात मैंने कुछ दु:स्वप्न देखे हैं जिनसे चित्त व्याकुल हो रहा है।

ह.–प्रिये! यद्यपि स्त्रियों का स्वभाव सहज ही भीरु होता है पर तुम तो वीर कन्या, वीरपत्नी और वीरमाता हो तुम्हारा स्वभाव ऐसा क्यों?

रा.–नाथ! मोह से धीरज जाता रहता है।

ह.–सो गुरु जी से कुछ शान्ति करने को नहीं कहलाया।

रा.–महाराज! शान्ति तो गुरु जी ने कर दी है।

ह.–तब क्या चिन्ता है शास्त्र और ईश्वर पर विश्वास रखो सब कल्याण होगा। सदा सर्वदा सहज मंगल साधन करते भी जो आपत्ति आ पड़े तो उसे निरी ईश्वर की इच्छा ही समझ के संतोष करना चाहिए।

रा.–महाराज! स्वप्न के शुभाशुभ का विचार कुछ महाराज ने भी ग्रंथों में देखा है?

ह.–(रानी की बात अनसुनी करके) स्वप्न तो कुछ हमने भी देखा है चिन्तापूर्वक स्मरण करके। हां यह देखा है कि एक क्रोधी ब्राह्मण विद्या साधन करने को सब दिव्य महाविद्याओं को खींचता है और जब मैं स्त्री जान कर उनको बचाने गया हूँ तो वह मुझी से रुष्ट हो गया है और फिर जब बड़े विनय से मैंने उसे मनाया है तो उसने मुझसे मेरा सारा राज्य मांगा है। मैंने उसे प्रसन्न करने को अपना सब राज्य दे दिया है। (इतना कहकर अत्यन्त व्याकुलता नाट्य करता है।)

रा.–नाथ। आप एक साथ ऐसे व्याकुल क्यों हो गए?

ह.–मैं यह सोचता हूँ कि अब मैं उस ब्राह्मण को कहाँ पाऊंगा और बिना उसकी थाती उसे सौंपे भोजन कैसे करूंगा।

रा.–नाथ। क्या स्वप्न के व्योहार को भी आप सत्य मानिएगा?

ह.–प्रिये, हरिश्चन्द्र की अर्द्धांगिनी होकर तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है। हा! भला तुम ऐसी बात मुँह से निकालती हौ! स्वप्न किसने देखा है? मैंने न? फिर क्या? स्वप्न संसार अपने काल में असत्य है इसका कौन प्रमाण है और जो अब असत्य कहो तो मरने के पीछे तो यह संसार भी असत्य है, फिर इस संसार में परलोक के हेतु लोग धर्माचरण क्यों करते हैं? दिया सो दिया, क्या स्वप्न में क्या प्रत्यक्ष।

रा.–(हाथ जोड़कर) नाथ क्षमा कीजिए, स्त्री की बुद्धि ही कितनी।

ह.–(चिन्ता करके) पर मैं अब करूं क्या! अच्छा। प्रधान! नगर में डौंडी पिटवा दो कि राज्य सब लोग आज से अज्ञातनामगोत्र ब्राह्मण का समझें उसके अभाव में हरिश्चन्द्र उसके सेवक की भाँति उसकी थाती समझ के राज का कार्य्य करेगा और दो मुहर राज-काज के हेतु बनवा लो एक पर 'अज्ञातनामगोत्र ब्राह्मण सेवक हरिश्चन्द्र' और दूसरे पर 'राजाधिराज अज्ञात नाम गोत्र ब्राह्मण महाराज' खुदा रहे और आज से राज काज के सब पत्रों पर भी यही नाम रहे। देस देस के राजाओं और बड़े-बड़े कार्याधीशों को भी आज्ञापत्र भेज दो कि महाराज हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में अज्ञातनामगोत्र ब्राह्मण को पृथ्वी दी है इससे आज से उसका राज हरिश्चन्द्र मंत्री की भांति सम्हालेगा।

(द्वारपाल आता है)

द्वा.–महाराजाधिराज! एक बड़ा क्रोधी ब्राह्मण दरवाजे पर खड़ा है और व्यर्थ हम लोगों को गाली देता है।

ह.–(घबरा कर) अभी सादरपूर्वक ले आओ।

द्वा.–जो आज्ञा (जाता है)।

ह.–यदि ईश्वरेच्छा से यह वही ब्राह्मण हो तो बड़ी बात हो।

(द्वारपाल के साथ विश्वामित्र आते हैं)।

ह.–(आदरपूर्वक आगे से लेकर और प्रणाम करके) महाराज! पधारिए, यह आसन है।

वि.–बैठे, बैठ चुके, बोल अभी तैनें मुझे पहिचाना कि नहीं।

ह.–(घबराकर) महाराज! पूर्व परिचित तो आप ज्ञात होते हैं।

वि.–(क्रोध से) सच है रे क्षत्रियाधम। तू काहे को पहिचानेगा, सच है रे सूर्यकुलकलंक तू क्यों पहिचानेगा, धिक्कार तेरे मिथ्या धर्माभिमान को ऐसे ही लोग पृथ्वी को अपने बोझ से दबाते हैं। अरे दुष्ट तै भूल गया कल पृथ्वी किस को दान दी थी, जानता नहीं कि मैं कौन हूँ?

'जातिस्वयंग्रहणदुर्ललितैकविप्रं
दृप्यद्वशिष्ठसुतकाननधूमकेतुम्
सर्गान्तराहरणभीतजगत्कृतान्तं
चण्डालयाजिनमवैषिनकौशिकंमाम्'

ह.–(पैरों पर गिर के बड़े विनय से) महाराज! भला आप को त्रैलोक्य में ऐसा कौन है, जो न जानेगा।

'अन्नक्षयादिषु तथाविहितात्मवृत्ति
राजप्रतिग्रह पराङ्मुखमानसं त्वाम्
आड़ोवकप्रधनकम्पितजीवलोकं
कस्तेजसां च तपसां च निधिर्नवेत्ति।।'

बि.–(क्रोध से) सच है रे पाप, पाखंड मिथ्यादान बीर! तू क्यों न मुझे 'राज प्रतिग्रह प्रांगणमुख' कहेगा क्योंकि तैंने तो कल सारी पृथ्वी मुझे दान न दी है, ठहर-ठहर देख इस झूठ का कैसा फल भोगता है, हा! इसे देख कर क्रोध से जैसे मेरी दाहिनी भुजा शाप देने को उठती है वैसे ही जाति स्मरण के संस्कार से बाई भुजा फिर से कृपाण ग्रहण किया चाहती है, (अत्यन्त क्रोध से लंबी सांस लेकर और बांह उठा कर) अरे ब्रह्मा! सम्हाल अपनी सृष्टि को नहीं तो परम तेज पुच दीर्घतपोवर्द्धित मेरे आज इस असह्य क्रोध से सारा संसार नाश हो जायेगा, अथवा संसार के नाश ही से क्या? ब्रह्मा का तो गर्व उसी दिन मैंने चूर्ण किया

जिस दिन दूसरी सृष्टि बनाई, आज इस राजकुलांगार का अभिमान चूर्ण करूंगा, जो मिथ्या अहंकार के बल से जगत् में दानी प्रसिद्ध हो रहा है।

ह.–(पैरों पर गिर के) महाराज क्षमा कीजिए मैंने इस बुद्धि से नहीं कहा था, सारी पृथ्वी आप की मैं आप का भला आप ऐसी क्षुद्र बात मुँह से निकालते हैं। (ईषत् क्रोध से) और आप बारंबार मुझे झूठा न कहिए। सुनिए मेरी यह प्रतिज्ञा है।

'चन्द टरै सूरज टरै टरै जगत ब्योहार।
पै दृढ़ श्रीहरिश्चन्द को टरै न सत्य बिचार'।।

बि.–(क्रोध और अनादर पूर्वक हंस कर) सच है सच है रे मूढ़! क्यों नहीं, आखिर सूर्यवंशी है। तो दे हमारी पृथ्वी।

ह.–लीजिए, इसमें विलम्ब क्या है, मैंने तो आप के आगमन के पूर्व ही से अपना अधिकार छोड़ दिया है। (पृथ्वी की ओर देखकर)

जेहि पाली इक्ष्वाकु सीं अबलौं रवि कुल राज।
ताहि देत हरिश्चन्द नृप विश्वामित्र हि आज।।

वसुधे! तुम बहु सुख कियो मम पुरुखन की होय। धरमबद्ध हरिश्चन्द को छमहु सु परबस जोय।।

वि.–(आप ही आप) अच्छा! अभी अभिमान दिखा ले, तो मेरा नाम विश्वामित्र जो तुझको सत्यभ्रष्ट कर के छोड़ा और लक्ष्मी से तो भ्रष्ट हो ही चुका है। (प्रगट) स्वस्ति। अब इस महादान की दक्षिणा कहां है?

ह.–महाराज! जो आज्ञा हो वह दक्षिणा अभी आती है।

वि.–भला सहस्र स्वर्ण मुद्रा से कम इतने बड़े दान की दक्षिणा क्या होगी।

ह.–जो आज्ञा (मंत्री से) मंत्री हजार स्वर्ण मुद्रा अभी लाओ।

वि.–(क्रोध से) 'मंत्री हजार स्वर्ण मुद्रा अभी लाओ' मंत्री कहां से लावेगा? क्या अब खजाना तेरा है कि तैं मंत्री पर हुकुम चलाता है? झूठा कहीं का, देना ही नहीं था तो मुँह से कहा क्यों? चल मैं नहीं लेता ऐसे मनुष्य की दक्षिणा।

ह.–(हाथ जोड़कर विनय से) महाराज ठीक है। खजाना अब सब आप का है, मैं भूला क्षमा कीजिए। क्या हुआ खजाना नहीं है तो मेरा शरीर तो है।

वि.–एक महीने में जो मुझे दक्षिणा न मिलेगी तो मैं तुझ पर कठिन ब्रह्मदंड गिराऊंगा, देख केवल एक मास की अवधि है।

ह.–महाराज! मैं ब्रह्मदंड से उतना नहीं डरता जितना सत्यदंड से इससे बेचि देह दारा सुअन होइ दास हूँ मन्द।
रखि है निज बच सत्य करि अभिमानी हरिश्चन्द।।
(आकाश से फूल की वृष्टि और बाजे के साथ जयध्वनि होती है)
(जवनिका गिरती है)
।। इति दूसरा अंक।।

तीसरे अंक में अंकावतार

स्थान वाराणसी का बाहरी प्रान्त तालाब।
(पाप आता है)

पाप–(इधर-उधर दौड़ता और हांफता हुआ) मरे रे मरे, जले रे जले, कहां जायें, सारी पृथ्वी तो हरिश्चन्द्र के पुण्य से ऐसी पवित्र हो रही है कि कहीं हम ठहर ही नहीं सकते। सुना है कि राजा हरिश्चन्द्र काशी गए हैं क्योंकि दक्षिणा के वास्ते विश्वामित्र ने कहा कि सारी पृथ्वी तो हमको तुमने दान दे दी है, इससे पृथ्वी में जितना धन है सब हमारा हो चुका और तुम पृथ्वी में कहीं भी अपने को बेचकर हमसे उरिन नहीं हो सकते। यह बात जब हरिश्चन्द्र ने सुनी तो बहुत ही घबराए और सोच-विचार कर कहा कि बहुत अच्छा महाराज हम काशी में अपना शरीर बेचेंगे क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि काशी पृथ्वी के बाहर शिव के त्रिशूल पर है। यह सुनकर हम भी दौड़े कि चलो हम भी काशी चलें क्योंकि जहाँ हरिश्चन्द्र का राज्य न होगा वहाँ हमारे प्राण बचेंगे, सो यहाँ और भी उत्पात हो रहा है। जहाँ देखो वहाँ स्नान, पूजा, जप, पाठ, दान, धर्म, होम इत्यादि में लोग ऐसे लगे रहते हैं कि हमारी मानो जड़ ही खोद डालेंगे। रात-दिन शंख घंटा की घनघोर के साथ वेद की धूनि मानो ललकार के हमारे शत्रु धर्म की जय मनाती है और हमारे ताप से कैसा भी मनुष्य क्यों न तपा हो भगवती भागीरथी के जलकण मिले वायु से उस का हृदय एक साथ शीतल हो जाता है। इसके उपरान्त शि शि शि..... ध्वनि अलग मारे डालती है। हायः कहाँ जायें क्या करें। हमारी तो संसार से मानो जड़ ही कट जाती है, भला और जगह तो कुछ हमारी चलती भी है पर यहाँ तो मानो हमारा राज ही नहीं, कैसा भी बड़ा पापी क्यों न हो यहाँ आया कि गति हुई।

(नेपथ्य में)

येषांक्वापिगतिर्नास्ति तेषांवाराणसीगतिः

पाप–सच है, अरे! यह कौन महा भयंकर भेस, अंग में भभूत पोतेय एड़ी तक जटा लटकाए, लाल-लाल आँख निकाले साक्षात् काल की भांति त्रिशूल घुमाता हुआ चला आता है। प्राण! तुम्हें जो अपनी रक्षा करनी हो तो भागो पाताल में, अब इस समय भूमंडल में तुम्हारा ठिकाना लगना कठिन ही है।

(भागता हुआ जाता है)

(भैरव आते हैं)

भैर.–सच है। येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः। देखो इतना बड़ा पुण्यशील राजा हरिश्चन्द्र भी अपनी आत्मा और स्त्री, पुत्र बेचने को यहीं आया है। अहा! धन्य है सत्य। आज जब भगवान भूतनाथ राजा हरिश्चन्द्र का वृतांत भवानी से कहने लगे तो उनके तीनों नेत्र अश्रु से पूर्ण हो गए और रोमांच होने से सब शरीर के भस्मकण अलग-अलग हो गए। मुझको आज्ञा भी दी हुई है कि अलक्ष रूप से तुम सर्वदा राजा हरिश्चन्द्र की अंगरक्षा करना। इससे चलूं। मैं भी भेस बदलकर भगवान की आज्ञा पालन में प्रवर्त्त हूँ।

(जाते हैं। जवनिका गिरती है)

तीसरे अंक में यह अंकावतार समाप्त हुआ

तीसरा अंक

(स्थान काशी के घाट किनारे की सड़क)

महाराज हरिश्चन्द्र घूमते हुए दिखाई पड़ते हैं

ह.–देखो काशी भी पहुंच गए। अहा! धन्य है काशी। भगवति बाराणसि तुम्हें अनेक प्रणाम है। अहा! काशी की कैसी अनुपम शोभा है।

'चारहु आश्रम बर्न बसै मनि कंचन धाम अकास बिभासिका। सोभा नहीं कहि जाइ कछू बिधि नै रची मनो पुरीन की नासिका। आपु बसैं गिरि धारनजू तट देवनदी बर बारि बिलासिका। पुन्यप्रकासिका पापबिनासिका हीयहुलासिका सोहत कासिका'।। 1।।

'बसैं बिंदुमाधव बिसेसरादि देव सबै दरसन ही तें लागै जम मुख मसी है। तीरथ अनादि पंचगंगा मनिकर्निकादि सात आवरन मध्य पुन्य रूप धंसी है। गिरिधरदास पास भागीरथी सोभा देत जाकी धार तौरै आसु कर्म रूप रसी है। समी सम जसी असी बरना में बसी पाप खसी हेतु असी ऐसी लसी बारानणसि है'।। 2।।

'रचित प्रभासी भासी अवलि मकानन की जिनमें अकासी फबै रतन नकासी है। फिरैं दास दासी बिप्रगृही औ संन्यासी लसै बर गुनरासी देवपुरी हूँ न

जासी है। गिरिधरदास बिश्वकीरति बिलासी रमा हासी लौं उजासी जाकी जगत हुलासी है। खासी परकासी पुनवांसी चंद्रिक्रा-सी जाके वासी अबिनासी अघनासी ऐसी कासी है'।। 3।।

देखो। जैसा ईश्वर ने यह सुंदर अंगूठी के नगीने-सा नगर बनाया है वैसी ही नदी भी इसके लिये दी है। धन्य गंगे!

'जम की सब त्रास बिनास करी मुख तें निज नाम उचारन में। सब पाप प्रतापहि दूर दर्‌यौ तुम आपन आप निहारन में। अहो गंग अनंग के शत्रु करे बहु नेकु जलै मुख डारन में। गिरिधारनजू कितने बिरचे गिरिधारन धारन धारन में'।। 4।।

कुछ महात्म ही पर नहीं गंगा जी का जल भी ऐसा ही उत्तम और मनोहर है। आहा

नव उज्जल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूंद मध्यमुक्ता मनि पोहति।।
लोल लहर लहि पवन एक पैं इक इमि आवत।
जिमि नरगन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत।।
सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सब के मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत।।
श्री हरिपदनख चन्द्रकान्त मनि द्रवित सुधारस।
ब्रह्म कमंडल मंडन भव खंडन सुर सरबस।।
शिव सिर मालति माल भगीरथ नृपति पुन्य फल।
ऐरावत गज गिरि पति हिम नग कंठहार कल।।
सगर सुअन सठ सहस्स परम जल मात्र उधारन।
अगिनित धारारूप धारि सागर संचारन।।
कासी कहं प्रिय जानि ललकि भेंट्‌यौ जब धाई।
सपनेहूँ नहिं तजी रहीं अंकन लपटाई।।
कहूँ बंधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुं छतरी कहुं मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत।।
धवल धाम चहुं ओर फरहरत धुजा पताका।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका।।
मधुरी नौबत बजब कहूँ नारि नर गावत।
बेद पढ़त कहुं द्विज कहुं जोगी ध्यान लगावत।

कहूँ सुंदरी नहात नीर कर जुगल उछारत।
जुग अंबुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत।।
धोअत सुंदरि बदन करन अति ही छबि पावत।
'बारिधि नाते ससि कलंक मनु कमल मिटावत'।।
सुंदरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुंदर सोहत।
कमल बेलि लहलही नवल कुसमन मन मोहत।।
दीठि जहीं जहं जात रहत तितही ठहराई।
गंगा छबि हरिचन्द्र कछू बरनी नहीं जाई।।

(कुछ सोचकर) पर हां! जो अपना जी दुखी होता है तो संसार सून जान पड़ता है।

असनं वसनं वासो येषां चौवाविधानत:।
मगधेनसमाकाशी गंगाप्यंगारवाहिनी।।1

विश्वामित्र को पृथ्वी दान करके जितना चित्त प्रसन्न नहीं हुआ उतना अब बिना दक्षिणा दिये दुखी होता है। हा! कैसे कष्ट की बात है राजपाट धनधाम सब छूटा अब दक्षिणा कहाँ से देंगे! क्या करें! हम सत्य धर्म कभी छोड़ें नहीं और मुनि ऐसे क्रोधी हैं कि बिना दक्षिणा मिले शाप देने को तैयार होंगे और जो वह शाप न भी देंगे तो क्या? हम ब्राह्मण का ऋण चुकाए बिना शरीर भी तो नहीं त्याग कर सकते। क्या करें? कुबेर को जीतकर धन लावें? पर कोई शस्त्र भी तो नहीं है। तो क्या किसी से मांग कर दें? पर क्षत्रिय का तो धर्म नहीं कि किसी के आगे हाथ पसारे। फिर ऋण काढ़ें? पर देंगे कहां से। हा! देखो काशी में आकर लोग संसार के बंधन से छूटते हैं पर हमको यहाँ भी हाय-हाय मची है। हा! पृथ्वी! तू फट क्यों नहीं जाती कि मैं अपना कलंकित मुँह फिर किसी को न दिखाऊं। (आतंक से) पर यह क्या? सूर्यवंश में उत्पन्न होकर हमारे यह कर्म हैं कि ब्राह्मण का ऋण दिए बिना पृथ्वी में समा जाना सोचें। (कुछ सोच कर) हमारी तो इस समय कुछ बुद्धि ही नहीं काम करती। क्या करें? हमें तो संसार सूना देख पड़ता है। (चिंता करके। एक साथ हर्ष से) वाह, अभी तो स्त्री पुत्र और हम तीन-तीन मनुष्य तैयार हैं। क्या हम लोगों के बिकने से सहस्र स्वर्ण मुद्रा भी न मिलेंगी? तब फिर किस बात का इतना सोच? न जाने बुद्धि इतनी देर तक कहाँ सोई थी। हमने तो पहले ही विश्वामित्र से कहा था।

बेचि देह दारा सुअन होय दास हूँ मंद।
रखि हैं निज बच सत्य करि अभिमानी हरिश्चन्द।।

(नेपथ्य में) तो क्यों नहीं जल्दी अपने को बेचता? क्या हमें और काम नहीं है कि तेरे पीछे-पीछे दक्षिणा के वास्ते लगे फिरें?

ह.—अरे मुनि तो आ पहुंचे। क्या हुआ आज उनसे एक-दो दिन की अवधि और लेंगे।

विश्वामित्र आते हैं।

वि.—(आप ही आप) हमारी विद्या सिद्ध हुई भी इसी दुष्ट के कारण फिर बहक गई कुछ इन्द्र के कहने ही पर नहीं हमारा इस पर स्वत: भी क्रोध है पर क्या करें इसके सत्य, धैर्य और विनय के आगे हमारा क्रोध कुछ काम नहीं करता। यद्यपि यह राज्य भ्रष्ट हो चुका पर जब तक इसे सत्य भ्रष्ट न कर लूंगा तब तक मेरा संतोष न होगा (आगे देखकर) अरे यही दुरात्मा (कुछ रुककर) वा महात्मा हरिश्चंद्र है। (प्रगट) क्यों रे आज महीने में कै दिन बाकी है। बोल कब दक्षिणा देगा?

ह.—(घबराकर) अहा! महात्मा कौशिक। भगवान प्रणाम करता हूँ। (दंडवतू करता है)।

वि.—हुई प्रणाम, बोल तैं ने दक्षिणा देने का क्या उपाय किया? आज महीना पूरा हुआ अब मैं एक क्षण भर भी न मानूंगा। दे अभी नहीं तो-(शाप के वास्ते कमंडल से जल हाथ में लेते हैं।)

ह.—(पैरों पर गिरकर) भगवन् क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए। यदि आज सूर्यास्त के पहिले न दूं तो जो चाहे कीजिएगा। मैं अभी अपने को बेचकर मुद्रा ले आता हूँ।

वि.—(आप ही आप) वाह रे महानुभावता! (प्रगट) अच्छा आज सांझ तक और सही। सांझ को न देगा तो मैं शाप ही न दूंगा बरंच त्रैलोक्य में आज ही विदित कर दूंगा कि हरिश्चन्द्र सत्य भ्रष्ट हुआ। (जाते हैं)

ह.—भला किसी तरह मुनी से प्राण बचे। अब चलें अपना शरीर बेच कर दक्षिणा देने का उपाय सोचें। हा! ऋण भी कैसी बुरी वस्तु है, इस लोक में वही मनुष्य कृतार्थ है जिस ने ऋण चुका देने को कभी क्रोधी और क्रूर लहनदार की लाल आँखें नहीं देखी हैं। (आगे चल कर) अरे क्या बाजार में आ गए, अच्छा, (सिर पर तृण रखकर) अरे सुनो भाई सेठ, साहूकार, महाजन, दुकानदार, हम किसी कारण से अपने को हजार मोहर पर बेचते हैं किसी को लेना हो तो लो। (इसी तरह कहता हुआ इधर-उधर फिरता है) देखो कोई दिन वह था कि इसी मनुष्य विक्रय को अनुचित जानकर हम दूसरों को दंड देते थे पर आज वही कर्म हम आप करते

हैं। दैव बली है। (अरे सुनो भाई इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिरता है। ऊपर देखकर) क्या कहा? 'क्यों तुम ऐसा दुष्कर कर्म करते हो?' आर्य यह मत पूछो, यह सब कर्म की गति है। (ऊपर देखकर) क्या कहा? 'तुम क्या-क्या कर सकते हो, क्या समझते हो और किस तरह रहोगे?' इस का क्या पूछना है। स्वामी जो कहेगा वही करेंगे, समझते सब कुछ हैं पर इस अवसर पर कुछ समझना काम नहीं आता और जैसे स्वामी रखेगा वैसे रहेंगे। जब अपने को बेच ही दिया तब इसका क्या विचार है। (ऊपर देखकर) क्या कहा? 'कुछ दाम कम करो।' आर्य हम लोग तो क्षत्रिय हैं, हम दो बात कहां से जाने। जो कुछ ठीक था कह दिया।

(नेपथ्य में से)

आर्यपुत्र! ऐसे समय में हम को छोड़े जाते हो। तुम दास होगे तो मैं स्वाधीन रहके क्या करूंगी। स्त्री को अर्द्धांगिनी कहते हैं, इससे पहिले बायां अंग बेच लो तब दाहिना अंग बेचो।

ह.–(सुनकर बड़े शोक से) हा! रानी की यह दशा इन आँखों से कैसे देखी जायेगी!

(सड़क पर शैव्या और बालक फिरते हुए दिखाई पड़ते हैं)

शै.–कोई महात्मा कृपा करके हम को मोल ले तो बड़ा उपकार हो।

बा.–अम को बी कोई मोल ले लो बला उपकाल ओ।

शै.–(आँखों में आंसू भरकर) पुत्र! चन्द्रकुलभूषण महाराज वीरसेन का नाती और सूर्यकुल की शोभा महाराज हरिश्चन्द्र का पुत्र होकर तू क्यों ऐसे कातर वचन कहता है। मैं अभी जीती हूँ! (रोती है)

बा.–(माँ का अंचल पकड़ के) माँ! तुमको कोई मोल लेगा तो अम को भी मोल लेगा। आं आं मा लोती काए को औ। (कुछ रोना-सा मुँह बना के शैव्या का आंचल पकड़ के झूलने लगता है।)

शै.–(आंसू पोंछकर) पुत्र! मेरे भाग्य से पूछ।

ह.–अहह! भाग्य! यह भी तुम्हें देखना था। हा! अयोध्या की प्रजा रोती रह गई हम उनको कुछ धीरज भी न दे आए। उनकी अब कौन गति होगी। हा! यह नहीं कि राज छूटने पर भी छुटकारा हो अब यह देखना पड़ा। हृदय तुम इस चक्रवर्ती की सेवा योग्य बालक और स्त्री को बिकता देखकर टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाते? (बारंबार लंबी सांसें लेकर आंसू बहाता है)।

शै.–(कोई महात्मा इत्यादि कहती हुई ऊपर देखकर) क्या कहा? 'क्या क्या करोगी?' पर पुरुष से संभाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़कर और सब सेवा

करूंगी। (ऊपर देखकर) क्या कहा? 'पर इतने मोल पर कौन लेगा?' आर्य कोई साधु ब्राह्मण महात्मा कृपा करके ले ही लेंगे।

(उपाध्याय और बटुक आते हैं)

उ.–क्यों रे कौंडिन्य! सच ही दासी बिकती है?

ब.–हाँ गुरुजी क्या मैं झूठ कहूँगा। आप ही देख लीजिएगा।

उ.–तो चल, आगे भीड़ हटाता चल। देख धाराप्रवाही भांति कैसे सब काम काजी लोग इधर से उधर फिर रहे हैं। भीड़ के मारे पैर धरने की जगह नहीं है और मारे कोलाहल के कान नहीं दिया जाता।

ब.–(आगे-आगे चलता हुआ) हटो भाई हटो (कुछ आगे बढ़कर) गुरुजी यह जहाँ भीड़ लगी है वहीं होगी।

उ.–(शैव्या को देखकर) अरे यही दासी बिकती है?

शै.–(अरे कोई हम को मोल ले इत्यादि कहती और रोती है)

बा.–(माता की भांति तोतली बोली से कहता है)

उ.–पुत्री। कहो तुम कौन-कौन सेवा करोगी?

शै.–पर पुरुष से सम्भाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़कर और जो-जो कहिएगा सब सेवा करूंगी।

उ.–वाह! ठीक है। अच्छा लो यह सुबर्ण। हमारी ब्राह्मणी अग्निहोत्र के अग्नि की सेवा से घर से काम-काज नहीं कर सकती सो तुम सम्हालना।

शै.–(हाथ फैलाकर) महाराज आप ने बड़ा उपकार किया।

उ.–(शैव्या को भली-भांति देखकर आप ही आप) आहा! यह निःसंदेह किसी बड़े कुल की है। इसका मुख सहज लज्जा से ऊँचा नहीं होता और दृष्टि बराबर पैर ही पर है। जो बोलती है वह धीरे-धीरे बहुत सम्हाल के बोलती है। हा! इसकी यह गति क्यों हुई! (प्रगट) पुत्री तुम्हारे पति है न?

श.–(राजा की ओर देखती)

ह.–(आप ही आप दुख से) अब नहीं। पति के होते भी ऐसी स्त्री की यह दशा हो।

उ.–(राजा को देखकर आश्चर्य से) अरे यह विशाल नेत्र, प्रशस्त वक्षस्थल और संसार की रक्षा करने के योग्य लंबी-लंबी भुजा वाला कौन मनुष्य है और मुकुट के योग्य सिर पर तृण क्यों रक्खा है? (प्रगट) महात्मा तुम हम को अपने दुख का भागी समझो और कृपा पूर्वक अपना सब वृत्तांत कहो।

ह.–भगवान् और तो विदित करने का अवसर नहीं है इतना ही कह सकता हूँ कि ब्राह्मण के ऋण के कारण यह दशा हुई।

उ.–तो हम से धन लेकर आप शीघ्र ही ऋणमुक्त हूजिए।

ह.–(दोनों कानों पर हाथ रखकर) राम राम! यह तो ब्राह्मण की वृत्ति है। आप से धन लेकर हमारी कौन गति होगी?

उ.–तो पाँच हजार पर आप दोनों में से जो चाहे सो हमारे संग चले।

शै.–(राजा से हाथ जोड़कर) नाथ हमारे आछत आप मत बिकिए, जिस में हम को अपनी आँख से यह न देखना पड़े हमारी इतनी बिनती मानिए। (रोती है)

ह.–(आँसू रोक कर) अच्छा! तुम्ही जाओ। (आप ही आप) हा! यह बज्र हृदय हरिश्चन्द्र ही का है कि अब भी नहीं बिदीर्ण होता।

शै.–(राजा के कपड़े में सोना बांधती हुई) नाथ! अब तो दर्शन भी दुर्लभ होंगे। (रोती हुई उपाध्याय से) आर्य आप क्षण भर क्षमा करें तो मैं आर्यपुत्र का भली-भांति दर्शन कर लूं। फिर यह मुख कहाँ और मैं कहाँ।

उ.–हाँ हाँ मैं जाता हूँ। कौडिन्य यहाँ है तुम उसके साथ आना। (जाता है)

शै.–(रोकर) नाथ मेरे अपराधों को क्षमा करना।

ह.–(अत्यन्त घबराकर) अरे अरे विधाता तुझे यही करना था। (आप ही आप) हा! पहिले महारानी बनाकर अब दैव ने इसे दासी बनाया। यह भी देखना बदा था। हमारी इस दुर्गति से आज कुलगुरु भगवान सूर्य का भी मुख मलिन हो रहा है। (रोता हुआ प्रगट रानी से) प्रिये सर्वभाव से उपाध्याय को प्रसन्न रखना और सेवा करना।

शै.–(रोकर) नाथ! जो आज्ञा।

बटु.–उपाध्याय जी गए अब चलो जल्दी करो।

ह.–(आँखों में आँसू भर के) देवी (फिर रुक कर अत्यंत सोच में आप ही आप) हाय! अब मैं देवी क्यों कहता हूँ अब तो विधाता ने इसे दासी बनाया। (धैर्य से) देवी! उपाध्याय की आराधना भली-भांति करना और इनके सब शिष्यों से भी सुहृत भाव रखना, ब्राह्मण के स्त्री की प्रीति पूर्वक सेवा करना, बालक का यथासंभव पालन करना और अपने धर्म और प्राण की रक्षा करना। विशेष हम क्या समझावें जो जो दैव दिखावे उसे धीरज से देखना। (आंसू बहते हैं)

शै.–जो आज्ञा (राजा के पैरों पर गिर के रोती है)।

ह.–(धैर्य पूर्वक) प्रिये! देर मत करो बटुक घबरा रहे हैं।

श.–(उठ कर रोती और राजा की ओर देखती हुई धीरे-धीरे चलती है)

वा.–(राजा से) पिता माँ कआँ जाती ऐं।

ह.–(धैर्य से आंसू रोककर) जहाँ हमारे भाग्य ने उसे दासी बनाया है।

बा.–(बटुक से) अले मां को मत लेजा। (माँ का आँचल पकड़ के खींचता है)

बटु.–(बालक को ढकेल कर) चल-चल देर होती है।

बा.–(ढकेलने से गिर कर रोता हुआ उठकर अत्यंत क्रोध और करुणा से माता-पिता की ओर देखता है)

ह.–ब्राह्मण, देवता! बालकों के अपराध से नहीं रुष्ट होना (बालक को उठाकर धूर पोंछ के मुँह चूमता हुआ) पुत्र मुझ चांडाल का मुख इस समय ऐसे क्रोध से क्यों देखता है? ब्राह्मण का क्रोध तो सभी दशा में सहना चाहिए। जाओ माता के संग मुझ भाग्यहीन के साथ रह कर क्या करोगे। (रानी से) प्रिये धैर्य धरो। अपना कुल और जाति स्मरण करो। अब जाओ, देर होती है।

(रानी और बालक रोते हुए बटुक के साथ जाते हैं)

ह.–धन्य हरिश्चन्द्र! तुम्हारे सिवाय और ऐसा कठोर हृदय किस का होगा। संसार में धन और जन छोड़कर लोग स्त्री की रक्षा करते हैं पर तुमने उसका भी त्याग किया।

(विश्वामित्र आते हैं)

ह.–(पैर पर गिर के प्रणाम करता है)

बि.–ला दे दक्षिणा। अब सांझ होने में कुछ देर नहीं है।

ह.–(हाथ जोड़कर) महाराज आधी लीजिए आधी अभी देता हूँ। (सोना देता है)

बि.–हम आधी दक्षिणा लेके क्या करें! दे चाहे जहाँ से सब दक्षिणा। (नेपथ्य में) धिक् तपो धिक् व्रतमिदं ध्कि ज्ञानं धिक् बहुश्रुतम्। नीतंवान सियब्रह्मन् हरिश्चंद्रमिमां दशां।

बि.–(बड़े क्रोध से) आः हमको धिक्कार देने वाला यह कौन दुष्ट है? (ऊपर देखकर) अरे बिश्वेदेवा (क्रोध से जल हाथ में लेकर) अरे क्षत्रिय के पक्षपातियो! तुम अभी विमान से गिरो और क्षत्रिय के कुल में तुम्हारा जन्म हो और वहाँ भी लड़कपन ही में ब्राह्मण के हाथ से मारे जाओ। जल छोड़ते हैं,

(नेपथ्य में हाहाकार के साथ बड़ा शब्द होता है)

(सुनकर और ऊपर देखकर आनंद से) हहहह! अच्छा हुआ! यह देखो किरीट कुंडल बिना मेरे क्रोध से विमान से छूट कर विश्वेदेवा उल्टे हो-हो कर नीचे गिरते हैं। और हमको धिक्कार दें।

ह.–(ऊपर देखकर भय से) वाह रे तप का प्रभाव। (आप ही आप) तब तो हरिश्चन्द्र को अब तक शाप नहीं दिया है यही बड़ा अनुग्रह है। (प्रगट) भगवन् यह स्त्री बेचकर आधा धन पाया है सो लें और आधा हम अपने को बेचकर अभी देते हैं। (नेपथ्य में) अरे अब तो नहीं सही जाती।

बि.–हम आधा न लेंगे चाहे जहाँ से अभी सब दे।

ह.–(अरे सुनो भाई सेठ साहूकार इत्यादि पुकारता हुआ घूमता है)

(चांडाल के भेष में धर्म और सत्य आते हैं)

धर्म–(आप ही आप)

हम प्रत्तच्छ हरिरूप जगत हमरे बल चालत।
जल थल नभ थिर मो प्रभाव मरजाद न टालत।।
हमहीं नर के मीत सदा सांचे हितकारी।
इक हमहीं संग जात तजत जब पितु सुत नारी।।
सो हम नित थित इक सत्य मैं जाके बल सब जियो।
सोइ सत्य परिच्छन नृपति को आजु भेस हम यह कियो।।

(आश्चर्य से आप ही आप) सचमुच इस राजर्षि के समान दूसरा आज त्रिभुवन में नहीं है। (आगे बढ़कर प्रत्यक्ष) अरे हरजनवाँ! मोहर का संदूख ले आवा है न?

सत्य.–क चौधरी मोहर ले के का करबो?

धर्म.–तों हमे का काम पूछै से?

(दोनों आगे बढ़ते हुए फिरते हैं)

ह.–(अरे सुनो भाई सेठ साहूकार इत्यादि दो तीन बेर पुकार के इधर-उधर घूमकर) हाय! कोई नहीं बोलता और कुलगुरु भगवान सूर्य भी आज हमसे रुष्ट हो कर शीघ्र ही अस्ताचल जाया चाहते हैं। (घबराहट दिखाता है)।

धर्म–(आप ही आप) हाय-हाय! इस समय इस महात्मा को बड़ा ही कष्ट है। तो अब चलें आगे। (आगे बढ़ कर) अरे अरे हम तुम को मोल लेंगे। लेव यह पचास सै मोहर लेव।

ह.–(आनन्द से आगे बढ़कर) वाह कृपानिधान! बड़े अवसर पर आए। लाइये। (उसको पहिचान कर) आप मोल लोगे?

धर्म–हाँ हम मोल लेंगे। (सोना देना चाहता है)।

ह.–आप कौन हैं?

धर्म–हम चौधरी डोम सरदार।

अमल हमारा दोनों पार।।

सब मसान पर हमारा राज।

कफन मांगने का है काज।।

फूलमती देवी के दास।

पूजैं सती मसान निवास।।

धनतेरस औ रात दिवाली।

बल चढ़ाय के पूजैं काली।।

सो हम तुमको लेंगे मोल।

देंगे मुहर गांठ के खोल।।

(मत्त की भांति चेष्टा करता है)

ह.–(बड़े दु:ख से) अहह! बड़ा दारुण व्यसन उपस्थित हुआ है। (विश्वामित्र से) भगवान मैं पैर पड़ता हूँ, मैं जन्म भर आप का दास होकर रहूँगा, मुझे चांडाल होने से बचाइए।।

वि.–छि: मूर्ख! भला हम दास लेके क्या करेंगे।

'स्वयंदासास्तपस्विन:'

ह.–(हाथ जोड़कर) जो आज्ञा कीजियेगा हम सब करेंगे।

वि.–सब करेगा न? (ऊपर हाथ उठाकर) कर्म के साक्षी देवता लोग सुनें, यह कहता है कि जो आप कहेंगे मैं सब करूंगा।

ह.–हाँ हाँ जो आप आज्ञा कीजिएगा सब करूंगा।

बि.–तो इसी ग्राहक के हाथ अपने को बेचकर अभी हमारी शेष दक्षिणा चुका दे।

ह.–जो आज्ञा। (आप ही आप) अब कौन सोच है। (प्रगट धर्म से) तो हम एक नियम पर बिकेंगे।

धर्म–वह कौन?

ह.–भीख असन कम्मल बसन रखिहैं दूर निवास।

जो प्रभु आज्ञा होइ है करि हैं सब ह्वै दास।।

धर्म–ठीक है लेव सोना (दूर से राजा के आंचल में मोहर देता है)

ह.–(लेकर हर्ष से आप ही आप)

ऋण छूट्यो पूर्‌यो बचन द्विजहु न दीनो शाप।
सत्य पालि चंडालहू होइ आजु मोहि दाप।।
(प्रगट विश्वामित्र से) भगवन् लीजिए यह मोहर।
बि.–(मुँह चिढ़ाकर) सचमुच देता है?
ह.–हाँ हाँ यह लीजिए। (मोहर देते हैं)
बि.–(लेकर) स्वस्ति। (आप ही आप) बस अब चलो बहुत परीक्षा हो चुकी। (जाना चाहते हैं)
ह.–(हाथ जोड़कर) भगवन् दक्षिणा देने में देर होने का अपराध क्षमा हुआ न?
बि.–हाँ क्षमा हुआ। अब हम जाते हैं।
ह.–भगवन् प्रणाम करता हूँ।
(विश्वामित्र आशीर्वाद देकर जाते हैं)
ह.–अब चौधरी जी (लज्जा से रुककर) स्वामी की जो आज्ञा हो वह करें।
धर्म–(मत्त की भांति नाचता हुआ)
जाओ अभी दक्खिनी मसान।
लेओ वहाँ कफ्फन का दान।।
जो कर तुमको नहीं चुकावै।
सो किरिया करने नहिं पावै।।
चलो घाट पर करो निवास।
भए आज से मेरे दास।।
ह.–जो आज्ञा। (जवनिका गिरती है)
सत्यहरिश्चन्द्र का तीसरा अंक समाप्त हुआ।

चौथा अंक

स्थानः दक्षिण, शमशान, नदी, पीपल का बड़ा पेड़,
चिता, मुर्दे, कौए, सियार, कुत्ते, हड्डी, इत्यादि।
कम्बल ओढ़े और एक मोटा लट्ठ लिए हुए राजा हरिश्चन्द्र फिरते दिखाई पड़ते हैं।
ह.–(लम्बी सांस लेकर) हाय! अब जन्म भर यही दुख भोगना पड़ेगा।
जाति दास चंडाल की, घर घनघोर मसान।
कफन खसोटी को करम, सबही एक समान।।

न जाने विधाता का क्रोध इतने पर भी शांत हुआ कि नहीं। बड़ों ने सच कहा है कि दु:ख से दु:ख जाता है। दक्षिणा का ऋण चुका तो यह कर्म करना पड़ा। हम क्या सोचें। अपनी अनाथ प्रजा को, या दीन नातेदारों को या अशरश नौकरों को, या रोती हुई दासियों को, या सूनी अयोध्या को, या दासी बनी महारानी को, या उस अनजान बालक को, या अपने ही इस चंडालपने को। हा! बटुक के धक्के से गिरकर रोहिताश्व ने क्रोधभरी और रानी ने जाते समय करुणाभरी दृष्टि से जो मेरी ओर देखा था वह अब तक नहीं भूलती। (घबरा कर) हा देवी! सूर्यकुल की बहू और चंद्रकुल की बेटी होकर तुम बेची गईं और दासी बनीं। हा! तुम अपने जिन सुकुमार हाथों से फूल की माला भी नहीं गुथ सकती थीं उनसे बर्तन कैसे मांजोगी! (मोह प्राप्त होने चाहता है पर सम्हल कर) अथवा क्या हुआ? यह तो कोई न कहेगा कि हरिश्चन्द्र ने सत्य छोड़ा।

बेचि देह दारा सुअन होई दासहू मन्द।
राख्यौ निज बच सत्य करि अभिमानी हरिश्चन्द।।

(आकाश से पुष्पवृष्टि होती है)

अरे! यह असमय में पुष्पवृष्टि कैसी? कोई पुण्यात्मा का मुर्दा आया होगा। तो हम सावधान हो जायें। (लट्ठ कंधे पर रखकर फिरता हुआ) खबरदार खबरदार बिना हम से कहे और बिना हमें आधा कफन दिये कोई संस्कार न करे। (यही कहता हुआ निर्भय मुद्रा से इधर-उधर देखता फिरता है) (नेपथ्य में कोलाहल सुनकर) हाय-हाय! कैसा भयंकर शमशान है! दूर से मंडल बांध-बांध कर चोंच बाए, डैना फैलाए, कंगालों की तरह मुर्दों पर गिद्ध कैसे गिरते हैं और कैसा मांस नोंच-नोंच कर आपस में लड़ते और चिल्लाते हैं। इधर अत्यंत कर्णकटु अमंगल के नगाड़े की भांति एक के शब्द की लाग से दूसरे सियार कैसे रोते हैं। उधर चिराईन फैलाती हुई चट-चट करती चिता कैसी जल रही हैं, जिन में कहीं से मांस के टुकड़े उड़ते हैं, कहीं लोहू बा चर्बी बहती है। आग का रंग मांस के संबंध से नीला-पीला हो रहा है। ज्वाला घूम-घूम कर निकलती है। आग कभी एक साथ धधक उठती है कभी मन्द हो जाती है। धुआँ चारों ओर छा रहा है। (आगे देखकर आदर से) अहा! यह वीभत्स व्यापार भी बड़ाई के योग्य है। शव! तुम धन्य हो कि इन पशुओं के इतने काम आते हो। अएतएव कहा है

'मरनो भलो विदेश को जहाँ न अपुनो कोय।
माटी खायं जनावरा महा महोच्छव होय।।'

अहा! देखो

सिर पर बैठ्यो काग आंख दोउ खात निकारत।

खींचत जीभहि स्यार अतिहि आनन्द उर धारत।।
गिद्ध जांघ कहं खोदि खोदि कै मांस उचारत।
स्वान आँगुरिन काटि काटि कै खान बिचारत।।
बहु चील नोचि लै जात तुच मोद बढ्यौ सबको हियो
मनु ब्रह्मभोज जिजमान कोउ आजु भिखारिन कहँ दियो।।
सोई मुख सोई उदर सोई कर पद दोय।
भयो आजु कछु और ही परसत जेहि नहिं कोय।।
हाड़ माँस लाला रकत बसा तुचा सब सोय।
छिन्न भिन्न दुरगन्धमय मरे मनुस के होय।।
कादर जेहि लखि कै डरत पंडित पावत लाज।
अहो! व्यर्थ संसार को विषय वासना साज।।
(अहा! शरीर भी कैसी निस्सार वस्तु है।)
हा! मरना भी क्या वस्तु है।
सोई मुख जेहि चन्द बखान्यौ।
सोई अंग जेहि प्रिय करि जान्यौ।।
सोई भुज जे पिय गर डारे।
सोई भुज जिन रन बिक्रम पारे।।
सोई पद जिहि सेवक बन्दत।
सोई छबि जेहि देखि आनन्दत।।
सोई रसना जहं अमृत बानी।
सोई सुनि कै हिय नारि जुड़ानी।।
सोई हृदय जहं भाव अनेका।
सोई सिर जहं निज बच टेका।।
सोई छबिमय अंग सुबाए।
आजु जीव बिनु धरनि सुहाए।।
कहां गई वह सुंदर सोभा।
जीवत जेहि लखि सब मन लोभा।।
प्रानहुं ते बढ़िजा कहं चाहत।
ता कहं आजु सबै मिलि दाहत।।
फूल बोझ हू जिन न सहारे।
तिन पै बोझ काठ बहु डारे।।

सिर पीड़ा जिन की नहिं हेरी।
करत कपाल क्रिया तिनकेरी।।
छिनहूँ जे न भए कहुं न्यारे।
ते हू बन्धुन छोड़ि सिधारे।।
जो दृग कोर महीप निहारत।
आजु काक तेहि भोज बिचारत।।
भुज बल जे नहिं भुवन समाए।
ते लखियत मुख कफन छिपाए।।
नरपति प्रजा भेद बिनु देखे।
गनें काल सब एकहि लेखे।।
सुभग कुरूप अमृत बिख साने।
आजु सबै इक भाव बिकाने।।
पुरू दधीच कोऊ अब नाहीं।
रहे नावं हीं ग्रन्थन मांही।।

अहा! देखो वही सिर जिस पर मंत्र से अभिषेक होता था, कभी नवरत्न का मुकुट रखा जाता था, जिसमें इतना अभिमान था कि इन्द्र को भी तुच्छ गिनता था और जिसमें बड़े-बड़े राज जीतने के मनोरथ भरे थे, आज पिशाचों का गेंद बना है और लोग उसे पैर से छूने में भी घिन करते हैं। (आगे देखकर) अरे यह शमशान देवी हैं। अहा कात्यायनी को भी कैसा वीभत्स उपचार प्यारा है। यह देखो डोम लोगों ने सूखे गल-सड़े फूलों की माला गंगा में से पकड़-पकड़ कर देवी को पहिना दी है और कफन की ध्वजा लगा दी है। मरे बैल और भैसों के गले के घंटे पीपल की डार में लटक रहे हैं जिन में लोलक की जगह नली की हड्डी लगी है। घंट के पानी से चारों ओर से देवी का अभिषेक होता है और पेड़ के खंभे में लोहू के थापे लगे हैं। नीचे जो उतारों की बलि दी गई है उसके खाने को कुत्ते और सियार लड़-लड़कर कोलाहल मचा रहे हैं। (हाथ जोड़कर) 'भगवति! चंडि! प्रेते! प्रेत विमाने! लसत्प्रेते। प्रेतास्थि रौद्ररूपे! प्रेताशनि। भैरवि! नमस्ते'।1

(नेपथ्य में) राजन् हम केवल चंडालों के प्रणाम के योग्य हैं। तुम्हारे प्रणाम से हमें लज्जा आती है। मांगो, क्या वर मांगते हो।

ह.–(सुनकर आश्चर्य से) भगवति! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमारे स्वामी का कल्याण कीजिए। (नेपथ्य में) साधु महाराज हरिश्चन्द्र साधु!

ह.–(ऊपर देखकर) अहा! स्थिरता किसी को भी नहीं है। जो सूर्य उदय होते ही पद्मिनी बल्लभ और लौकिक वैदिक दोनों कर्म का प्रवर्त्तक था, जो दो पहर तक अपना प्रचंड प्रताप क्षण–क्षण बढ़ाता गया, जो गगनांगन का दीपक और कालसर्प का शिखामणि था वह इस समय परकटे गिद्ध की भांति अपना सब तेज गंवाकर देखो समुद्र में गिरा चाहता है।

अथवा

सांझ सोई पट लाल कसे कटि सूरज खप्पर हाथ लह्यो है। पच्छिन के बहु सब्दन के मिस जीअ उचाटन मंत्र कह्यो है। मद्य भरी नर खोपरी सो ससि को नव बिम्बहू धाई गह्यो है। दै बलि जीव पसू यह मत्त ह्वै काल कपालिक नाचि रह्यो है।

सूरज धूम बिना की चिता सोई अंत में लै जल माहिं बहाई। बोलैं घने तरु बैठि बिहंगम रोअत सो मनु लोग लोगाई। धूम अंधार, कपाल निसाकर, हाड़ नछत्र, लहू सी1 ललाई। आनंद हेतु निसाचर के यह काल समान सी सांझ बनाई।

अहा! यह चारों ओर से पक्षी लोग कैसा शब्द करते हुए अपने–अपने घोसलों की ओर चले जाते हैं। वर्षा से नदी का भयंकर प्रवाह, सांझ होने से शमशान के पीपल पर कौओं का एक संग अमंगल शब्द से कांव–कांव करना और रात के आगमन से एक सन्नाटे का समय चित्त में कैसी उदासी और भय उत्पन्न करता है। अंधकार बढ़ता ही जाता है। वर्षा के कारण इन शमशानवासी मंडूकों का टर्र–टर्र करना भी कैसा डरावना मालूम होता है।

रुरुआ चहुंदिसि ररत डरत सुनि कै नर नारी।
फटफटाइ दोउ पंख उलुकहु रटत पुकारी।
अन्धकार बस गिरत काक अरु चील करत रव।
गिद्ध गरुड़ हड़गिल्ल भजत लखिविकट भयद दव।
रोअत सियार गरजत नदी स्वान भू कि डरपावई।
संग दादुर झींगुर रुदन धुनि मिलि खर तुमुल मचावई।

इस समय ये चिता भी कैसी भयंकर मालूम पड़ती हैं। किसी का सिर चिता के नीचे लटक रहा है, कहीं आंच से हाथ पैर जलकर गिर पड़े हैं, कहीं शरीर आधा जला है, कहीं बिल्कुल कच्चा है, किसी को वैसे ही पानी में बहा दिया है, किसी को किनारे छोड़ दिया है, किसी का मुँह जल जाने से दांत निकला हुआ भयंकर हो रहा है और कोई दहकती आग में ऐसा जल गया है कि

कहीं पता भी नहीं है। बाहरे शरीर! तेरी क्या क्या गति होती है!!! सचमुच मरने पर इस शरीर को चटपट जला ही देना योग्य है क्योंकि ऐसे रूप और गुण जिस शरीर में थे उसको कीड़ों या मछलियों से नुचवाना और सड़ा कर दुर्गंधमय करना बहुत ही बुरा है। न कुछ शेष रहेगा न दुर्गति होगी। हाय! चलो आगे चलें। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर घूमता है) (कौतुक से देखकर) पिशाचों का क्रीड़ा कोतूहल भी देखने के योग्य है। अहा! यह कैसे काले-काले झाड़ई से सिर के बाल खड़े किये लम्बे-लम्बे हाथ पैर विकराल दांत लम्बी जीभ निकाले इधर-उधर दौड़ते और परस्पर किलकारी मारते हैं मानों भयानक रस की सेना मूर्तिमान होकर यहाँ स्वच्छंद विहार कर रही है। हाय-हाय! इन का खेल और सहज व्योहार भी कैसा भयंकर है। कोई कटाकट हड्डी चबा रहा है, कोई खोपड़ियों में लोहू भर-भर के पीता है, कोई सिर का गेंद बनाकर खेलता है, कोई अंतड़ी निकालकर गले में डाले है और चंदन की भांति चर्बी और लोहू शरीर में पोत रहा है, एक-दूसरे से माँस छीनकर ले भागता है, एक जलता मांस मारे तृष्णा के मुँह में रख लेता है पर जब गर्म मालूम पड़ता है तो थू-थू करके थूक देता है और दूसरा उसी को फिर झट से खा जाता है। हा! देखो यह चुड़ैल एक स्त्री की नाक नथ समेत नोच लाई है जिसे

सत्य हरिश्चंद्र के परवती संस्करणों में बढ़ाया गया अंश,

(पिशाच और डाकिणी गण परस्पर आमोद करते और गाते बजाते आते हैं।)

पि. और डा.–हैं भूत-प्रेत हम, डाइन हैं छमाछम,
हम सेवैं मसान, शिव को भजैं, बोलैं बम बम बम।
पि.–हम कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ हड्डी को तोड़ेंगे।
हम भड़ भड़ धड़ धड़ पड़ पड़ सिर सबका फोड़ेंगे।
डा.–हम घुट घुट घुट घुट घुट घुट लोहू पिलावेंगी।
हम चट चट चट चट चट चट ताली बाजवेंगी।।
सब–हम नाचें मिलकर थेई थेई थेई थेई कूदें धम् धम् धम्
हैं भूत प्रेत हम, डाइन हैं छमा छम।।
पि.–हम काट काट कर सिर को गेंदा उछालेंगे।
हम खींच खींच कर चर्बी पंशाखा बालेंगे।।
डा.–हम माँग में लाल लाल लोहू का सिंदूर लगावेंगी।
हम नस के तागे चमड़े का लहँगा बनावेंगी।।
सब–हम धज से सज के बज के चलेंगे चमकेंगे चम चम चम।

पि.–लोहू का मुँह से फर्र फर्र फुहारा छोड़ेंगे।
माला गले पहिरने को अँतड़ी को जोडेगें।।
डा.–हम लाद के औंधे मुरदे चौकी बनावैंगी।
कफन बिछा के लड़कों को उस पर सुलावेंगी।।
सब–हम सुख से गावेंगे ढोल बजावेंगे ढम ढम ढम ढम ढम।
(वैसे ही कूदते हुए एक ओर चले जाते हैं।)

देखने को चारों ओर से सब भूतने एकत्र हो रहे हैं और सबों को इसका बड़ा कौतुक हो गया है। हंसी में परस्पर लोहू का कुल्ला करते हैं और जलती लकड़ी और मुर्दों के अंगों में लड़ते हैं और उनको ले ले कर नाचते हैं। यदि तनिक भी क्रोध में आते हैं तो शमशान के कुत्तों को पकड़-पकड़ कर खा जाते हैं। अहा! भगवान भूतनाथ ने बड़े कठिन स्थान पर योग साधना की है। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिरता है) (ऊपर देखकर) आधी रात हो गई, वर्षा के कारण अंधेरी बहुत ही छा रही है, हाथ से नाक नहीं सूझता। चांडाल कुल की भांत शमशान पर तम का भी आज राज हो रहा है। (स्मरण करके) हा। इस दु:ख की दशा में भी हमसे प्रिया अलग पड़ी है। कैसी भी हीन अवस्था हो पर अपना प्यारा जो पास रहे तो कुछ कष्ट नहीं मालूम पड़ता। सच है-"टूट टाट घर टपकत खटियौ टूट। पिय कै बांह उसिसवां सुख कै लुट"। बिधना ने इस दु:ख पर भी वियोग दिया हा! यह वर्षा और यह दु:ख! हरिश्चन्द्र का तो ऐसा कठिन कलेजा है कि सब सहेगा पर जिस ने सपने में भी दुख नहीं देखा वह महारानी किस दशा में होगी। हा देवि! धीरज धरो धीरज धरो। तुम ने ऐसे ही भाग्यहीन से स्नेह किया है जिसके साथ सदा दुख ही दुख है। (ऊपर देखकर) अरे पानी बरसने लगा! (घोघी भली-भांति ओढ़ कर) हमको तो यह वर्षा और शमशान दोनों एक ही से दिखाई पड़ते हैं। देखो।

चपला की चमक चहूँघा सों लगाई चिता चिनगी चिलक पटबीजना चलायो है। हेती बग माल स्याम बादर सु भूमिकारी बीर बधूबूंद भव लपटायो है।। हरीचन्द नीर धार आंसू सी परत जहाँ दादुर को सोर रोर दुखिन मचायो है। दाहन बियोगी दुखियान को मरे हूँ यह देखो पापी पाव मसान बनि आयो है।

(कुछ देर तक चुप रह कर) कौन है? (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिर कर)

इन्द्रकालहू सरिस जो आयसु लांघै कोय।
यह प्रचंड भुज दंड मम प्रति भट ताको होय।।

अरे कोई नहीं बोलता। (कुछ आगे बढ़कर) कौन है?

(नेपथ्य में) हम हैं।

ह.–अरे हमारी बात का उत्तर कौन देता है? चले जहाँ से आवाज आई है वहाँ चल कर देखें। (आगे बढ़ कर नेपथ्य की ओर देख कर) अरे यह कौन है?

चिता भस्म सब अंग लगाए।
अस्थि अभूषन बिबिध बनाए।।
हाथ मसान कपाल जगावत।
को यह चल्यो रुद्र सम आवत।।

(कापालिक के वेष में धर्म आता है।)

धर्म.–अरे हम हैं।

वृत्ति अयाचित आत्म रति करि जग के सुख त्याग।
फिरहिं मसान-मसान हम धारि अनन्द बिराग।।

आगे बढ़कर महाराज हरिश्चन्द्र को देखकर आप ही आप,

हम प्रतच्छ हरि रूप जगत हमरे बल चालत।
जल थल नभ थिर मम प्रभाव मरजाद न टालत।।
हम हीं नर के मीत सदा सांचे हितकारी।
हम ही इक संग जात तजत जब पितु सुत नारी।।
सो हम नित थित इक सत्य में जाके बल सब जग जियो।
सोइ सत्य परिच्छन नृपति को आजु भेष हम यह कियो।।

कुछ सोचकर, राजर्षि हरिश्चन्द्र की दु:ख परंपरा अत्यंत शोचनीय और इनके चरित्र अत्यन्त आश्चर्य के हैं! अथवा महात्माओं का यह स्वभाव ही होता है।

सहत बिविध दुख मरि मिटत भोगत लाखन सोग।
पै निज सतय न छाड़हीं जे जग सांचे लोग।।
बरु सूरज पच्छिम उगैं विन्ध्य तरै जल मांहिं।
सत्य बीर जन पै कबहुं निज बच टारत नाहिं।।

अथवा उनके मन इतने बड़े हैं कि दुख को दुख, सुख को दुख गिनते ही नहीं। चलें उनके पास चलें। (आगे बढ़कर और देखकर) अरे यही महात्मा हरिश्चन्द्र हैं? (प्रगट) महाराज! कल्याण हो।

ह.–(प्रणाम करके) आइये योगिराज।

ध.–महाराज! हम अर्थी हैं।

ह.–(लज्जा और विकलता नाट्य करता है)

ध.–महाराज आप लज्जा मत कीजिए। हम लोग योग बल से सब कुछ जानते हैं। आप इस दशा पर भी हमारा अर्थ पूर्ण करने को बहुत हैं। चन्द्रमा राहु से ग्रसा रहता है तब भी दान दिलवा कर भिक्षुओं का कल्याण करता है।

ह.–आज्ञा। हमारे योग्य जो कुछ हो आज्ञा कीजिए।

ध.–अंजन गुटिका पादुका धातुभेद बैताल। वज्र रसायन जोगिनी मोहि सिद्ध इहि काल1।

ह.–तो मुझे आज्ञा हो वह करूं।

ध.–आज्ञा यही है कि यह सब मुझे सिद्ध हो गए हैं पर विन इस में बाधक होते हैं सो आप विनों का निवारण कर दीजिए।

ह.–आप जानते ही हैं कि मैं पराया दास हूँ, इससे जिनमें मेरा धर्म न जाये वह मैं करने को तैयार हूँ।

ध.–(आप ही आप) राजन्, जिस दिन तुम्हारा धर्म जाएगा उस दिन पृथ्वी किसके बल से ठहरेगी (प्रत्यक्ष) महाराज इसमें धर्म न जायेगा क्योंकि स्वामी की आज्ञा का तो आप उल्लंघन करते ही नहीं। सिद्धि का आकर इसी शमशान के निकट ही है और मैं अब पुरश्चरण करने जाता हूँ, आप बिनों का निषेध कर दीजिए।

(जाता है)

ह.–(ललकार कर) हटो रे हटो विनो चारों ओर से तुम्हारा प्रचार हम ने रोक दिया।

(नेपथ्य में) महाराजाधिराज जो आज्ञा।

आप से सत्य वीर की आज्ञा कौन लांघ सकता है।

खुल्यौ द्वारा कल्यान को सिद्ध जोग तप आज।

निधि सिधि विद्या सब करहिं अपुने मन को काज।।

ह.–(हर्ष से) बड़े आनन्द की बात है कि विनों ने हमारा कहना मान लिया। (विमान पर बैठी हुई तीनों महाविद्या आती है)

म. वि.–महाराज हरिश्चन्द्र! बधाई है। हमीं लोगों को सिद्ध करने को विश्वामित्र ने बड़ा परिश्रम किया था तब देवताओं ने माया से आपको स्वप्न में हमारा रोना सुनाकर हमारा प्राण बचाया।

ह.–(आप ही आप) अरे यही सृष्टि की उत्पन्न, पालन और नाश करने वाली महाविद्या हैं जिन्हें विश्वामित्र भी न सिद्ध कर सके। (प्रगट हाथ जोड़कर) त्रिलोकविजयिनी महाविद्याओं को नमस्कार है।

म. वि.–महाराज हम लोग आप के बस में हैं। हमारा ग्रहण कीजिए।

ह.–देवियो! यदि हम पर प्रसन्न हो तो विश्वामित्र मुनि का वशवर्त्तिनी हो क्योंकि उन्होंने आप लोगों के वास्ते बड़ा परिश्रम किया है।

म. वि.–(परस्पर आश्चर्य से देखकर) धन्य महाराज धन्य! जो आज्ञा। (जाती हैं)

धर्म एक बैताल के सिर पर पिटारा रखवाए हुए आता है।

ध.–महाराज का कल्याण हो। आप की कृपा से महानिधान सिद्ध हुआ। आपको बधाई है अब लीजिए इस रसेन्द्र को।

याही के परभाव सों अमरदेव सम होइ।
जोगी जन बिहरहिं सदा मेरु शिखर भय खोइ।।

ह.–(प्रणाम करके) महाराज दास धर्म के यह विरुद्ध है। इस समय स्वामी से कहे बिना मेरा कुछ भी लेना स्वामी को धोखा देना है।

ध.–(आश्चर्य से आप ही आप) वाह रे महानुभावता! (प्रगट) तो इसके स्वर्ण बना कर आप अपना दास्य छुड़ा लें।

ह.–यह ठीक है पर मैंने तो बिनती किया न कि जब मैं दूसरे का दास हो चुका तो इस अवस्था में मुझे जो कुछ मिले सब स्वामी का है। क्योंकि मैं तो देह के साथ ही अपना सत्व मात्र बेच चुका इससे आप मेरे बदले कृपा करके मेरे स्वामी ही को यह रसेन्द्र दीजिए।

ध.–(आश्चर्य से आप ही आप) धन्य हरिश्चन्द्र! धन्य तुम्हारा धैर्य! धन्य तुम्हारा विवेक! और धन्य तुम्हारी महानुभावता! या

चलै मेरु बरु प्रलय जल पवन झकोरन पाय।
पै बीरन कें मन कबहूँ चलहिं नाहिं ललचाय।।

तो हमें भी इसमें कौन हठ है। (प्रत्यक्ष) बैताल! जाओ, जो महाराज की आज्ञा है, वह करो।

बै.–जो रावल जी की आज्ञा। (जाता है)

ध.–महाराज ब्राह्म मुहूर्त निकट आया अब हम को भी आज्ञा हो।

ह.–जोगिराज! हम को भूल न जाइएगा, कभी-कभी स्मरण कीजिएगा।

ध.–महाराज! बड़े बड़े देवता आप का स्मरण करते हैं और करेंगे मैं क्या हूँ।

(जाता है)

ह.–क्या रात बीत गई! आज तो कोई भी मुर्दा नया नहीं आया। रात के साथ ही शमशान भी शांत हो चला। भगवान नित्य ही ऐसा करें।

(नेपथ्य में घंटानूपुरादि का शब्द सुनकर) अरे यह बड़ा कोलाहल कैसा हुआ?

(विमान पर अष्ट महासिद्धि नव निधि और बारहो प्रयोग आदि देवता1 आते हैं)।

ह.–(आश्चर्य से) अरे यह कौन देवता बड़े प्रसन्न होकर शमशान पर एकत्र हो रहे हैं।

दे.–महाराज हरिश्चन्द्र की जय हो। आप के अनुग्रह से हम लोग विनों से छूटकर स्वतंत्र हो गए। अब हम आपके वश में हैं, जो आज्ञा हो करें। हम लोग अष्ट महा सिद्धि नव निधि और बारह प्रयोग सब आप के हाथ में है।

ह.–(प्रणाम करके) यदि हम पर आप लोग प्रसन्न हो तो महासिद्धि योगियों के, निधि सज्जन के और प्रयोग साधकों के पास जाओ।

दे.–(आश्चर्य से) धन्य राजर्षि हरिश्चन्द्र! तुम्हारे बिना और ऐसा कौन होगा, जो घर आई लक्ष्मी का त्याग करे। हमीं लोगों की सिद्धि को बड़े-बड़े योगी मुनि पच मरते हैं पर तुमने तृण की भांति हमारा त्याग करके जगत का कल्याण किया।

ह.–आप लोग मेरे सिर आँखों पर हैं पर मैं क्या करूं, क्योंकि मैं पराधीन हूँ। एक और भी निवेदन है। वह यह कि छह अच्छे प्रयोग की तो हमारे समय में सद्यः सिद्धि होय पर बुरे प्रयोगों की सिद्धि विलंब से हो।

दे.–महाराज! जो आज्ञा। हम लोग जाते हैं। आज आप के सत्य ने शिव जी के कीलन को भी शिथिल कर दिया। महाराज का कल्याण हो।

(जाते हैं)

(नेपथ्य में इस भांति मानो राजा हरिश्चन्द्र नहीं सुनता)

(एक स्वर से) तो अब अप्सरा को भेजें?

(दूसरे स्वर से) छिः मूर्ख! जिस को अष्ट सिद्धि नव निधियों ने नहीं डिगाया उसको अप्सरा क्या डिगावेंगी?

(एक स्वर से) तो अब अन्तिम उपाय किया जाये।

(दूसरे स्वर से) हाँ तक्षक को आज्ञा दे। अब और कोई उपाय नहीं है।

ह.–अहा अरुण का उदय हुआ चाहता है। पूर्व दिशा ने अपना मुँह लाल किया। (साँस ले कर) हवा चकई को भयो चित चीतो चियोति चहूँ दिसि चाय सों नाची। ह्वै गई छीन कलाधर की कला जामिनी जोति मनो जम जांची। बोलत बैरी बिहंगम देव संजोगिन की भई संपत्ति काची। लोहू पियो जो बियोगिन को सो कियो मुख लाल पिशाचिन प्राची।" हा! प्रिये इन बरसातों की रात को तुम रो-रो के बिताती होगी! हा! वत्स रोहिताश्व, भला हम लोगों ने तो अपना शरीर बेचा तब दास हुए तुम बिना बिके ही क्यों दास बन गए!

जेहि सहसन परिचायिका राखत हाथहि हाथ। सो तुम लोटत धूर मैं दास बालकन साथ! जाकी आयसु जग नृपति सुनतहि धारत सीस! तेहि द्विज बटु अज्ञा करत अहह कठिन अति इस। बिनु तन बेचे बिनु जग ज्ञान विवेक। दैव सर्प दंशित भए भोगत कष्ट अनेक।

(घबरा कर) नारायण! नारायण! मेरे मुख से क्या निकल गया। देवता उस की रक्षा करें। (बांई आँख का फड़कना दिखाकर) इसी समय में यह महा अपशकुन क्यों हुआ? (दाहिनी भुजा का फड़कना दिखाकर) अरे और साथ ही यह मंगल शकुन भी! न जाने क्या होनहार है, वा अब क्या होनहार है, जो होना था सो हो चुका। अब इससे बढ़कर और कौन दशा होगी? अब केवल मरण मात्र बाकी है। इच्छा तो यही है कि सत्य छूटने और दीन होने के पहिले ही शरीर छूटे क्योंकि इस दुष्ट चित्त का क्या ठिकाना है पर वश क्या है।

(नेपथ्य में)

पुत्र हरिश्चन्द्र सावधान। यही अन्तिम परीक्षा है। तुम्हारे पुरखा इक्ष्वाकु से लेकर त्रिशंकु पर्यन्त आकाश में नेत्र भरे खड़े एक टक तुम्हारा मुख देख रहे हैं। आज तक इस वंश में ऐसा कठिन दु:ख किसी को नहीं हुआ था। ऐसा न हो कि इन का सिर नीचा हो। अपने धैर्य का स्मरण करो।

ह.–(घबरा कर ऊपर देखकर) अरे! यह कौन है? कुलगुरु भगवान सूर्य अपना तेज समेटे मुझे अनुशासन कर रहे हैं। (ऊपर पित: मैं सावधान हूँ सब दुखों को फूल की माला की भांति ग्रहण करूंगा।) (नेपथ्य में रोने की आवाज सुन पड़ती है)

ह.–अरे अब सवेरा होने के समय मुर्दा आया! अथवा चांडाल कुल का सदा कल्याण हो हमें इस से क्या। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ फिरता है)

(नेपथ्य में)

हाय! कैसी भई! हाय बेटा हमें रोती छोड़ के कहाँ चले गए! हाय! हाय रे!

ह.–अहह! किसी दीन स्त्री का शब्द है और शोक भी इस पुत्र का है। हाय-हाय! हम को भी भाग्य ने क्या ही निर्दय और वीभत्स कर्म सौंपा है! इससे भी वस्त्र मांगना पड़ेगा।

(रोती हुई शैव्या रोहिताश्व को मुर्दा लिये आती है)

शै.–(रोती हुई) हाय! बेटा जब बाप ने छोड़ दिया तब तुम भी छोड़ चले! हाय हमारी बिपत और बुढ़ौती की ओर भी तुम ने न देखा! हाय! हाय रे! अब हमारी कौन गति होगी! (रोती है)

ह.–हाय-हाय! इसके पति ने भी इसको छोड़ दिया है। हा! इस तपस्विनी को निष्करुण विधि ने बड़ा ही दुख दिया है।

शै.–(रोती हुई) हाय बेटा! अरे आज मुझे किसने लूट लिया! हाय मेरी बोलती चिड़िया कहाँ उड़ गई! हाय अब मैं किसका मुँह देख के जीऊंगी! हाय मेरी अंधी की लकड़ी कौन छीन ले गया! हाय मेरा ऐसा सुंदर खिलौना किसने तोड़ डाला! अरे बेटा तै तो मरे पर भी सुंदर लगता है! हाय रे! अरे बोलता क्यों नहीं! बेटा जल्दी बोल, देख माँ कब की पुकार रही है! बच्चा तू तो एक दफे पुकारने में दौड़कर गले से लपट जाता था, आज क्यों नहीं बोलता!

(शव को बारंबार गले लगाती, देखती और चूमती है)

ह.–हाय! हाय! इस दुखिया के पास तो खड़ा नहीं हुआ जाता।

शै.–पागल की भांति यह क्या हो रहा है। बेटा कहाँ गए हौ आओ जल्दी! अरे अकेले इस मसान में मुझे डर लगती है। यहाँ मुझ को कौन ले आया है रे! बेटा जल्दी आओ। क्या कहते हौ, मैं गुरु को फूल लेने गया था वहाँ काले साँप ने मुझे काट लिया! हाय-हाय रे! अरे कहाँ काट लिया? अरे कोई दौड़ के किसी गुनी को बुलाओ जो जिलावै बच्चे को। अरे वह साँप कहाँ गया! हम को क्यों नहीं काटता? काट रे काट, क्या उस सुकुंआर बच्चे ही पर बल दिखाना था? हमें काट। हाय हम को नहीं काटता। अरे हिंयां तो कोई साँप वाँप नहीं है, मेरे लाल झूठ बोलना कब से सीखे? हाय-हाय मैं इतना पुकारती हूँ और तुम खेलना नहीं छोड़ते? बेटा गुरु जी पुकार रहे हैं उनके होम की बेला निकली जाती है। देखो बड़ी देर से वह तुम्हारे आसरे बैठे हैं। दो जल्दी इनको दूब और बेलपत्र। हाय हमने इतना पुकारा तुम कुछ नहीं बोलते! जोर से, बेटा सांझ भई, सब

विद्यार्थी लोग घर फिर आए, तुम अब तक क्यों नहीं आए? आगे शव देखकर, हाय-हाय रे! अरे मेरे लाल को साँप ने सचमुच डंस लिया! हाय लाल! हाय मेरे आँखों के उजियाले को कौन ले गया! हाय! मेरा बोलता हुआ सुग्गा कहाँ उड़ गया! बेटा अभी तो बोल रहे थे अभी क्या हो गया! हाय मेरा बसा घर आज किसने उजाड़ दिया! हाय मेरी कोख में किस ने आग लगा दी! हाय मेरा कलेजा किसने निकाल लिया! चिल्ला-चिल्ला कर रोती है, हाय लाल कहां गए! अरे अब मैं किसका मुँह देख के जीऊँगी रे! हाय अब मां कहके मुझको कौन पुकारेगा! अरे आज किस बैरी की छाती ठंडी भई रे! अरे तेरे सुकुंआर अंगों पर भी काल को तनिक दया न आई! अरे बेटा आँख खोलो! हाय मैं सब विपत तुम्हारा ही मुँह देखकर सहती थी तो अब कैसे जीती रहूँगी! अरे लाल एक बार तो बोलो! (रोती है)

ह.–न जाने क्यों इसके रोने पर मेरा कलेजा फटा जाता है।

शै.–(रोती हुई) हा नाथ! अरे अपने गोद के खेलाए बच्चे की यह दशा क्यों नहीं देखते! हाय! अरे तुम ने तो इसको हमें सौंपा था कि इसे अच्छी तरह पालना सो हमने इसकी यह दशा कर दी! हाय! अरे ऐसे समय में भी आकर नहीं सहाय होते! भला एक बार लड़के का मुँह तो देख जाओ! अरे मैं किस के भरोसे अब जीऊंगी?

ह.–हाय-हाय! इसकी बातों से तो प्राण मुँह को चले आते हैं और मालूम होता है कि संसार उल्टा जाता है। यहां से हट चलें (कुछ दूर हटकर उसकी ओर देखता खड़ा हो जाता है)।

शै.–(रोती हुई) हाय! यह बिपत का समुद्र कहां से उमड़ पड़ा! अरे छलिया मुझे छलकर कहां भाग गया! देख कर, अरे आयुस की रेखा तो इतनी लम्बी है फिर अभी से यह बज्र कहां से टूट पड़ा! अरे ऐसा सुंदर मुह, बड़ी-बड़ी आंख, लम्बी-लम्बी भुजा, चौड़ी छाती, गुलाब-सा रंग! हाय मरने के तुझ में कौन से लच्छन थे जो भगवान ने तुझे मार डाला! हाय लाल! अरे बड़े-बड़े जोतसी गुनी लोग तो कहते थे कि तुम्हारा बेटा बड़ा प्रतापी चक्रवर्ती राजा होगा, बहुत दिन जीयेगा, सो सब झूठ निकला! हाय! पोथी, पत्र, पूजा, पाठ, दान, जप होम, कुछ भी काम न आया! हाय तुम्हारे बाप का कठिन पुत्र भी तुम्हारा सहाय न भया और तुम चल बसे! हाय!

ह.–अरे इन बातों से तो मुझे बड़ी शंका होती है (शव को भली-भांति देखकर) अरे इस लड़के में तो सब लक्षण चक्रवर्ती के से दिखाई पड़ते हैं। हाय!

न जाने किस बड़े कुल का दीपक आज इस ने बुझाया है और न जाने किस नगर को आज इसने अनाथ किया है। हाय! रोहिताश्व भी इतना बड़ा भया होगा (बड़े सोच से) हाय-हाय! मेरे मुँह से क्या अमंगल निकल गया। नारायण (सोचता है)

शै.—भगवान विश्वामित्र! आज तुम्हारे सब मनोरथ पूरे भए। हाय!

ह.—(घबराकर) हाय-हाय यह क्या? (भली भांत देखकर रोता हुआ) हाय अब तक मैं संदेह ही में पड़ा हूँ? अरे मेरी आँखें कहां गई थीं जिन ने अब तक पुत्र रोहिताश्व को न पहिचाना और कान कहां गये थे जिन ने अब तक महारानी की बोली न सुनी! हा पुत्र! हा लाल! हा सूर्यवंश के अंकुर! हा हरिश्चन्द्र की विपत्ति के एक मात्र अवलम्ब! हाय! तुम ऐसे कठिन समय में दुखिया माँ को छोड़कर कहाँ गए। अरे तुम्हारे कोमल अंगों को क्या हो गया! तुम ने क्या खेला, क्या खाया, क्या सुख भोगा, कि अभी से चल बसे। पुत्र स्वर्ग ऐसा ही प्यारा था तो मुझ से कहते, मैं बाहुबल से तुम को इसी शरीर से स्वर्ग पहुंचा देता। अथवा अब इस अभिमान से क्या? भगवान इसी अभिमान का फल यह सब दे रहा है। हाय पुत्र! (रोता है)

आह! मुझसे बढ़कर और कौन मन्दभाग्य होगा! राज्य गया, धन, जन, कुटुम्ब सब छूटा, उस पर भी यह दारुण पुत्रशोक उपस्थित हुआ। भला अब मैं रानी को क्या मुँह दिखाऊं। निःसंदेह मुझसे अधिक अभागा और कौन होगा। न जाने हमारे जन्म के पाप उदय हुए हैं, जो कुछ हमने आज तक किया वह यदि पुण्य होता तो हमें यह दुख न देखना पड़ता। हमारा धर्म का अभिमान सब झूठा था, क्योंकि कलियुग नहीं है कि अच्छा करते बुरा फल मिले, निःसंदेह मैं महा अभागा और बड़ा पापी हूँ। (रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है और नेपथ्य में शब्द होता है) क्या प्रलयकाल आ गया? नहीं। यह बड़ा भारी असगुन हुआ है। इसका फल कुछ अच्छा नहीं, वा अब बुरा होना ही क्या बाकी रह गया है, जो होगा। हा। न जाने किस अपराध से दैव इतना रूठा है (रोता है) हा सूर्यकुल आलवालप्रवाल। हा हरिश्चन्द्र हृदयानन्दन! हा शैव्याबलम्ब! हा वत्स रोहिताश्व! हा मातृ-पितृ विपत्ति सहचर! तुम हम लोगों को इस दशा में छोड़कर कहां गए! आज हम सचमुच चांडाल हुए। लोग कहेंगे कि इस ने न जाने कौन दुष्कर्म किया था कि पुत्रशोक देखा। हाय हम संसार को क्या मुँह दिखावेंगे। (रोता है) वा संसार में इस बात के प्रगट होने के पहले ही हम भी प्राण त्याग करें। हा निर्लज्ज प्राण तुम अब भी क्यों नहीं निकलते। हा बज्र हृदय इतने पर भी तू क्यों नहीं फटता। नेत्रों, अब और क्या देखना बाकी है कि तुम अब तक खुले हो। या इस व्यर्थ प्रलाप का फल ही क्या है समय बीता जाता है,

इसके पूर्व कि किसी से साम्हना हो प्राण त्याग करना ही उत्तम बात है (पेड़ के पास जाकर फांसी देने के योग्य डाल खोजकर उसमें दुपट्टा बांधता है) धर्म! मैंने अपने जान सब अच्छा ही किया परंतु न जाने किस कारण मेरा सब आचरण तुम्हारे विरुद्ध पड़ा सो मुझे क्षमा करना। (दुपट्टे की फांसी गले में लगाना चाहता है कि एक साथ चौंक कर) गोविन्द गोविन्द! यह मैंने क्या अनर्थ अधर्म विचारा। भला मुझ दास को अपने शरीर पर क्या अधिकार था कि मैंने प्राण त्याग करना चाहा। भगवान सूर्य इसी क्षण के हेतु अनुशासन करते थे। नारायण नारायण! इस इच्छाकृत मानसिक पाप से कैसे उद्धार होगा! हे सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर क्षमा करना, दुख से मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, अब तो मैं चांडालकुल का दास हूँ, न अब शैव्या मेरी स्त्री है और न रोहिताश्व मेरा पुत्र। चलूं अपने स्वामी के काम पर सावधान हो जाऊं, वा देखूं अब दुक्खिनी शैव्या क्या करती है (शैव्या के पीछे जाकर खड़ा होता है)।

शै.–(पहली तरह बहुत रोकर) हाय! अब मैं क्या करूं। अब मैं किसका मुँह देखकर संसार में जीऊंगी। हाय मैं आज से निपूती भई! पुत्रवती स्त्री अपने बालकों पर अब मेरी छाया न पड़ने देंगी। हा नित्य सवेरे उठकर अब मैं किसकी चिन्ता करूंगी। खाने के समय मेरी गोद में बैठकर और मुझ से मांग-मांग पर अब कौन खाएगा! मैं परोसी थाली सूनी देखकर कैसे प्राण रखूंगी। (रोती है) हाय खेलता-खेलता आकर मेरे गले से कौन लपट जायेगा और माँ-माँ कहकर तनक तनक बातों पर कौन हठ करेगा। हाय मैं अब किसको अपने आंचल से मुँह की धूल पोंछकर गले लगाऊंगी और किसके अभिमान से बिपत में भी फूली-फूली फिरूंगी। (रोती है) या जब रोहिताश्व नहीं तो मैं ही जी के क्या करूंगी। (छाती पीटकर) हाय प्राण, तुम अभी क्यों नहीं निकले। (हाय मैं ऐसी स्वार्थी हूँ कि आत्महत्या के नरक के भय से अब भी अपने को नहीं मार डालती। नहीं-नहीं अब मैं न जीऊंगी। या तो इस पेड़ में फांसी लगाकर मर जाऊंगी या गंगा में कूद पड़ूंगी) (उन्मत्त की भांति उठकर दौड़ना चाहती है)।

ह.–(आड़ में से) तनहिं बेंचि दासी कहवाई।
मरत स्वामि आयसु बिन पाई
करु न अधर्म सोचु जिय माहीं।
'पराधीन सपने सुख नाहीं।।'

शै.–(चौकन्नी होकर) अहा! यह किसने इस कठिन समय में धर्म का उपदेश किया। सच है मैं अब इस देह की कौन हूँ जो मर सकूं। हा दैव! तुझसे

यह भी न देखा गया कि मैं मरकर भी सुख पाऊं। (कुछ धीरज धरके) तो चलूं छाती पर वज्र धरके अब लोकरीति करूं। रोती और लकड़ी चुनकर चिता बनाती हुई) हाय! जिन हाथों से ठोंक ठोंक कर रोज सुलाती थी उन्हीं हाथों से आज चिता पर कैसे रखूंगी, जिसके मुँह में छाला पड़ने के भय से कभी मैंने गर्म दूध भी नहीं पिलाया उसे-(बहुत ही रोती है)।

ह.–धन्य देवी, आखिर तो चंद्र सूर्यकुल की स्त्री हो। तुम न धीरज करोगी तो और कौन करेगा।

शै.–(चिता बनाकर पुत्र के पास आकर उठाना चाहती है और रोती है)।

ह.–तो अब चलें उस से आधा कफन मांगे (आगे बढ़कर और बलपूर्वक आंसुओं को रोककर शैव्या से) महाभागे! शमशान पति की आज्ञा है कि आधा कफन दिए बिना कोई मुर्दा फूंकने न पावे सो तुम भी पहले हमें कपड़ा दे लो तब क्रिया करो (कफन मांगने को हाथ फैलाता है, आकाश से पुष्पवृष्टि होती है)।

(नेपथ्य में)

अहो धैर्यमहो सत्यमहो दानमहो बलं। त्वया राजन् हरिश्चन्द्र सर्ब्व लोकोत्तरं कृतं।

(दोनों आश्चर्य से ऊपर देखते हैं)

शै.–हाय। इस कुसमय में आर्यपुत्र की यह कौन स्तुति करता है? वा इस स्तुति ही से क्या है, शास्त्र सब असत्य हैं नहीं तो आर्यपुत्र से धर्मी की यह गति हो! यह केवल देवताओं और ब्राह्मणों का पाषंड है।

ह.–(दोनों कानों पर हाथ रखकर) नारायण नारायण! महाभागे ऐसा मत कहो, शास्त्र, ब्राह्मण और देवता त्रिकाल में सत्य हैं। ऐसा कहोगी तो प्रायश्चित होगा। अपना धर्म बिचारो। लाओ मृतकंबल हमें दो और अपना काम आरंभ करो (हाथ फैलाता है)

शै.–(महाराज हरिश्चन्द्र के हाथ में चक्रवर्ती का चिह्न देखकर और कुछ स्वर कुछ आकृति से अपने पति को पहचान कर) हा आर्यपुत्र, इतने दिन तक कहाँ छिपे थे! देखो अपने गोद के खेलाए दुलारे पुत्र की दशा! तुम्हारा प्यारा रोहिताश्व देखो अब अनाथ की भांति मसान में पड़ा है। (रोती है।)

ह.–प्रिये धीरज धरो। यह रोने का समय नहीं है। देखो सबेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कोई आ जाये और हम लोगों को जान ले और एक लज्जा मात्र बच गई है वह भी जाये। चलो कलेजे पर सिल रखकर अब रोहिताश्व की क्रिया करो और आधा कंबल हमको दो।

शै.–(रोती हुई) नाथ! मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था, अपना आंचल फाड़कर इसे लपेट लाई हूँ, उसमें से भी जो आधा दे दूंगी तो यह खुला ही रह जायेगा। हाय! चक्रवर्ती के पुत्र को आज कफन नहीं मिलता! (बहुत रोती है)

ह.–(बलपूर्वक आंसुओं को रोककर और बहुत धीरज धर कर) प्यारी, रोओ मत। ऐसे ही समय में तो धीरज और धर्म रखना काम है। मैं जिस का दास हूँ उस की आज्ञा है कि बिना आधा कफन लिए क्रिया मत करने दो। इससे मैं यदि अपनी स्त्री और अपना पुत्र समझकर तुम से इसका आधा कफन न लूं तो बड़ा अधर्म हो। जिस हरिश्चन्द्र ने उदय से अस्त तक की पृथ्वी के लिए धर्म न छोड़ा उसका धर्म आधे गज कपड़े के वास्ते मत छुड़ाओ और कफन से जल्दी आधा कपड़ा फाड़ दो। देखो सबेरा हुआ चाहता है ऐसा न हो कि कुलगुरु भगवान सूर्य अपने वंश की यह दुर्दशा देखकर चित् में उदास हों। (हाथ फैलाता है)

शै.–(रोती हुई) नाथ जो आज्ञा। (रोहिताश्व का मृतकंबल फाड़ना चाहती है कि रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है, तोप छूटने का सा बड़ा शब्द और बिजली का सा उजाला होता है। नेपथ्य में बाजे की ओर बस धन्य और जय-जय की ध्वनि होती है, फूल बरसते हैं और भगवान नारायण प्रकट होकर राजा हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लेते हैं।)

भ.–बस महाराज बस (धर्म और सत्य सब की परमावधि हो गई। देखो तुम्हारे पुण्य भय से पृथ्वी बारम्बार कांपती है, अब त्रैलोक्य की रक्षा करो। (नेत्रों से आंसू बहते हैं)

ह.–(साष्टांग दंडवत् करके रोता हुआ गद्‌गद् स्वर से) भगवान! मेरे वास्ते आपने परिश्रम किया! कहाँ यह शमशान भूमि, कहाँ यह मर्त्यलोक, कहाँ मेरा मनुष्य शरीर और कहां पूर्ण परब्रह्म सच्चिदानंदान साक्षात् आप! (प्रेम के आंसुओं से गद्‌गद् कंठ होने से कुछ कहा नहीं जाता)

भ.–(शैव्या से) पुत्री अब सोच मत कर! धन्य तेरा सौभाग्य कि तुझे राजर्षि हरिश्चन्द्र ऐसा पति मिला है (रोहिताश्व की ओर देखकर वत्स ब्रेरेट बंद रोहिताश्व उठो, देखो तुम्हारे माता-पिता देर से तुम्हारे से मिलने को व्याकुल हो रहे हैं।) (रोहिताश्व उठ खड़ा होता है और आश्चर्य से भगवान को प्रणाम कर के माता-पिता का मुँह देखने लगता है, आकाश से फिर पुष्पवृष्टि होती है)

ह. और शै.: (आश्चर्य, आनंद, करुणा और प्रेम से कुछ कह नहीं सकते, आंखों से आंसू बहते हैं और एकटक भगवान के मुखारविंद की ओर देखते हैं)

(श्री महादेव, पार्वती, भैरव, धर्म, सत्य, इंद्र और विश्वामित्र आते हैं)

सब–धन्य महाराज हरिश्चन्द्र धन्य! जो आपने किया, सो किसी ने न किया न करेगा।

(राजा हरिश्चन्द्र शैव्या और रोहिताश्व सबको प्रणाम करते हैं)

बि.–महाराज यह केवल चन्द्र सूर्य तक आप की कीर्तिस्थिर रहने के हेतु मैंने छल किया था सो क्षमा कीजिए और अपना राज्य लीजिए।

(हरिश्चन्द्र भगवान और धर्म का मुँह देखते हैं)

धर्म–महाराज राज आप का है इसका मैं साक्षी हूँ आप नि:संदेह लीजिए।

सत्य–ठीक है जिसने हमारा अस्तित्त्व संसार में प्रत्यक्ष कर दिखाया उसी का पृथ्वी का राज्य है।

श्रीमहादेव–पुत्र हरिश्चन्द्र, भगवान नारायण के अनुग्रह से ब्रह्मलोक पर्यंत तुम ने पाया तथापि मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी कीर्ति, जब तक पृथ्वी है तब तक स्थिर रहे और रोहिताश्व दीर्घायु, प्रतापी और चक्रवर्ती होय।

पा.–पुत्री शैव्या! तुम्हारे पति के साथ तुम्हारी कीर्ति स्वर्ग की स्त्रियाँ गावें, तुम्हारी पुत्रवधू सौभाग्यवती हो और लक्ष्मी तुम्हारे घर का कभी त्याग न करे।

(हरिश्चन्द्र और शैव्या प्रणाम करते हैं)

भै.–और जो तुम्हारी कीर्ति कहे सुने और उसका अनुसरण करे उस की भैरवी यातना न हो।

इन्द्र–(राजा को आलिंगन करके और हाथ जोड़ के) महाराज, मुझे क्षमा कीजिये। यह सब मेरी दुष्टता थी परंतु इस बात से आप का तो कल्याण ही हुआ। स्वर्ग कौन कहे आप ने अपने सत्यबल से ब्रह्मपद पाया। देखिये आप की रक्षा के हेतु श्रीशिव जी ने भैरवनाथ को आज्ञा दी थी, आप उपाध्यक्ष बने थे, नारद जी बटु बने थे, साक्षात् धर्म ने आप के हेतु चांडाल और कापालिक का भेष लिया और सत्य ने आप ही के कारण चांडाल के अनुचर और बैताल का रूप धारण किया। न आप बिके, न दास हुए, यह सब चरित्र भगवान नारायण की इच्छा से केवल आप के सुयश के हेतु किया गया।

ह.–(गद्‌गद् स्वर से) अपने दासों का यश बढ़ाने वाला और कौन है।

भ.–महाराज। और जो भी इच्छा हो मांगो।

ह.–(प्रणाम करके गद्‌गद् स्वर से) प्रभु! आप के दर्शन से सब इच्छा पूर्ण हो गई, तथापि आप की आज्ञानुसार यह वर मांगता हूँ कि मेरी प्रजा भी मेरे साथ बैकुंठ जाये और सत्य सदा पृथ्वी पर स्थिर रहे।

भ.–एवमस्तु, तुम ऐसे ही पुण्यात्मा हो कि तुम्हारे कारण अयोध्या के कीट पतंग जीव मात्र सब परमधाम जायेंगे और कलियुग में धर्म के सब चरण टूट जायंगे तब भी वह तुम्हारी इच्छानुसार सत्य मात्र एक पद से स्थित रहेगा। इतना ही देकर मुझे सन्तोष नहीं हुआ कुछ और भी मांगो। मैं तुम्हें क्या-क्या दूं क्योंकि मैं तो अपने ही को तुम्हें दे चुका। तथापि मेरी इच्छा यही है कि तुम को कुछ और वर दूं। तुम्हें वर देने में मुझे सन्तोष नहीं होता।

ह.–(हाथ जोड़कर) भगवान मुझे अब कौन इच्छा है। मैं और क्या वर मांगूं तथापि भरत का यह वाक्य सुफल हो-

खल गनन सो सज्जन दुखी मति होइ, हरिपद रति रहे।
उपधर्म छूटैं सत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै।।
बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सम होहिं, सबजगसुखल है।
तजि ग्रामकविता सुकविजन की अमृत बानी सब कहै।।
(पुष्पवृष्टि और बाजे की धुनि के साथ जवनिका गिरती है)

प्रताप नारायण मिश्र

प्रताप नारायण मिश्र (अंग्रेजी: Pratap Narayan Mishra; जन्म- 24 सितम्बर, 1856, उन्नाव, उत्तर प्रदेश, मृत्यु- 6 जुलाई, 1894) को आधुनिक हिन्दी निर्माताओं में से एक माना जाता है। वे हिन्दी खड़ी बोली और भारतेन्दु युग के उन्नायक कहे जाते हैं। प्रताप नारायण मिश्र ने एक लेखक, कवि और पत्रकार के रूप में विशेष प्रसिद्धि पाई थी। मिश्र जी की भारतेन्दु हरिश्चन्द्र में अनन्य श्रद्धा थी। वह स्वयं को उनका शिष्य कहते थे तथा देवता के समान उनका स्मरण करते थे। भारतेन्दु जैसी रचना शैली, विषयवस्तु और भाषागत विशेषताओं के कारण ही प्रताप नारायण मिश्र को 'प्रतिभारतेन्दु' या 'द्वितीयचन्द्र' आदि कहा जाने लगा था। मिश्र जी द्वारा लिखे हुए निबंधों में विषय की पर्याप्त विविधता है। देश-प्रेम, समाज-सुधार एवं साधारण मनोरंजन आदि उनके निबंधों के मुख्य विषय थे। उन्होंने 'ब्राह्मण' नामक मासिक पत्र में हर प्रकार के विषयों पर निबंध लिखे थे।

जन्म तथा शिक्षा

प्रताप नारायण मिश्र का जन्म 24 सितम्बर, 1856 ई. में उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले में वैजे गाँव में हुआ था। ये कात्यायन गोत्रीय और कान्यकुब्ज ब्राह्मण

पण्डित संकटादीन के पुत्र थे। पिता युवावस्था में ही कानपुर में आकर बस गए थे और एक ज्योतिषी के रूप में अपनी जीविका चलाते थे। मिश्र जी अक्षरारंभ के पश्चात् अपने पिता से ही ज्योतिष पढ़ने लगे। किंतु उधर रुचि न होने से पिता ने उन्हें अंग्रेजी पाठशाला में भर्ती करा दिया। तब से कई स्कूलों का चक्कर लगाने पर भी वह पिता की लालसा के विपरीत पढ़ाई-लिखाई से विरत ही रहे और पिता की मृत्यु के पश्चात् 18-19 वर्ष की अवस्था में उन्होंने स्कूली शिक्षा से अपना पिंड छुड़ा लिया। इस प्रकार मिश्र जी की शिक्षा अधूरी ही रह गई। किंतु उन्होंने प्रतिभा और स्वाध्याय के बल से अपनी योग्यता पर्याप्त बढ़ा ली। वे हिन्दी, उर्दू और बंगला तो अच्छी जानते ही थे, इसके साथ ही फारसी, अंग्रेजी और संस्कृत में भी उनकी अच्छी गति थी।

हिन्दी के प्रति अनुराग

प्रताप नारायण मिश्र छात्रावस्था से ही 'कविवचनसुधा' के गद्य-पद्यमय लेखों का नियमित पाठ करते थे, जिससे हिन्दी के प्रति उनका अनुराग उत्पन्न हुआ। लावनौ गायकों की टोली में आशु रचना करने तथा ललित जी की रामलीला में अभिनय करते हुए उनसे काव्य रचना की शिक्षा ग्रहण करने से वह स्वयं मौलिक रचना का अभ्यास करने लगे। इसी बीच वह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के संपर्क में आए। उनका आशीर्वाद तथा प्रोत्साहन पाकर वे हिन्दी गद्य तथा पद्य रचना करने लगे। 1882 के आस-पास 'प्रेमपुष्पावली' प्रकाशित हुआ और भारतेंदु जी ने उसकी प्रशंसा की तो प्रताप नारायण मिश्र का उत्साह बहुत बढ़ गया।

मासिक पत्र का सम्पादन

15 मार्च, 1883 को ठीक होली के दिन अपने कई मित्रों के सहयोग से मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' नामक मासिक पत्र निकाला। यह अपने रूप-रंग में ही नहीं, विषय और भाषा-शैली की दृष्टि से भी भारतेंदु युग का विलक्षण पत्र था। सजीवता, सादगी बाँकपन और फक्कड़पन के कारण भारतेंदु कालीन साहित्यकारों में जो स्थान प्रताप नारायण मिश्र जी का था, वही तत्कालीन हिन्दी पत्रकारिता में इस पत्र का था, किंतु यह कभी नियत समय पर नहीं निकलता था। दो-तीन बार तो इसके बंद होने तक की नौबत आ गई थी। इसका कारण मिश्र जी का व्याधिमंदिर शरीर ओर अर्थाभाव था। किंतु रामदीन सिंह आदि की सहायता से यह किसी-न-किसी प्रकार संपादक के जीवन काल तक निकलता रहा। उनकी

मृत्यु के बाद भी रामदीन सिंह के संपादकत्व में कई वर्षों तक निकला, परंतु पहले जैसा आकर्षण वे उसमें नहीं ला पाये थे।

सहायक संपादक

आगे के समय में सन् 1889 में प्रताप नारायण मिश्र 25 रुपया मासिक के वेतन पर 'हिन्दीस्थान' के सहायक संपादक होकर कालाकाँकर आए। उन दिनों पण्डित मदनमोहन मालवीय उसके संपादक थे। यहाँ बालमुकुंद गुप्त ने मिश्र जी से हिन्दी सीखी। मदनमोहन मालवीय के हटने पर मिश्र जी अपनी स्वच्छंद प्रवृत्ति के कारण वहाँ न टिक सके। कालाकाँकर से लौटने के बाद वह प्रायः रुग्ण रहने लगे। फिर भी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक कार्यों में पूर्ववत् रुचि लेते और 'ब्राह्मण' के लिये लेख आदि प्रस्तुत करते रहे। 1891 में उन्होंने कानपुर में 'रसिक समाज' की स्थापना की। कांग्रेस के कार्यक्रमों के अतिरिक्त 'भारतधर्ममंडल', 'धर्मसभा', 'गोरक्षिणी सभा' और अन्य सभा समितियों के सक्रिय कार्यकर्ता और सहायक बने रहे। कानपुर की कई नाट्य सभाओं और गोरक्षिणी समितियों की स्थापना प्रताप नारायण मिश्र जी के प्रयत्नों से ही हुई थी।

रचनाएँ

काव्य - 'कानपुर माहात्म्य', 'तृप्यन्ताम्', 'तारापति पचीसी', 'दंगल खण्ड', 'प्रार्थना शतक', 'प्रेम पुष्पावली', 'फाल्गुन माहात्म्य', 'ब्रैडला स्वागत', 'मन की लहर', 'युवराज कुमार स्वागतन्ते', 'लोकोक्ति शतक', 'शोकाश्रु', 'शृंगार विलास', 'श्री प्रेम पुराण', 'होली है', 'दीवाने बरहमन' और 'स्फुट कविताएँ'।

उपर्युक्त रचनाओं में से 'तृप्यन्ताम्', 'तारापति पचीसी', 'प्रेम पुष्पावली', 'ब्रैडला स्वागत', 'मन की लहर', 'युवराजकुमार स्वागतन्तें', 'शोकाश्रु', 'प्रेम पुराण' तथा 'होली' श्प्रताप नारायण मिश्र कवितावली' में संग्रहीत हैं।

नाट्य-साहित्य - 'कलि कौतुक' (रूपक), 'जुआरी खुआरी' (प्रहसन, अपूर्ण), 'हठी हमीर', 'संगीत शाकुन्तल' ('अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के आधार पर रचित गीति रूपक), 'भारत दुर्दशा' (रूपक), 'कलि प्रवेश' (गीतिरूपक), 'दूध का दूध और पानी का पानी' (भाण, अपूर्ण)।

निबन्ध - 'प्रताप नारायण ग्रंथावली भाग एक' - इसमें मिश्र जी के लगभग 200 निबन्ध संग्रहीत हैं।

आत्मकथा – 'प्रताप चरित्र' (अपूर्ण) – यह प्रताप नारायण ग्रंथावली भाग एक में संकलित है।

उपन्यास (अनुदित) – 'अमरसिंह', 'इन्दिरा', 'कपाल कुंडला', 'देवी चौधरानी', 'युगलांगुलीय' और 'राजसिंह राधारानी' – सभी उपन्यास प्रसिद्ध कथाकार बंकिम चन्द्र के उपन्यासों के अनुवाद हैं।

कहानी (अनुदित) – 'कथा बाल संगीत', 'कथा माला', 'चरिताष्टक'।

संग्रहीत रचनाएँ – 'मानस विनोद' (पद्य), 'रसखान शतक' (पद्य), 'रहिमन शतक' (पद्य) और 'सती चरित' (गद्य)।

समालोचा

मिश्र जी भारतेन्दु मंडल के प्रमुख लेखकों में से एक थे। उन्होंने हिन्दी साहित्य की विविध रूपों में सेवा की। वे कवि होने के अतिरिक्त उच्च कोटि के मौलिक निबंध लेखक और नाटककार थे। हिन्दी गद्य के विकास में मिश्र जी का बड़ा योगदान रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पण्डित बालकृष्ण भट्ट के साथ मिश्र जी को भी महत्त्व देते हुए अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है– 'पण्डित प्रताप नारायण मिश्र' और पण्डित बालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी गद्य साहित्य में वही काम किया, जो अंग्रेजी गद्य साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया।'

शैली

प्रताप नारायण मिश्र की शैली में वर्णनात्मक, विचारात्मक तथा हास्य विनोद शैलियों का सफल प्रयोग किया गया है। इनकी शैली को दो प्रमुख प्रकारों में बाँटा जा सकता है–

1. विचारात्मक शैली
2. व्यंग्यात्मक शैली

विचारात्मक शैली

साहित्यिक और विचारात्मक निबंधों में मिश्र जी ने इस शैली को अपनाया है। कहीं-कहीं इस शैली में हास्य और व्यंग्य का पुट मिलता है। इस शैली की भाषा संयत और गंभीर है। 'मनोयोग' शीर्षक निबंध का एक अंश इस प्रकार है– 'इसी से लोगों ने कहा है कि मन शरीर रूपी नगर का राजा है। और स्वभाव

उसका चंचल है। यदि स्वच्छ रहे तो बहुधा कुत्सित ही मार्ग में धावमान रहता है।'

व्यंग्यात्मक शैली

इस शैली में मिश्र जी ने अपने हास्य और व्यंग्य पूर्ण निबंध लिखे हैं। यह शैली मिश्र जी की प्रतिनिधि शैली है, जो सर्वथा उनके अनुकूल है। वे हास्य और विनोद प्रिय व्यक्ति थे, अतः प्रत्येक विषय का प्रतिपादन हास्य और विनोद पूर्ण ढंग से करते थे। हास्य और विनोद के साथ-साथ इस शैली में व्यंग्य के दर्शन होते हैं। विषय के अनुसार व्यंग्य कहीं-कहीं बड़ा तीखा और मार्मिक हो गया है। इस शैली में भाषा सरल, सरस और प्रवाहमयी है। उसमें उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग हुआ है। लोकोक्तियाँ और मुहावरों के कारण यह शैली अधिक प्रभावपूर्ण हो गई है।

भाषा

खड़ी बोली के रूप में प्रचलित जनभाषा का प्रयोग प्रताप नारायण मिश्र ने अपने साहित्य में किया। प्रचलित मुहावरों, कहावतों तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग इनकी रचनाओं में हुआ है। भाषा की दृष्टि से मिश्र जी ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का ही अनुसरण किया और जन साधारण की भाषा को अपनाया। भारतेन्दु जी के समान ही मिश्र जी भाषा कृत्तिमता से दूर हैं। वह स्वाभाविक हैं। पंडिताऊपन और पूर्वीपन अधिक है। उसमें ग्रामीण शब्दों का प्रयोग स्वच्छंदता पूर्वक हुआ है। संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी, आदि के प्रचलित शब्दों को भी ग्रहण किया गया है। भाषा विषय के अनुकूल है। गंभीर विषयों पर लिखते समय और गंभीर हो गई है। कहावतों और मुहावरों के प्रयोग में मिश्र जी बड़े कुशल थे। मुहावरों का जितना सुंदर प्रयोग उन्होंने किया है, वैसा बहुत कम लेखकों ने किया है। कहीं-कहीं तो उन्होंने मुहावरों की झड़ी-सी लगा दी है।

निधन

प्रताप नारायण मिश्र जितने परिहास प्रिय और जिंदादिल व्यक्ति थे, उतने ही अनियमित, अनियंत्रित, लापरवाह और काहिल थे। रोग के कारण उनका शरीर युवावस्था में ही जर्जर हो गया था। तो भी स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का वह सदा उल्लंघन करते रहे। इससे उनका स्वास्थ्य दिनों दिन गिरता गया। 1892 के अंत

में वह गंभीर रूप से बीमार पड़े और लगातार डेढ़ वर्षों तक बीमार ही रहे। अंत में 38 वर्ष की अवस्था में 6 जुलाई, 1894 को दस बजे रात में 'भारतेंदुमंडल' के इस नक्षत्र का अवसान हो गया।

ठाकुर जगमोहन सिंह

ठाकुर जगमोहन सिंह (अंग्रेजी: Thakur Jagmohan Singh, जन्म- 1857 ई., मध्य प्रदेशय मृत्यु- 4 मार्च, 1899 ई.) प्रसिद्ध साहित्यकार थे। इनका नाम 'भारतेन्दु युग' के सहृदय साहित्य सेवियों में आता है। ये मध्य प्रदेश स्थित विजय राघवगढ़ के राजकुमार और अपने समय के बहुत बड़े विद्यानुरागी थे। आप हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य के भी अच्छे ज्ञाता थे। इनके समस्त कृतित्त्व पर संस्कृत अध्ययन की व्यापक छाप है। जगमोहन सिंह ने ब्रजभाषा के कवित्त और सवैया छन्दों में कालिदास कृत 'मेघदूत' का बहुत सुन्दर अनुवाद भी किया है।

जन्म तथा शिक्षा

ठाकुर जगमोहन सिंह का जन्म श्रावण शुक्ल चतुर्दशी, संवत 1914 (1857 ई.) को हुआ था। वे विजयराघवगढ़, मध्य प्रदेश के राजकुमार थे। अपनी शिक्षा के लिए काशी आने पर उनका परिचय भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनकी मंडली से हुआ। हिन्दी के अतिरिक्त वे संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य की भी अच्छी जानकारी रखते थे।

एक प्रेम-पथिक कवि

ठाकुर साहब मूलत: कवि ही थे। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा नई और पुरानी दोनों प्रकार की काव्य प्रवृत्तियों का पोषण किया। उन्होंने जो गद्य लिखा है, उस पर भी उनके कवि-व्यक्तित्त्व की स्पष्ट छाप है। जगमोहन सिंह उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के उन स्वनामधन्य कवियों में प्रमुख माने जाते हैं, 'जिन्होंने एक ओर तो हिन्दी साहित्य की नवीन गति के प्रवतर्तन में योग दिया, दूसरी ओर पुरानी परिपाठी की कविता के साथ भी अपना पूरा सम्बन्ध बनाये रखा।' इस सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आपको एक प्रेम-पथिक कवि के रूप में स्मरण किया है।

काव्य भाषा

जगमोहन सिंह की काव्य भाषा परिमार्जित ब्रजभाषा थी। सरस, शृंगारी भावभूमि को लेकर कवित्त-सवैया की रचना करने में आप बहुत निपुण थे। उनकी रचनाओं की एक बहुत बड़ी विशेषता इस बात में है कि वे प्रकृति के ताजा मनोहर चित्रों से अलंकृत हैं। उनमें प्रकृति के विस्तृत सौन्दर्य के प्रति व्यापक अनुराग दृष्टि बिम्बित हुई है। छायावाद युग आरम्भ होने के कोई 25-30 वर्ष पूर्व ही जगमोहन सिंह की कृतियों में मानवीय सौन्दर्य को प्राकृतिक सौन्दर्य की तुलना मूलक पृष्ठभूमि में देखने-परखने का एक संकेत उपलब्ध होता है और उस दृष्टि से उनकी तत्कालीन रचनाएँ 'हिन्दी काव्य में एक नूतन विधान का आभास देती हैं।'

कविता संग्रह

जगमोहन सिंह जी की कविताओं के तीन संग्रह प्रसिद्ध हैं-

- प्रेम सम्पत्ति लता (1885 ई.)
- श्यामा लता (1885 ई.)
- श्यामा-सरोजिनी (1886 ई.)

शृंगारिक रचना

'प्रेम सम्पत्ति लता' से इनकी एक बहुउद्धृत शृंगारिक रचना (सवैया) निम्नांकित है-

'अब यों उर आवत है सजनी, मिलि जाउँ गरे लगि कै छतियाँ। मनकी करि भाँति अनेकन औ मिलि कीजिय री रस की कतियाँ।।

हम हारि अरि करि कोटि उपाय, लिखी बहु नेह भरी पतियाँ। जगमोहन मोहनी मूरति के बिना कैसे कटैं दु:ख की रतियाँ।।'

निबन्धकार

ठाकुर जगमोहन सिंह हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य के भी अच्छे ज्ञाता थे। उनके समस्त कृतित्त्व पर संस्कृत अध्ययन की व्यापक छाप है। ब्रजभाषा के कवित्त और सवैया छन्दों में कालिदास कृत 'मेघदूत' का बहुत सुन्दर अनुवाद उन्होंने किया है। जगमोहन सिंह जी अपने समय के उत्कृष्ट गद्य लेखक भी रहे। हिन्दी निबन्ध के प्रथम उत्थान काल के निबन्धकारों में उनका स्थान

महत्त्वपूर्ण है। वे ललित शैली के सरस लेखक थे। उनकी भाषा बड़ी परिमार्जित एवं संस्कृतगर्भित थी और शैली प्रवाह युक्त तथा गद्य काव्यात्मक। फिर भी हिन्दी के आरम्भिक गद्य में उपलब्ध होने वाले पूर्वी प्रयोगों और 'पण्डिताऊपन' की चिंत्य शैली से आप बच नहीं पाये हैं। 'धरे हैं', 'हम क्या करैं', 'चाहती हौ', 'जिसै दूँ' और 'ढोल पिटै' जैसे अशुद्ध प्रयोग उनकी रचनाओं में बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं।

जगमोहन सिंह ने आधुनिक युग के द्वार पर खड़े होकर शायद पहली बार प्रकृति को वास्तविक अनुराग-दृष्टि से देखा था। आपके कविरूप की यह एक विशेषता है। निबन्धकार के रूप में आपने हिन्दी की आरम्भिक गद्यशैली को एक साहित्यिक व्यवस्था प्रदान की थी।

कृति 'श्यामा स्वप्न'

'श्यामा स्वप्न' जगमोहन सिंह की प्रमुख गद्य कृति है। इसका एक प्रामाणिक स्वरूप श्रीकृष्णलाल द्वारा सम्पादित होकर काशी की 'नागरी प्रचारिणी सभा' से प्रकाशित हो चुका है। लेखक के समसामयिक युग के सुप्रसिद्ध साहित्यकार अम्बिकादत्त व्यास ने इस कृति को गद्य-काव्य कहा है। स्वयं लेखक ने इसे 'गद्य प्रधान चार खण्डों में एक कल्पना' कहा है। यह वाक्यांश इस पुस्तक के मुख पृष्ठ पर अंकित है। इसमें गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग किया गया है, किंतु गद्य की तुलना में पद्य की मात्रा बहुत कम है। यह कृति वस्तुतः एक भाव प्रधान उपन्यास है। उसकी शैली वर्णनात्मक है और इसमें चरित्र-चित्रण की उपेक्षा करके प्रकृति तथा प्रेममय जीवन के सुन्दर चित्र अंकित किये गये हैं।

निधन

ठाकुर जगमोहन सिंह की मृत्यु 42 वर्ष की आयु में 4 मार्च, 1899 ई. में हुई।

बालकृष्ण भट्ट

बालकृष्ण भट्ट (अंग्रेजी: Balkrishna Bhatt; जन्म- 3 जून, 1844, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, मृत्यु- 20 जुलाई, 1914) आधुनिक हिन्दी साहित्य के शीर्ष निर्माताओं में से एक थे। आज की गद्य प्रधान कविता का जनक इन्हें माना जाता है। बालकृष्ण भट्ट एक सफल नाटककार, पत्रकार, उपन्यासकार और

निबन्धकार थे। भट्ट जी ने निबन्ध, उपन्यास और नाटकों की रचना करके हिन्दी को एक समर्थ शैली प्रदान की। ये पहले ऐसे निबन्धकार थे, जिन्होंने आत्मपरक शैली का प्रयोग किया था। बालकृष्ण भट्ट को हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला और फारसी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। इन्होंने हिन्दी साहित्य की विविध रूपों में सेवा की। लगभग बत्तीस वर्षों तक 'हिन्दी प्रदीप' का संपादन कर भट्ट जी अपने विचारों का व्यक्तिकरण करते रहे। ये 'भारतेन्दु युग' की देदीप्यमान मौन विभूति होने के साथ-साथ 'द्विवेदी युग' के लेखकों के मार्ग-दर्शक और प्रेरणा स्रोत भी रहे।

जन्म तथा शिक्षा

बालकृष्ण भट्ट जी का जन्म प्रयाग (आधुनिक इलाहाबाद), उत्तर प्रदेश में 3 जून, 1844 ई. में हुआ था। इनके पिता का नाम पंडित वेणी प्रसाद था। पंडित वेणी प्रसाद की शिक्षा की ओर विशेष रुचि रहती थी, साथ ही इनकी पत्नी भी एक विदुषी महिला थीं, अतः बालकृष्ण भट्ट की शिक्षा पर बाल्यकाल से ही विशेष ध्यान दिया गया। प्रारंभ में इन्हें घर पर ही संस्कृत की शिक्षा दी गयी और 15-16 वर्ष की अवस्था तक इनका यही क्रम रहा। इसके उपरान्त इन्होंने माता के आदेशानुसार स्थानीय मिशन के स्कूल में अंग्रेजी पढ़ना प्रारंभ किया और दसवीं कक्षा तक अध्ययन किया। विद्यार्थी जीवन में इन्हें बाईबिल परीक्षा में कई बार पुरस्कार भी प्राप्त हुए। मिशन स्कूल छोड़ने के उपरान्त यह पुनः संस्कृत, व्याकरण और साहित्य का अध्ययन करने लगे।

व्यावसायिक जीवन

कुछ समय के लिए बालकृष्ण भट्ट 'जमुना मिशन स्कूल' में संस्कृत के अध्यापक भी रहे, पर अपने धार्मिक विचारों के कारण इन्हें पद त्याग करना पड़ा। विवाह हो जाने पर जब इन्हें अपनी बेकारी खलने लगी, तब यह व्यापार करने की इच्छा से कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) भी गए, परन्तु वहाँ से शीघ्र ही लौट आये और संस्कृत साहित्य के अध्ययन तथा हिन्दी साहित्य की सेवा में जुट गए। वह स्वतंत्र रूप से लेख लिखकर हिन्दी साप्ताहिक और मासिक पत्रों में भेजने लगे तथा कई वर्ष तक प्रयाग में संस्कृत के अध्यापक रहे। भट्ट जी प्रयाग से 'हिन्दी प्रदीप' मासिक पत्र का निरंतर घाटा सहकर 32 वर्ष तक उसका सम्पादन करते रहे। 'हिन्दी प्रदीप' बंद होने के बाद 'हिन्दी शब्दसागर' का संपादन कार्य

भी इन्होंने कुछ समय तक देखा, पर अस्वस्थता के कारण इन्हें यह कार्य छोड़ना पड़ा।

हिन्दी साहित्य में स्थान

बालकृष्ण भट्ट का हिन्दी के निबन्धकारों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। निबन्धों के प्रारंभिक युग को नि:संकोच भाव से भट्ट युग के नाम से अभिहित किया जा सकता है। व्यंग्य विनोद संपन्न शीर्षकों और लेखों द्वारा एक ओर तो भट्ट जी प्रताप नारायण मिश्र के निकट हैं और गंभीर विवेचन एवं विचारात्मक निबन्धों के लिए वे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निकट हैं। भट्ट जी अपने युग के न केवल सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार थे, अपितु इन्हें सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में प्रथम श्रेणी का निबन्ध लेखक माना जाता है। इन्होंने साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक, नैतिक और सामयिक आदि सभी विषयों पर विचार व्यक्त किये हैं। इन्होंने तीन सौ से अधिक निबन्ध लिखे हैं। इनके निबन्धों का कलेवर अत्यंत संक्षिप्त है तथा तीन पृष्ठों में ही समाप्त हो जाते हैं। इन्होंने मूलत: विचारात्मक निबन्ध ही लिखे हैं और इन विचारात्मक निबन्धों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

- व्यावहारिक जीवन से सम्बंधित।
- साहित्यिक विषयों से सम्बन्धित।
- सामयिक विषयों से सम्बंधित।
- हृदय की वृतियों पर आधारित।

कृतियाँ

भट्ट जी 'भारतेंदु युग' की देन थे और भारतेंदु मंडली के प्रधान सदस्य थे। प्रयाग में इन्होंने 'हिन्दी प्रवर्द्धिनी' नामक सभा की स्थापना की थी और 'हिन्दी प्रदीप' नामक पत्र प्रकाशित करते रहे। इसी पत्र में इनके अनेक निबन्ध दृष्टिगोचर होते हैं। 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' प्रयाग ने इनके कुछ निबन्धों का संग्रह 'निबन्धावली' नाम से प्रकाशित भी करवाया था।

निबन्ध संग्रह – साहित्य सुमन, भट्ट निबन्धावली।

उपन्यास – नूतन ब्रह्मचारी, सौ अजान एक सुजान।

नाटक – दमयंती स्वयंवर, बाल-विवाह, चंद्रसेन, रेल का विकट खेल।

अनुवाद – वेणीसंहार, मृच्छकटिक, पद्मावती।

भाषा

भाषा की दृष्टि से अपने समय के लेखकों में बालकृष्ण भट्ट का स्थान बहुत ऊँचा है। उन्होंने अपनी रचनाओं में यथाशक्ति शुद्ध हिन्दी का प्रयोग किया। भावों के अनुकूल शब्दों का चुनाव करने में भट्ट जी बड़े कुशल थे। कहावतों और मुहावरों का प्रयोग भी उन्होंने सुंदर ढंग से किया है। भट्ट जी की भाषा में जहाँ तहाँ पूर्वीपन की झलक मिलती है, जैसे- समझा-बुझा के स्थान पर समझाय-बुझाय लिखा गया है। बालकृष्ण भट्ट की भाषा को दो कोटियों में रखा जा सकता है। प्रथम कोटि की भाषा तत्सम शब्दों से युक्त है। द्वितीय कोटि में आने वाली भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ-साथ तत्कालीन उर्दू, अरबी, फारसी तथा आंग्ल भाषीय शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। वह हिन्दी की परिधि का विस्तार करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने भाषा को विषय एवं प्रसंग के अनुसार प्रचलित हिन्दीतर शब्दों से भी समन्वित किया है। बालकृष्ण भट्ट की भाषा जीवंत तथा चित्ताकर्षक है। इसमें यत्र-तत्र पूर्वी बोली के प्रयोगों के साथ-साथ मुहावरों का प्रयोग भी किया गया है, जिससे भाषा अत्यन्त रोचक और प्रवाहमयी बन गई है।

शैली

बालकृष्ण भट्ट की लेखन शैली को दो कोटियों में रखा जा सकता है। प्रथम कोटि की शैली को परिचयात्मक शैली कहा जा सकता है। इस शैली में उन्होंने कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं। द्वितीय कोटि में आने वाली शैली गूढ़ और गंभीर है। इस शैली में भट्ट जी को अधिक नैपुण्य प्राप्त है। उन्होंने 'आत्म-निर्भरता' तथा 'कल्पना' जैसे गम्भीर विषयों के अतिरिक्त, 'आँख', 'नाक' तथा 'कान' आदि अति सामान्य विषयों पर भी सुन्दर निबन्ध लिखे हैं। आपके निबन्धों में विचारों की गहनता, विषय की विस्तृत विवेचना, गम्भीर चिन्तन के साथ एक अनूठापन भी है। यत्र-तत्र व्यंग्य एवं विनोद उनकी शैली को मनोरंजक बना देता है। उन्होंने हास्य आधारित लेख भी लिखे हैं, जो अत्यन्त शिक्षादायक हैं। भट्ट जी का गद्य, गद्य न होकर गद्य काव्य-सा प्रतीत होता है। वस्तुतः आधुनिक कविता में पद्यात्मक शैली में गद्य लिखने की परंपरा का सूत्रपात बालकृष्ण भट्ट जी ने ही किया था।

वर्णनात्मक शैली

वर्णनात्मक शैली में बालकृष्ण भट्ट जी ने व्यावहारिक तथा सामाजिक विषयों पर निबन्ध लिखे हैं। जन साधारण के लिए भट्ट जी ने इसी शैली को अपनाया। उनके उपन्यास की शैली भी यही है, किंतु इसे उनकी प्रतिनिधि शैली नहीं कहा जा सकता। इस शैली की भाषा सरल और मुहावरेदार है। वाक्य कहीं छोटे और कहीं बड़े हैं।

विचारात्मक शैली

भट्ट जी द्वारा गंभीर विषयों पर लिखे गए निबन्ध इसी शैली के अंतर्गत आते हैं। तर्क और विश्वास, ज्ञान और भक्ति, संभाषण आदि निबन्ध विचारात्मक शैली के उदाहरण हैं। इस शैली की भाषा में संस्कृत के शब्दों की अधिकता है।

भावात्मक शैली

इस शैली का प्रयोग बालकृष्ण भट्ट ने साहित्यिक निबन्धों में किया है। इसे भट्ट जी की प्रतिनिधि शैली कहा जा सकता है। इस शैली में शुद्ध हिन्दी का प्रयोग हुआ है। भाषा प्रवाहमयी, संयत और भावानुकूल है। इस शैली में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग भी हुआ है। अलंकारों के प्रयोग से भाषा में विशेष सौंदर्य आ गया है। भावों और विचार के साथ कल्पना का भी सुंदर समन्वय हुआ है। इसमें गद्य काव्य जैसा आनंद होता है।

व्यंग्यात्मक शैली

इस शैली में हास्य और व्यंग्य की प्रधानता है। विषय के अनुसार कहीं व्यंग्य अत्यंत मार्मिक और तीखा हो गया है। इस शैली की भाषा में उर्दू शब्दों की अधिकता है और वाक्य छोटे-छोटे हैं।

निधन

बालकृष्ण भट्ट का निधन 20 जुलाई, 1914 ई. में हुआ। लेखकों में उनका सर्वोच्च स्थान है। भट्ट जी ने नाटककार, निबन्धकार, लेखक, उपन्यासकार और अनुवादक आदि विभिन्न रूपों में हिन्दी की सेवा की और उसे धनी बनाया। साहित्य की दृष्टि से भट्ट जी के निबन्ध अत्यंत उच्च कोटि के हैं। इस दिशा में उनकी तुलना अंग्रेजी के प्रसिद्ध निबंधकार चार्ल्स लैंब से की जा सकती है।

गद्य काव्य की रचना भी सर्वप्रथम भट्ट जी ने ही प्रारंभ की थी। इनसे पूर्व तक हिन्दी में गद्य काव्य का नितांत अभाव था।

द्विवेदी युग

द्विवेदी युग का समय सन् 1900 से 1920 तक माना जाता है। बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशक के पथ-प्रदर्शक, विचारक और साहित्य नेता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही इस काल का नाम 'द्विवेदी युग' पड़ा। इसे 'जागरण सुधारकाल' भी कहा जाता है। महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के ऐसे पहले लेखक थे, जिन्होंने अपनी जातीय परंपरा का गहन अध्ययन ही नहीं किया था, अपितु उसे आलोचकीय दृष्टि से भी देखा। उन्होंने वेदों से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के संस्कृत साहित्य की निरंतर प्रवाहमान धारा का अवगाहन किया एवं उपयोगिता तथा कलात्मक योगदान के प्रति एक वैज्ञानिक नजरिया अपनाया। कविता की दृष्टि से द्विवेदी युग 'इतिवृत्तात्मक युग' था। इस समय आदर्शवाद का बोलबाला रहा। भारत का उज्ज्वल अतीत, देश-भक्ति, सामाजिक सुधार, स्वभाषा-प्रेम आदि कविता के मुख्य विषय थे। नीतिवादी विचारधारा के कारण श्रृंगार का वर्णन मर्यादित हो गया। कथा-काव्य का विकास इस युग की विशेषता है। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के यशस्वी कवि थे। जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इसी युग में ब्रजभाषा में सरस रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

नामकरण

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही यह काल 'द्विवेदी युग' के नाम से जाना जाता है। इसे 'जागरण-सुधारकाल' भी कहा जाता है। इस समय ब्रिटिश दमन-चक्र बहुत बढ़ गया था। जनता में असंतोष और क्षोभ की भावना प्रबल थी। ब्रिटिश शासकों द्वारा लोगों का अर्थिक-शोषण भी चरम पर था। देश के स्वाधीनता संग्राम के नेताओं द्वारा पूर्ण-स्वराज्य की मांग की जा रही थी। गोपालकृष्ण गोखले और लोकमान्य गंगाधर तिलक जैसे नेता देश के स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व कर रहे थे। इस काल के साहित्यकारों ने न सिर्फ देश की दुर्दशा का चित्रण किया, बल्कि देशवासियों को आजादी की प्राप्ति की प्रेरणा भी दी। राजनीतिक चेतना के साथ-साथ इस काल में भारत की आर्थिक चेतना भी विकसित हुई।

द्विवेदी जी का योगदान

सन् 1903 में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन का भार संभाला। उन्होंने खड़ी बोली गद्य के स्वरूप को स्थिर किया और पत्रिका के माध्यम से रचनाकारों के एक बड़े समुदाय को खड़ी बोली में लिखने को प्रेरित किया। इस काल में निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक एवं समालोचना का अच्छा विकास हुआ। इस युग के निबंधकारों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, श्यामसुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बालमुकंद गुप्त और अध्यापक पूर्णसिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इनके निबंध गंभीर, ललित एवं विचारात्मक हैं, किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू गोपाल राम गहमरी के उपन्यासों में मनोरंजन और घटनाओं की रोचकता है। हिन्दी कहानी का वास्तविक विकास 'द्विवेदी युग' से ही शुरू हुआ। किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' कहानी को कुछ विद्वान् हिन्दी की पहली कहानी मानते हैं। अन्य कहानियों में बंग महिला की 'दुलाई वाली', रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय', जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' और चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' आदि महत्त्वपूर्ण हैं। समालोचना के क्षेत्र में पद्मसिंह शर्मा उल्लेखनीय हैं। अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', शिवनंदन सहाय तथा राय देवीप्रसाद पूर्ण द्वारा भी कुछ नाटक लिखे गए।

साहित्य

महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्य आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास का आदिकाल है। इसका पहला चरण 'भारतेन्दु युग' है एवं दूसरा चरण 'द्विवेदी युग'। महावीर प्रसाद द्विवेदी एक ऐसे साहित्यकार थे, जो बहुभाषाविद् होने के साथ ही साहित्य के इतर विषयों में भी समान रुचि रखते थे। उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका का लगातार अठारह वर्षों तक संपादन कर हिन्दी पत्रकारिता में एक महान् कीर्तिमान स्थापित किया था। वे हिन्दी के पहले व्यवस्थित समालोचक थे, जिन्होंने समालोचना की कई पुस्तकें लिखी थीं। वे खड़ी बोली हिन्दी की कविता के प्रारंभिक और महत्त्वपूर्ण कवि थे। आधुनिक हिन्दी कहानी उन्हीं के प्रयत्नों से एक साहित्यिक विधा के रूप में मान्यता प्राप्त कर सकी थी। वे भाषाशास्त्री थे, अनुवादक थे, इतिहासज्ञ थे, अर्थशास्त्री थे तथा विज्ञान में भी गहरी रुचि रखने वाले थे। अंततः वे युगांतर लाने वाले साहित्यकार थे या दूसरे शब्दों में कहें, युग निर्माता थे। वे अपने चिन्तन और लेखन के द्वारा हिन्दी प्रवेश में नव-जागरण पैदा करने वाले साहित्यकार थे।

द्विवेदी जी हिन्दी के पहले साहित्यकार थे, जिनको 'आचार्य' की उपाधि मिली थी। इसके पूर्व संस्कृत में आचार्यों की एक परंपरा थी। मई, 1933 ई. में 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने उनकी सत्तरवीं वर्षगाँठ पर बनारस में एक बड़ा साहित्यिक आयोजन कर द्विवेदी जी का अभिनंदन किया था। उनके सम्मान में 'द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ' का प्रकाशन कर उन्हें समर्पित किया था। इस अवसर पर द्विवेदी जी ने जो अपना वक्तव्य दिया था, वह 'आत्म-निवेदन' नाम से प्रकाशित हुआ था। इस 'आत्म-निवेदन' में वे कहते हैं- 'मुझे आचार्य की पदवीं मिली है। क्यों मिली है, मालूम नहीं। कब, किसने दी है, यह भी मुझे मालूम नहीं। मालूम सिर्फ इतना ही है कि मैं बहुधा-इस पदवी से विभूषित किया जाता हूँ।....शंकराचार्य, माध्वाचार्य, सांख्याचार्य आदि के सदृश किसी आचार्य के चरणरज: कण की बराबरी मैं नहीं कर सकता। बनारस के संस्कृत कॉलेज या किसी विश्वविद्यालय में भी मैंने कदम नहीं रखा। फिर इस पदवी का मुस्तहक मैं कैसे हो गया?

नाट्य साहित्य

'द्विवेदी युग' नाट्य साहित्य की दृष्टि से सबसे कम समृद्ध है। इस काल में मौलिक नाटकों के सृजन में कमी आई। ऐसा लगता है कि नाटकीय गतिविधि धीरे-धीरे काफी कम हो गई थीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में जो नाटक मंडलियाँ थीं, वे व्यावसायिक तो थीं नहीं, इसलिए समय के साथ वे काल के गाल में समा गईं। इस युग के प्रसिद्ध रंगकर्मी एवं उच्च कोटि के अभिनेता माधव शुक्ल ने अव्यावसायिक रंगमंच को फिर से जिन्दा करने की कोशिश की। बात 1908 की है, जब उन्होंने इलाहाबाद की रामलीला नाटक मंडली को झाड़-पोंछ कर सुरुचि सम्पन्न लोगों की पसंद लायक बनाया। यहाँ से कई नव-जागरण का संदेश देने वाले नाटकों का मंचन हुआ। राष्ट्रीय संस्कृति और सामाजिक चेतना का संस्कार करने वाले नाटकों का रंगमंच पर अभिनय प्रस्तुत किया गया।

रचनाएँ

राधाकृष्णदास द्वारा लिखित 'राणाप्रताप' और माधव शुक्ल द्वारा स्वयं लिखित 'महाभारत' नाटकों के मंचन ने तो धूम ही मचा दी। इससे रंगमंच की दुनिया में एक नई हलचल मची। इससे प्रोत्साहित होकर कई रंगनाटक लिखे गए। माखनलाल चतुर्वेदी कृत 'कृष्णार्जुन युद्ध' (1918), बद्रीनाथ भट्ट कृत

'दुर्गावती', 'कुरुवनदहन' और 'वेनचरित', बलदेव प्रसाद मिश्र कृत 'प्रभास मिलन' इस समय के लिखे हुए बहुत ही प्रभावशाली नाटक थे।

नाट्य लेखन

इस युग के पौराणिक नाटकों में प्रमुख थे-

भगवान श्रीकृष्ण के चरित से संबंधित नाटक–राधाचरण गोस्वामी कृत 'श्रीदामा' (1904), शिवनंदन सहाय कृत 'सुदामा' (1907), बनवारीलाल कृत 'कृष्णकथा' और 'कंसवध' (1909)।

रामचरित संबंधी नाटक–रामनारायण मिश्र कृत 'जनक बाड़ा' (1906), गंगाप्रसाद कृत 'रामाभिषेक' (1910), गिरधरलाल कृत 'राम वनयात्रा' (1910), नारायण सहाय कृत 'रामलीला' (1911), रामगुलामलाल कृत 'धनुषयज्ञ लीला' (1912)।

पौराणिक पात्रों को लेकर लिखे गए नाटक–महावीर सिंह कृत 'नल-दमयंती' (1905), गौरचरण गोस्वामी कृत 'अभिमन्यु वध' (1906), सुदर्शनाचार्य कृत 'अनर्घ नलचरित' (1906), बांकेबिहारी लाल कृत 'सावित्री नाटिका' (1908), बालकृष्ण भट्ट कृत 'वेणु संहार' (1909), लक्ष्मी प्रसाद कृत 'उर्वशी' (1910), हनुमंत सिंह कृत 'सती-चरित्र' (1910), शिवनंदन मिश्र कृत 'शकुंतला' (1911), जयशंकर प्रसाद कृत 'करुणालय' (1912), बद्रीनाथ भट्ट कृत 'कुरुवन-दहन' (1915), माधव धुक्ल कृत 'महाभारत पूर्वार्द्ध' (1916), हरिदास माणिक कृत 'पाण्डव-प्रताप' (1917) और माखनलाल चतुर्वेदी कृत 'कृष्णार्जुन युद्ध' (1918)।

इन नाटकों में चरित्रों के माध्यम से जनता को उपदेश देने का प्रयास किया गया है। नाटक कला का उपयुक्त विकास इनसे नहीं हुआ। अभिनय तत्त्व भी गौण ही है।

ऐतिहासिक नाटक

ऐतिहासिक नाटक में गंगाप्रसाद गुप्त कृत 'वीर जयमाल' (1903), वृंदावनलाल वर्मा कृत 'सेनापति उदल' (1909), बद्रीनाथ भट्ट कृत 'चंद्रगुप्त' (1915), कृष्णप्रकाश सिंह कृत 'पन्ना' (1915), हरिदास माणिक कृत 'संयोगिताहरण' (1915), जयशंकर प्रसाद कृत 'राज्य श्री' (1915) और परमेष्ठीदास जैन कृत 'वीर चूड़ावत सरदार' (1918)।

जयशंकर प्रसाद जी के नाटक को छोड़कर किसी में इतिहास का निर्माण नहीं हो सका।

सामाजिक नाटक

सामाजिक नाटक में प्रताप नारायण मिश्र कृत 'भारत दुर्दशा' (1902), भगवती प्रसाद कृत 'वृद्ध-विवाह' (1905), जीवानंद शर्मा कृत 'भारत विजय' (1906), कृष्णानंद जोशी कृत 'उन्नति कहां से होगी' (1915), मिश्र बंधु कृत 'नेत्रोन्मीलन' (1915)।

इन नाटकों में सामाजिक विकृतियों को उभारने की कोशिश की गई है। इनका लक्ष्य समाज सुधार है। किन्तु नाट्यकला की दृष्टि से इनका महत्त्व अधिक नहीं है।

रोमांचकारी नाटक

इस युग में रोमांचकारी नाटक भी लिखे गए। अलौकिक घटनाओं को केन्द्र में रखकर ये नाटक पारसी रंगमंच की शैली में लिखे गए। इसकी विषय-वस्तु फारसी प्रेम कथाओं पर आधारित होती थी। कुछ रोमांचकारी नाटक पौराणिक कथाओं पर भी आधारित थे। इन नाटकों की शुरुआत 'कोरस' से होती थी। मुख्य कथा के समानान्तर एक प्रहसन भी चलता रहता था। यह दर्शकों को हंसाने के लिए होता था। इन नाटकों की भाषा उर्दू मिश्रित हुआ करती थी। बाद के दिनों में साधारण बोलचाल की भाषा का भी प्रयोग शुरू हो गया। इस श्रेणी के नाटकों की रचना में मुहम्मद मियां 'रौनक', सैयद मेंहदी हसन 'अहसान', नारायण प्रसाद 'बेताब', आगा मोहम्मद 'हश्र' और राधेश्याम कथावचक ने प्रमुख भूमिका निभाई।

प्रहसन नाटक

इस युग में पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, रोमांचकारी, आदि विषयों के अलावा प्रहसन नाटक भी लिखे गए। बद्रीनाथ भट्ट कृत 'चुंगी की उम्मीदवारी' (1912), गंगाप्रसाद श्रीवास्तव कृत 'उल्टफेर' (1918) और 'नोंक झोंक' (1918)।

अनुदित नाटक

अनुदित नाटक की श्रीणी में संस्कृत से सदानंद अवस्थी ने 'नागानंद' (1906), लाला सीताराम ने 'मृच्छकटिक' (1913), कविरत्न सत्यनारायण ने 'उत्तर रामचरित' किया। अंग्रेजी से शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद लाला सीताराम और चतुर्भुज औदीच्य ने किया। बंगला से ब्रजनंदन सहाय ने किया।

रामचन्द्र शुक्ल की विवेचना

'द्विवेदी युग' के नाटकों की विवेचना करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं- 'इन मौलिक रूपकों की सूची देखने से यह लक्षित हो जाता है कि नाटक की कथावस्तु के लिये लोगों का ध्यान अधिकतर ऐतिहासिक और पौराणिक प्रसंगों की ओर ही गया है। वर्तमान सामाजिक और पारिवारिक जीवन के विविध उलझे हुए पक्षों का सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण करके उनके मार्मिक या अनूठे चित्र खड़ा करने वाली उद्‌भावना उनमें नहीं पाई जाती।' चूंकि इस युग में भारतेन्दु से आगे बढ़कर शिल्प और संवेदना के स्तर पर कोई नया प्रयोग तो नहीं ही हुआ, इसलिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी रंगमंच की स्थापना का जो काम शुरू किया था, वह आगे न बढ़ सका। बल्कि यो कहें कि इस युग में सृजन की दृष्टि से ह्रास ही हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि जनता की रुचि व्यावसायिक रंगमंचीय नाटकों की तरफ मुड़ गई।

प्रमुख कवि

इस युग के प्रसिद्ध कवियों में जिन्हें गिना जाता है, उनके नाम इस प्रकार हैं–

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
रामचरित उपाध्याय
जगन्नाथदास 'रत्नाकर'
गयाप्रसाद शुक्ल 'स्नेही'
श्रीधर पाठक
रामनरेश त्रिपाठी
मैथिलीशरण गुप्त

लोचन प्रसाद पाण्डेय
सियारामशरण गुप्त

विशेषताएँ

'द्विवेदी युग' की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

- अशिक्षा, गरीबी, अनाचार, अत्याचार आदि से छुटकारा दिलाने की कामना।
- देश प्रेम एवं राष्ट्रीयता का सन्देश।
- नारी के प्रति सहानुभूति की भावना।
- समाज सुधार के प्रयास।
- नैतिकता एवं आर्दशवाद की पुष्टि।
- सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का विधान।
- मनोरम प्रकृति चित्रण।
- सरल, सुबोध एवं सरस खड़ी बोली में काव्य की रचना।

महावीर प्रसाद द्विवेदी

महावीर प्रसाद द्विवेदी (अंग्रेजी: Mahavir Prasad Dwivedi, जन्म: 1864, मृत्यु: 21 दिसम्बर, 1938) हिन्दी गद्य साहित्य के महान् साहित्यकार, पत्रकार एवं युगविधायक हैं।

जीवन परिचय

महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1864 ई. में उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के दौलतपुर गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम रामसहाय द्विवेदी था। कहा जाता है कि उन्हें महावीर का इष्ट था, इसीलिए उन्होंने अपने पुत्र का नाम महावीर सहाय रखा।

शिक्षा

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में ही हुई। प्रधानाध्यापक ने भूल से इनका नाम महावीर प्रसाद लिख दिया था। हिन्दी साहित्य में यह भूल स्थायी बन गयी। तेरह वर्ष की अवस्था में अंग्रेजी पढ़ने के लिए यह रायबरेली के जिला स्कूल में भर्ती हुए। यहाँ संस्कृत के अभाव में इनको वैकल्पिक विषय फारसी लेना पड़ा। इन्होंने इस स्कूल में ज्यों-त्यों एक वर्ष काटा।

उसके बाद कुछ दिनों तक उन्नाव जिले के 'रनजीत पुरवा स्कूल' में और कुछ दिनों तक फतेहपुर में पढ़ने के बाद यह पिता के पास बम्बई चले गए। बम्बई में इन्होंने संस्कृत, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी का अभ्यास किया।

कार्यक्षेत्र

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की उत्कृष्ट ज्ञान-पिपासा कभी तृप्त न हुई, किन्तु जीविका के लिए इन्होंने रेलवे में नौकरी कर ली। कुछ दिनों तक नागपुर और अजमेर में कार्य करने के बाद यह पुनः बम्बई लौट आए। यहाँ पर इन्होंने तार देने की विधि सीखी और रेलवे में सिगनलर हो गए। रेलवे में विभिन्न पदों पर कार्य करने के बाद अन्ततः यह झाँसी में डिस्ट्रिक्ट सुपरिटेंडेंट के ऑफिस में चीफ क्लर्क हो गए। पाँच वर्ष बाद उच्चाधिकारी से न पटने के कारण इन्होंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया। इनकी साहित्य साधना का क्रम सरकारी नौकरी के नीरस वातावरण में भी चल रहा था और इस अवधि में इनके संस्कृत ग्रन्थों के कई अनुवाद और कुछ आलोचनाएँ प्रकाश में आ चुकी थीं। सन् 1903 ई. में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' का सम्पादन स्वीकार किया। 'सरस्वती' सम्पादक के रूप में इन्होंने हिन्दी के उत्थान के लिए जो कुछ किया, उस पर कोई साहित्य गर्व कर सकता है। 1920 ई. तक गुरुतर दायित्व इन्होंने निष्ठापूर्वक निभाया। 'सरस्वती' से अलग होने पर जीवन के अन्तिम अठारह वर्ष इन्होंने गाँव के नीरस वातावरण में व्यतीत किए। ये वर्ष बड़ी कठिनाई में बीते।

व्यक्तित्त्व

महावीर प्रसाद द्विवेदी के कृतित्त्व से अधिक महिमामय उनका व्यक्तित्त्व है। आस्तिकता, कर्त्तव्यपरायणता, न्यायनिष्ठा, आत्मसंयम, परहित-कातरता और लोक-संग्रह भारतीय नैतिकता के शाश्वत विधान हैं। यह नैतिकता के मूर्तिमान प्रतीक थे। इनके विचारों और कथनों के पीछे इनके व्यक्तित्त्व की गरिमा भी कार्य करती थी। वह युग ही नैतिक मूल्यों के आग्रह का था। साहित्य के क्षेत्र में सुधारवादी प्रवृत्तियों का प्रवेश नैतिक दृष्टिकोण की प्रधानता के कारण ही हो रहा था। भाषा-परिमार्जन के मूलों में भी यही दृष्टिकोण कार्य कर रहा था। इनका कृतित्त्व श्लाय है तो इनका व्यक्तित्त्व पूज्य। प्राचीनता की उपेक्षा न करते हुए भी इन्होंने नवीनता को प्रश्रय दिया था। 'भारत-भारती' के प्रकाशन पर इन्होंने लिखा था- "यह काव्य वर्तमान हिन्दी-साहित्य में युगान्तर उत्पन्न करने वाला है"। इस

युगान्तर मूल में इनका ही व्यक्तित्त्व कार्य कर रहा था। द्विवेदी जी ने अनन्त आकाश और अनन्त पृथ्वी के सभी उपकरणों को काव्य-विषय घोषित करके इसी युगान्तर की सूचना दी थी। यह नवयुग के विधायक आचार्य थे। उस युग का बड़े से बड़ा साहित्यकार आपके प्रसाद की ही कामना करता था। सन् 1903 ई. से 1925 ई. तक (लगभग 22 वर्ष की अवधि में) द्विवेदी जी ने हिन्दी-साहित्य का नेतृत्व किया।

आलोचक

आलोचक के रूप में 'रीति' के स्थान पर इन्होंने उपादेयता, लोक-हित, उद्देश्य की गम्भीरता, शैली की नवीनता और निर्दोषिता को काव्योत्कृष्टता की कसौटी के रूप में प्रतिष्ठित किया। इनकी आलोचनाओं से लोक-रुचि का परिष्कार हुआ। नूतन काव्य विवेक जागृत हुआ। सम्पादक के रूप में इन्होंने निरन्तर पाठकों का हित चिन्तन किया। इन्होंने नवीन लेखकों और कवियों को प्रोत्साहित किया। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त इन्हें अपना गुरु मानते हैं। गुप्त जी का कहना है कि "मेरी उल्टी-सीधी प्रारम्भिक रचनाओं का पूर्ण शोधन करके उन्हें 'सरस्वती' में प्रकाशित करना और पत्र द्वारा मेरे उत्साह को बढ़ाना द्विवेदी महाराज का ही काम था"। इन्होंने पत्रिका को निर्दोष, पूर्ण, सरस, उपयोगी और नियमित बनाया। अनुवादक के रूप में इन्होंने भाषा की प्रांजलता और मूल भाषा की रक्षा को सर्वाधिक महत्त्व दिया।

मूल्यांकन

महावीर प्रसाद द्विवेदी

हिन्दी साहित्य में महावीर प्रसाद द्विवेदी का मूल्यांकन तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में ही किया जा सकता है। वह समय हिन्दी के कलात्मक विकास का नहीं, हिन्दी के अभावों की पूर्ति का था। इन्होंने ज्ञान के विविध क्षेत्रों- इतिहास, अर्थशास्त्र, विज्ञान, पुरातत्त्व, चिकित्सा, राजनीति, जीवनी आदि से सामग्री लेकर हिन्दी के अभावों की पूर्ति की। हिन्दी गद्य को माँजने-सँवारने और परिष्कृत करने में यह आजीवन संलग्न रहे। यहाँ तक की इन्होंने अपना भी परिष्कार किया। हिन्दी गद्य और पद्य की भाषा एक करने के लिए (खड़ीबोली के प्रचार-प्रसार के लिए) प्रबल आन्दोलन किया। हिन्दी गद्य की अनेक विधाओं

को समुन्नत किया। इसके लिए इनको अंग्रेजी, मराठी, गुजराती और बंगला आदि भाषाओं में प्रकाशित श्रेष्ठ कृतियों का बराबर अनुशीलन करना पड़ता था। निबन्धकार, आलोचक, अनुवादक और सम्पादक के रूप में इन्होंने अपना पथ स्वयं प्रशस्त किया था। निबन्धकार द्विवेदी के सामने सदैव पाठकों के ज्ञान-वर्द्धन का दृष्टिकोण प्रधान रहा, इसीलिए विषय-वैविध्य, सरलता और उपदेशात्मकता उनके निबन्धों की प्रमुख विशेषताएँ बन गयीं।

कृतियाँ

महावीर प्रसाद द्विवेदी की साहित्यिक देन कम नहीं है। इनके मौलिक और अनुदित पद्य और गद्य ग्रन्थों की कुल संख्या अस्सी से ऊपर है। गद्य में इनकी 14 अनुदित और 50 मौलिक कृतियाँ प्राप्त हैं। कविता की ओर महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की विशेष प्रवृत्ति नहीं थी। इस क्षेत्र में इनकी अनुदित कृतियाँ, जिनकी संख्या आठ है, अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। मौलिक कृतियाँ कुल 9 हैं, जिन्हें स्वयं तुकबन्दी कहा है। इनकी समस्त कृतियों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित रूप में उपस्थित किया जा सकता है:-

पद्य (अनुवाद)

विनय विनोद 1889 ई.- भृतहरि के 'वैराग्य शतक' का दोहों में अनुवाद।

विहार वाटिका 1890 ई.- गीत गोविन्द का भावानुवाद।

स्नेह माला 1890 ई.- भृतहरि के 'शृंगार शतक' का दोहों में अनुवाद।

श्री महिम्न स्तोत्र 1891 ई.- संस्कृत के 'महिम्न स्तोत्र का संस्कृत वृत्तों में अनुवाद।

गंगा लहरी 1891 ई.- पण्डितराज जगन्नाथ की 'गंगा लहरी' का सवैयों में अनुवाद।

ऋतुतरंगिणी 1891 ई.- कालिदास के 'ऋतुसंहार' का छायानुवाद।

सोहागरात अप्रकाशित- बाइरन के 'ब्राइडल नाइट' का छायानुवाद।

कुमारसम्भवसार 1902 ई.- कालिदास के 'कुमार सम्भवम्' के प्रथम पाँच सर्गों का सारांश।

गद्य (अनुवाद)

भामिनी-विलास 1891 ई.- पण्डितराज जगन्नाथ के 'भामिनी विलास' का अनुवाद।

अमृत लहरी 1896 ई.- पण्डितराज जगन्नाथ के 'यमुना स्तोत्र' का भावानुवाद।

बेकन-विचार-रत्नावली 1901 ई.- बेकन के प्रसिद्ध निबन्धों का अनुवाद।

शिक्षा 1906 ई.- हर्बर्ट स्पेंसर के 'एज्युकेशन' का अनुवाद।

'स्वाधीनता' 1907 ई.- जॉन स्टुअर्ट मिल के 'ऑन लिबर्टी' का अनुवाद।

जल चिकित्सा 1907 ई.- जर्मन लेखक लुई कोने की जर्मन पुस्तक के अंग्रेजी अनुवाद का अनुवाद।

हिन्दी महाभारत 1908 ई.-'महाभारत' की कथा का हिन्दी रूपान्तर।

रघुवंश 1912 ई.- 'रघुवंश' महाकाव्य का भाषानुवाद।

वेणी-संहार 1913 ई.- संस्कृत कवि भट्टनारायण के 'वेणीसंहार' नाटक का अनुवाद।

कुमार सम्भव 1915 ई.- कालिदास के 'कुमार सम्भव' का अनुवाद।

मेघदूत 1917 ई.- कालिदास के 'मेघदूत' का अनुवाद।

किरातार्जुनीय 1917 ई.- भारवि के 'किरातार्जुनीयम्' का अनुवाद।

प्राचीन पण्डित और कवि 1918 ई.- अन्य भाषाओं के लेखों के आधार पर प्राचीन कवियों और पण्डितों का परिचय।

आख्यायिका सप्तक 1927 ई.- अन्य भाषाओं की चुनी हुई सात आख्यायिकाओं का छायानुवाद।

मौलिक पद्य रचनाएँ

देवी स्तुति-शतक 1892 ई.

कान्यकुब्जावलीव्रतम 1898 ई.

समाचार पत्र सम्पादन स्तवरू 1898 ई.

नागरी 1900 ई.

कान्यकुब्ज- अबला-विलाप 1907 ई.

काव्य मंजूषा 1903 ई.

सुमन 1923 ई.

द्विवेदी काव्य-माला 1940 ई.

कविता कलाप 1909 ई.।

मौलिक गद्य रचनाएँ

तरुणोपदेश (अप्रकाशित)
हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना 1901 ई.
वैज्ञानिक कोश 1906 ई.,
'नाट्यशास्त्र' 1912 ई.
विक्रमांकदेवचरितचर्चा 1907 ई.
हिन्दी भाषा की उत्पत्ति 1907 ई.
सम्पत्तिशास्त्र 1907 ई.
कौटिल्य कुठार 1907 ई.
कालिदास की निरकुंशता 1912 ई.
वनिता-विलाप 1918 ई.
औद्योगिकी 1920 ई.
रसज्ञ रंजन 1920 ई.
कालिदास और उनकी कविता 1920 ई.
सुकवि संकीर्तन 1924 ई.
अतीत स्मृति 1924 ई.
साहित्य सन्दर्भ 1928 ई.
अद्‌भुत आलाप 1924 ई.
महिलामोद 1925 ई.
आध्यात्मिकी 1928 ई.
वैचित्र्य चित्रण 1926 ई.
साहित्यालाप 1926 ई.
विज्ञ विनोद 1926 ई.
कोविद कीर्तन 1928 ई.
विदेशी विद्वान् 1928 ई.
प्राचीन चिह्न 1929 ई.
चरित चर्या 1930 ई.
पुरावृत्त 1933 ई.
दृश्य दर्शन 1928 ई.
आलोचनांजलि 1928 ई.
चरित्र चित्रण 1929 ई.

पुरातत्त्व प्रसंग 1929 ई.
साहित्य सीकर 1930 ई.
विज्ञान वार्ता 1930 ई.
वाग्विलास 1930 ई.
संकलन 1931 ई.
विचार-विमर्श 1931 ई.

उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त तेरहवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन (1923 ई.), काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा किये गये अभिनन्दन (1933 ई. और प्रयाग में आयोजित 'द्विवेदी मेला', 1933 ई.) के अवसर पर इन्होंने जो भाषण दिये थे, उन्हें भी पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया गया है। आपकी बनायी हुई छः बालोपयोगी स्कूली पुस्तकें भी प्रकाशित हैं।

मृत्यु

21 दिसम्बर सन् 1938 ई. को रायबरेली में महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का स्वर्गवास हो गया। हिन्दी साहित्य का आचार्य पीठ अनिश्चितकाल के लिए सूना हो गया।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (अंग्रेजी:Ayodhyasingh Upadhyay 'Hari Oudh', जन्म- 15 अप्रैल, 1865, मृत्यु- 16 मार्च, 1947) का नाम खड़ी बोली को काव्य भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने वाले कवियों में बहुत आदर से लिया जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में 1890 ई. के आस-पास अयोध्यासिंह उपाध्याय ने साहित्य सेवा के क्षेत्र में पदार्पण किया।

परिवार और शिक्षा

अयोध्या सिंह उपाध्याय का जन्म जिला आजमगढ़ के निजामाबाद नामक स्थान में सन् 1865 ई. में हुआ था। हरिऔध के पिता का नाम भोलासिंह और माता का नाम रुक्मणि देवी था। अस्वस्थता के कारण हरिऔध जी का विद्यालय में पठन-पाठन न हो सका, अतः इन्होंने घर पर ही उर्दू, संस्कृत, फारसी, बांग्ला एवं अंग्रेजी का अध्ययन किया। 1883 में ये निजामाबाद के मिडिल स्कूल के हेडमास्टर हो गए। 1890 में कानूनगो की परीक्षा पास करने के बाद आप कानून

गो बन गए। सन् 1923 में पद से अवकाश लेने पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक बने।

कार्यक्षेत्र

खड़ी बोली के प्रथम महाकाव्यकार हरिऔध जी का सृजनकाल हिन्दी के तीन युगों में विस्तृत है–

- भारतेन्दु युग
- द्विवेदी युग
- छायावादी युग

इसीलिये हिन्दी कविता के विकास में 'हरिऔध' जी की भूमिका नींव के पत्थर के समान है। उन्होंने संस्कृत छंदों का हिन्दी में सफल प्रयोग किया है। 'प्रियप्रवास' की रचना संस्कृत वर्णवृत्त में करके जहाँ 'हरिऔध' जी ने खड़ी बोली को पहला महाकाव्य दिया, वहीं आम हिन्दुस्तानी बोलचाल में 'चोखे चौपदे', तथा 'चुभते चौपदे' रचकर उर्दू जुबान की मुहावरेदारी की शक्ति भी रेखांकित की।

सर्वाधिक प्रसिद्धि

हरिऔध को कवि रूप में सर्वाधिक प्रसिद्धि उनके प्रबन्ध काव्य 'प्रियप्रवास' के कारण मिली। 'प्रियप्रवास' की रचना से पूर्व की काव्य कृतियाँ कविता की दिशा में उनके प्रयोग की परिचायिका हैं। इन कृतियों में प्रेम और शृंगार के विभिन्न पक्षों को लेकर काव्य रचना के लिए किए गए अभ्यास की झलक मिलती है। 'प्रियप्रवास' को इसी क्रम में लेना चाहिए। 'प्रियप्रवास' के बाद की कृतियों में 'चोखे चौपदे' तथा 'वैदेही बनवास' उल्लेखनीय हैं। 'चोखे चौपदे' लोकभाषा के प्रयोग की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। 'प्रियप्रवास' की रचना संस्कृत की कोमल कान्त पदावली में हुई है और उसमें तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। 'चोखे चौपदे' में मुहावरों के बाहुल्य तथा लोकभाषा के समावेश द्वारा कवि ने यह सिद्ध कर दिया है कि वह अपनी सीधी सादी जबान को भूला नहीं है। 'वैदेही बनवास' की रचना द्वारा एक और प्रबन्ध सृष्टि का प्रयत्न किया गया है। आकार की दृष्टि से यह ग्रन्थ छोटा नहीं है, किन्तु इसमें 'प्रियप्रवास' जैसी ताजगी और काव्यत्व का अभाव है।

प्रियप्रवास

मुख्य लेख–प्रियप्रवास –अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

'प्रियप्रवास' एक सशक्त विप्रलम्भ काव्य है। कवि ने अपनी इस कृति में कृष्ण कथा के एक मार्मिक पक्ष को किंचित् मौलिकता और एक नूतन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। श्रीकृष्ण के मथुरा–गमन के उपरान्त ब्रजवासियों के विरहसन्तप्त जीवन तथा मनोभावों का हृदयस्पर्शी अंकन प्रस्तुत करने में उन्हें बहुत ही सफलता प्राप्त हुई है। संस्कृत की समस्त तथा कोमल–कान्त पदावली से अलंकृत एवं संस्कृत वर्ण वृत्तों में लिखित यह रचना खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। रामचन्द्र शुक्ल ने इसे आकार की दृष्टि से बड़ा कहा किन्तु उन्हें इस कृति में समुचित कथानक का अभाव प्रतीत हुआ और इसी अभाव का उल्लेख करते हुए उन्होंने इसके प्रबन्धत्व एवं महाकाव्यत्व को अस्वीकार कर दिया है। शुक्ल जी से सरलतापूर्वक सहमत नहीं हुआ जा सकता। प्रबन्ध काव्य सम्बन्धी कुछ थोड़ी–सी रूढ़ियों को छोड़ दिया जाए तो इस काव्य में प्रबन्धत्व का दर्शन आसानी से किया जा सकता है। यह सच है कि ऊपर से देखने पर इसका कथानक प्रवास प्रसंग तक ही सीमित है, किन्तु 'हरिऔध' ने अपने कल्पना कौशल के द्वारा, इसी सीमित क्षेत्र में श्री कृष्ण के जीवन की व्यापक झाकियाँ प्रस्तुत करने के अवसर ढूँढ निकाले हैं। इस काव्य की एक और विशेषता यह है कि इसके नायक श्रीकृष्ण शुद्ध मानव रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। वे लोकसंरक्षण तथा विश्वकल्याण की भावना से परिपूर्ण मनुष्य अधिक हैं और अवतार अथवा ईश्वर नाम मात्र के।

अन्य साहित्यिक कृतित्त्व

हरिऔध के अन्य साहित्यिक कृतित्त्व में उनके ब्रजभाषा काव्य संग्रह 'रसकलश' को विस्मृत नहीं किया जा सकता है। इसमें उनकी आरम्भिक स्फुट कविताएँ संकलित हैं। ये कविताएँ श्रृंगारिक हैं और काव्य–सिद्धान्त निरूपण की दृष्टि से लिखी गयी हैं। इन्होंने गद्य और आलोचना की ओर भी कुछ–कुछ ध्यान दिया था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय हिन्दी के अवैतनिक अध्यापक पद पर कार्य करते हुए इन्होंने 'कबीर वचनावली' का सम्पादन किया। 'वचनावली' की भूमिका में कबीर पर लिखे गए लेखों से इनकी आलोचना दृष्टि का पता चलता है। इन्होंने 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' शीर्षक एक इतिहास ग्रन्थ भी प्रस्तुत किया, जो बहुत ही लोकप्रिय हुआ।

Blockquote-open-gif एक अमेरिकन 'एनसाइक्लोपीडिया' ने इनका परिचय प्रकाशित करते हुए इन्हें विश्व के साहित्य सेवियों की पंक्ति प्रदान की। खड़ी बोली काव्य के विकास में इनका योगदान निश्चित रूप से बहुत महत्त्वपूर्ण है। यदि 'प्रियप्रवास' खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है तो 'हरिऔध' खड़ी बोली के प्रथम महाकवि।

विरासत

हरिऔध जी ने गद्य और पद्य दोनों ही क्षेत्रों में हिन्दी की सेवा की। वे द्विवेदी युग के प्रमुख कवि है। उन्होंने सर्वप्रथम खड़ी बोली में काव्य-रचना करके यह सिद्ध कर दिया कि उसमें भी ब्रजभाषा के समान खड़ी बोली की कविता में भी सरसता और मधुरता आ सकती है। हरिऔध जी में एक श्रेष्ठ कवि के समस्त गुण विद्यमान थे। 'उनका प्रिय प्रवास' महाकाव्य अपनी काव्यगत विशेषताओं के कारण हिन्दी महाकाव्यों में 'माइल-स्टोन' माना जाता है। श्री सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के शब्दों में हरिऔध जी का महत्त्व और अधिक स्पष्ट हो जाता है- इनकी यह एक सबसे बड़ी विशेषता है कि ये हिन्दी के सार्वभौम कवि हैं। खड़ी बोली, उर्दू के मुहावरे, ब्रजभाषा, कठिन-सरल सब प्रकार की कविता की रचना कर सकते हैं।

कृतियाँ

'हरिऔध' जी आरम्भ में नाटक तथा उपन्यास लेखन की ओर आकर्षित हुए। 'हरिऔध' जी की दो नाट्य कृतियाँ 'प्रद्युम्न विजय' तथा 'रुक्मणी परिणय' क्रमशः 1893 ई. तथा 1894 ई. में प्रकाशित हुई। 1894 ई. में ही इनका प्रथम उपन्यास 'प्रेमकान्ता' भी प्रकाशन में आया। बाद में दो अन्य औपन्यासिक कृतियाँ 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' (1899 ई.) और 'अधखिला फूल' (1907 ई.) नाम से प्रकाशित हुई। ये नाटक तथा उपन्यास साहित्य के उनके प्रारम्भिक प्रयास होने की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इन कृतियों में नाट्यकला अथवा उपन्यासकला की विशेषताएँ ढूँढना तर्कसंगत नहीं हैं। उपाध्याय जी की प्रतिभा का विकास वस्तुतः कवि रूप में हुआ। खड़ी बोली का प्रथम महाकवि होने का श्रेय 'हरिऔध' जी को है। 'हरिऔध' के उपनाम से इन्होंने अनेक छोटे-बड़े काव्यों की सृष्टि की, जिनकी संख्या पन्द्रह से ऊपर है-

सन्	काव्य
1899 ई.	'रसिक रहस्य'
1900	'प्रेमाम्बुवारिधि', 'प्रेम प्रपंच-
1901 ई.	'प्रमाम्बु प्रश्रवण', 'प्रेमाम्बु प्रवाह'
1904 ई.	'प्रेम पुष्पहार'
1906 ई.	'उद्बोधन'
1909 ई.	'काव्योपवन'
1914 ई.	'प्रियप्रवास'
1916 ई.	'कर्मवीर'
1917 ई.	'ऋतु मुकुर'
1925 ई.	'पद्मप्रसून'
1927 ई.	'पद्मप्रमोद'
1932 ई.	'चोखेचौपदे'
1940 ई.	'वैदेही बनवास'
	'चुभते चौपदे'
	'रसकलश'

खड़ी बोली काव्य-रचना

अयोध्या सिंह उपाध्याय खड़ी बोली काव्य के निर्माताओं में आते हैं। इन्होंने अपने कवि कर्म का शुभारम्भ ब्रजभाषा से किया। 'रसकलश' की कविताओं से पता चलता है कि इस भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था, किन्तु इन्होंने समय की गति शीघ्र ही पहचान ली और खड़ी बोली काव्य-रचना करने लगे। काव्य भाषा के रूप में इन्होंने खड़ी बोली का परिमार्जन और संस्कार किया। 'प्रियप्रवास' की रचना करके इन्होंने संस्कृत गर्भित कोमल-कान्तपदावली संयुक्त भाषा का अभिजात रूप प्रस्तुत किया। 'चोखे चौपदे' तथा 'चुभते चौपदे' द्वारा खड़ी बोली के मुहावरा सौन्दर्य एवं उसके लौकिक स्वरूप की झाँकी दी। छन्दों की दृष्टि से इन्होंने संस्कृत, हिन्दी तथा उर्दू सभी प्रकार के छन्दों का धड़ल्ले से प्रयोग किया। ये प्रतिभा सम्पन्न मानववादी कवि थे। इन्होंने 'प्रियप्रवास' में श्रीकृष्ण के जिस मानवीय स्वरूप की प्रतिष्ठा की है, उससे इनके आधुनिक दृष्टिकोण का पता चलता है। इनके श्रीकृष्ण 'रसराज' या 'नटनागर' होने की अपेक्षा लोक-रक्षक नेता हैं।

रचनाएँ

महाकाव्य
प्रियप्रवास
वैदेही वनवास
मुक्तक काव्य
चोखे चौपदे
चुभते चौपदे
कल्पलता
बोलचाल
पारिजात
हरिऔध सतसई।

उपन्यास

ठेठ हिन्दी का ठाठ
अधखिला फूल
आलोचना
कबीर वचनावली
साहित्य सन्दर्भ
हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास।

नाटक

रुक्मणी परिणय
प्रद्युम्न विजय व्यायोग

सम्मान

जीवनकाल में इन्हें यथोचित् सम्मान मिला था। 1924 ई. में इन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान पद को सुशोभित किया था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने इनकी साहित्य सेवाओं का मूल्यांकन करते हुए इन्हें हिन्दी के अवैतनिक अध्यापक का पद प्रदान किया। एक अमेरिकन 'एनसाइक्लोपीडिया' ने इनका परिचय प्रकाशित करते हुए इन्हें विश्व के साहित्य सेवियों की पंक्ति प्रदान की। खड़ी बोली काव्य के विकास में इनका योगदान निश्चित रूप से बहुत महत्त्वपूर्ण

है। यदि 'प्रियप्रवास' खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है तो 'हरिऔध' खड़ी बोली के प्रथम महाकवि।

मृत्यु

16 मार्च, 1947 को अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने इस दुनिया से लगभग 76 वर्ष की आयु में विदा ली।

कहें क्या बात आंखों की, चाल चलती हैं मनमानी
सदा पानी में डूबी रह, नहीं रह सकती हैं पानी
लगन है रोग या जलन, किसी को कब यह बतलाया
जल भरा रहता है उनमें, पर उन्हें प्यासी ही पाया।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (अंग्रेजी: Jagannathdas Ratnakar, जन्म- 1866 ई., काशी, उत्तर प्रदेशय मृत्यु- 22 जून, 1932 ई.) भारत के प्रसिद्ध कवियों में से एक थे। उन्हें आधुनिक युग के श्रेष्ठ ब्रजभाषा के कवियों में गिना जाता है। प्राचीन संस्कृति, मध्यकालीन हिन्दी काव्य, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, हिन्दी, आयुर्वेद, संगीत, ज्योतिष तथा दर्शनशास्त्र इन सभी की अच्छी जानकारी जगन्नाथदास जी को थी। इन्होंने प्रचुर साहित्य सेवा की थी। ब्रजभाषा काव्यधारा के अंतिम सर्वश्रेष्ठ कवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' आधुनिक हिंदी साहित्य में अनुभूतियों के सशक्त चित्रकार, ब्रजभाषा के समर्थ कवि और एक अद्वितीय भाष्यकार के रूप में विख्यात् हैं। उन्होंने खड़ीबोली के युग में जीवित व्यक्ति की तरह हृदय के प्रत्येक स्पंदन को महसूस करने वाली ब्रजभाषा का आदर्श खड़ा किया, जिसके हर शब्द की अपनी गति और लय है।

जीवन परिचय

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म संवत् 1923 (1866 ई.) में भाद्रपद शुक्ल पक्ष पंचमी को काशी (वर्तमान बनारस) के शिवाला घाट मोहल्ले में हुआ था। इनके पिता पुरुषोत्तमदास दिल्ली वाले अग्रवाल वैश्य थे और पूर्वज पानीपत के रहने वाले थे, जिनका मुगल दरबारों में बड़ा सम्मान था। लेकिन परिस्थितिवश उन्हें काशी आकर रहना पड़ा। पुरुषोत्तमदास फारसी भाषा के अच्छे विद्वान थे और हिन्दी फारसी कवियों का बड़ा सम्मान करते थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र उनके मित्र थे

और इनके यहाँ बहुधा आया-जाया करते थे। रत्नाकर जी ने बाल्यावस्था में भारतेंदु हरिश्चंद्र का सत्संग भी किया था। भारतेंदु जी ने कहा भी था कि, 'किसी दिन यह बालक हिन्दी की शोभा वृद्धि करेगा'।

शिक्षा

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के रहन-सहन में राजसी ठाठ-बाट था। इन्हें हुक्का, इत्र, पान, घुड़सवारी आदि का बहुत शौक था। हिन्दी का संस्कार उन्हें अपने हिन्दी-प्रेमी पिता से मिला था। स्कूली शिक्षा में उन्होंने कई भाषाओं का ज्ञान अर्जित किया। काशी के क्वींस कॉलेज से रत्नाकर जी ने सन् 1891 ई. में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की, जिसमें अंग्रेजी के साथ दूसरी भाषा फारसी भी थी। ये फारसी में एम.ए. की परीक्षा देना चाहते थे, पर कुछ कारणों से न दे सके।

जीविकोपार्जन

जगन्नाथदास जी ने 'जकी' उपनाम से फारसी में कविताएँ लिखना प्रारंभ किया। इस सम्बन्ध में इनके उस्ताद मुहम्मद हसन फायज थे। जब रत्नाकर जी जीविकोपार्जन की तरफ मुड़े तो वे अबागढ़ के खजाने के निरीक्षक नियुक्त हुए। सन् 1902 में वे अयोध्या नरेश के निजी सचिव नियुक्त हुए, किन्तु सन् 1906 में महाराजा का स्वर्गवास हो गया। लेकिन इनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर महारानी जगदंबा देवी ने इन्हें अपना निजी सेक्रेटरी नियुक्त किया तथा मृत्युपर्यंत रत्नाकर जी इस पद पर रहे। अयोध्या में रहते हुए जगन्नाथदास रत्नाकर की कार्य-प्रतिभा समय-समय पर विकास के अवसर पाती रही। महारानी जगदंबा देवी की कृपा से उनकी काव्य कृति 'गंगावतरण' सामने आई। इन्होंने हिन्दी काव्य का अभ्यास प्रारंभ किया और ब्रजभाषा में काव्य रचना की।

लेखन कार्य

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' हिन्दी लेखन की ओर उस समय प्रवृत्त हुए, जब खड़ी बोली हिन्दी को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठापित करने का व्यापक अभियान चल रहा था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, पं. नाथूराम शंकर शर्मा जैसे लोग खड़ी बोली हिन्दी को भारी समर्थन दे रहे थे, लेकिन काव्य भाषा की बदलती लहर रत्नाकर जी के ब्रजभाषा-प्रेम को अपदस्थ नहीं कर सकी। वे ब्रजभाषा का आँचल छोड़कर खड़ी बोली के पाले में जाने को

किसी भी तरह तैयार नहीं हुए। जब उनके समकालीन खड़ी बोली के परिष्कार और परिमार्जन में संलग्न थे, तब वे ब्रजभाषा की त्रुटियों का परिष्कार कर साहित्यिक ब्रजभाषा के रूप की साज-सँवार कर रहे थे। उन्होंने ब्रजभाषा का नए शब्दों, मुहावरों से ऐसा श्रृंगार किया कि वे सूरदास, पद्माकर और घनानंद की ब्रजभाषा से अलग केवल उनकी ब्रजभाषा बन गई, जिसमें उर्दू और फारसी की रवानगी, संस्कृत का आभिजात्य और लोकभाषा की शक्ति समा गई। जिसके एक-एक वर्ण में एक-एक शब्द में और एक-एक पर्याय में भावलोक को चित्रित करने की अदम्य क्षमता है।

कवित्त

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की संवेदनशीलता ने बचपन में ही कविता में ढलना शुरू कर दिया था। विद्यार्थी जीवन में ही उन्होंने उर्दू व फारसी के साथ हिन्दी में कवित्त लिखना शुरू कर दिया था। वे 'जकी' उपनाम से उर्दू शायरी करते थे। बाद में उन्होंने ब्रजभाषा काव्य को ही अपना क्षेत्र बना लिया। काव्य सृजन के साथ-साथ उन्होंने अपनी पठन रुचि को भी बराबर विकसित किया। वे साहित्य, दर्शन, अध्यात्म, पुराण-सब पढ़ डालते। रत्नाकर जी का भावों का वैभव है। उनके काव्य-विषय विशुद्ध पौराणिक हैं। आपने इन कथानकों में नवीनता भरकर उन्हें नवीन रूप प्रदान किया। उन्होंने प्रबंध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्य लिखे। वे विशेषत: श्रृंगार के कवि हैं, परन्तु इनके श्रृंगार में न तो रीति काल की अफीमची मादकता है और न नायिका भेद की बारीकी ही है। इनका श्रृंगार भक्ति-परक होकर मर्यादित रूप में सामने आया। विशुद्ध श्रृंगार में भी हृदय की अनुभूतिपूर्ण भावनाओं ही का तीव्र वेग है। राधा-कृष्ण के हृदय में स्वाभाविक प्रेम के उदय पर रत्नाकर जी की कलम का एक दृष्टव्य-

आवन लगी है दिन द्वैक ते हमारे धाम,
रहे बिनु काम काज आई अरुझाई है।
कहैं रत्नाकर खिलौननी सम्हारि राखि,
बार-बार जननी चितावत कन्हाई है।
देखी सुनु ग्वारिनी किती ब्रजवासिन पै,
राधा सी न और अभिहारिन लखाई है।
हेरत ही हेरत हरयौ तौ है हमारो कछु,
काहि धौं हिरानी पै न परत जनाई है।

विरह, विरहिरिनों के हृदय को विदीर्ण कर देता है। विरह-विपत्ति का झेलना अत्यंत कठिन है। इसी की अनुभूति पूर्ण अवस्था का एक उदाहरण निम्नलिखित है-

पीर सों धीर धरावत वीर, कटाक्ष हूँ कुंतल सेल नहीं है।
ज्वाल न याकी मिटे रत्नाकर, नेह कछू तिल तेल नहीं है।
जानत अंग जो झेलत हैं, यह रंग गुलाल की झेल नहीं है।
थामे थमें न बहें अंसुवा, यह रोयबो है, हंसी-खेल नहीं है।

श्रृंगार रस के पश्चात् जगन्नाथदास 'रत्नाकर' जी के काव्य में वीर रस को प्रमुख स्थान मिला है। करुण रस की सुन्दर व्यंजना 'हरिश्चंद्र' में हुई है। इसके अतिरिक्त वीभत्स तथा वात्सल्य आदि रसों का यथास्थान सफलता से चित्रण हुआ है। रत्नाकर जी को भावों के चित्रण में विशेष सफलता मिली है। क्रोध, हर्ष, उत्साह, शोक, प्रेम, घृणा आदि मानवीय व्यापारों की अभिव्यंजना रत्नाकर जी ने बड़ी सफलता से की है। आधुनिक युग के होते हुए भी रत्नाकर जी ने भक्ति काल एवं रीति काल के आदर्शों को अपनाया। इनके काव्य में भक्ति कवियों के भाव की सी भावुकता, रसमग्नता तथा रीति कालीन कवियों जैसा शब्द-कौशल तथा चमत्कार प्रियता मिलती है। इनके काव्य पर आधुनिक युग के बुद्धिवाद का भी प्रभाव है। इनकी 'उद्धवशतक', गंगावतरण', हरिश्चंद्र' आदि रचनायें प्राचीन युग का उच्चादर्श उपस्थित करती हैं।

भाषा-शैली

रत्नाकर जी की काव्य भाषा नवीनता से परिपूर्ण है। उन्होंने ब्रजभाषा को संयत और परिष्कृत रूप प्रदान किया है। ब्रजभाषा के अप्रचलित प्रयोगों को उन्होंने सर्वथा छोड़ दिया। इस प्रकार ब्रजभाषा को खड़ी बोली के समान प्रतिष्ठित करने का उनका सराहनीय प्रयास रहा। उनकी शब्द योजना सर्वथा दोष मुक्त है। भाषा क्लिष्ट भावों की चेरी बन कर चलती है। इसमें इतनी सरलता और स्वाभाविकता है कि भावों को समझने में कठिनाई नहीं पड़ती। भाषा में ओज और माधुर्य गुण मिलता है। इसमें कहीं भी शिथिलता नहीं है। अनुप्रास योजना भाषा को स्वाभाविकता प्रदान करती है। रत्नाकर जी की कविता में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग खुलकर हुआ है, परन्तु इससे उनकी भाषा में कृत्रिमता और शिथिलता नहीं आने पायी। साहित्यिक स्वरूप में घनानंद की भाषा ही रत्नाकर जी की भाषा की समता कर सकती है। रत्नाकर जी को 'आधुनिक ब्रजभाषा का पद्माकर'

कहा जा सकता है। उन्होंने जिस शैली को अपनाया, उसमें मानवीय व्यापारों को सफलतापूर्वक चित्रित किया गया है। उनकी शैली में सर्वत्र ही कलात्मकता और स्वाभाविकता मिलती है।

कृतियाँ

राजनीतिक उलझनों और कचहरी के मामलों में उनके काव्य-सृजन को मनमाना विस्तार भले ही न मिल पाया हो, लेकिन व्यस्तता के बावजूद उन्होंने आधुनिक हिंदी साहित्य संपदा की वृद्धि करने वाली कृतियाँ रचीं। इनके द्वारा रचित, सम्पादित तथा प्रकाशित कृतियाँ इस प्रकार हैं-

हरिश्चंद्र (खंडकाव्य)
गंगावतरण (पुराख्यान काव्य)
उद्धवशतक (प्रबंध काव्य)
हिंडोला (मुक्तक)
कलकाशी (मुक्तक)
समालोचनादर्श (पद्यनिबंध)
श्रृंगारलहरी
गंगालहरी
विष्णुलहरी (मुक्तक)
रत्नाष्टक (मुक्तक)
वीराष्टक (मुक्तक)
प्रकीर्णक पद्यावली (मुक्तक संग्रह)।
रोला छंद के लक्षण
महाकवि बिहारीलाल की जीवनी
बिहारी सतसई संबंधी साहित्य
साहित्यिक ब्रजभाषा तथा उसके व्याकरण की सामग्री
बिहारी सतसई की टीकाएँ
बिहारी पर स्फुट लेख।
महाराज शिवाजी का एक नया पत्र
शुगंवंश का एक शिलालेख
शुंग वंश का एक नया शिलालेख
एक ऐतिहासिक पापाणाश्व की प्राप्ति

एक प्राचीन मूर्ति
समुद्रगुप्त का पाषाणाश्व
घनाक्षरी निय रत्नाकर
वर्ण
सवैया
छंद
सुधासागर (प्रथम भाग)
कविकुल कंठाभरण
दीपप्रकाश
सुंदर श्रृंगार
नृपशंमुकृत नखशिख
हम्मीर हठ
रसिक विनोद
समस्यापूर्ति (भाग 1)
हिततरंगिणी
केशवदासकृत नखशिख
सुजानसागर
बिहारी रत्नाकर
सूरसागर
'हिंडोल'
'हरिश्चंद्र'
'गंगावतरण'
'उद्धवशतक'
'कलकाशी'
'समस्यापूर्ति'
'जयप्रकाश'
'सर्वस्व'
'घनाक्षरी नियम रत्नाकर'
'गंगा विष्णु लहरी'
'रत्नाष्टक'
'वीराष्टक'
'प्रकीर्ण पदावली'।

इन्होंने अंग्रेजी कवि पोप की प्रसिद्ध रचना 'एसे ऑन क्रिटिसिज्म' का रोला छंद में अनुवाद भी किया। इन कृतियों में 'उद्धवशतक' और 'बिहारी रत्नाकर' को विशेष महत्त्व मिला। 'उद्धवशतक', 'भ्रमरगीत' परंपरा का विशिष्ट काव्य बना तो 'बिहारी रत्नाकर' 'बिहारी सतसई' पर लिखी गई कविताओं में सर्वश्रेष्ठ माना गया। इनके अतिरिक्त 'हमीर हट', 'हित तरंगिणी', 'कविकुल कण्ठाभरण' नामक कृतियों का भी सम्पादन इन्होंने किया। 'साहित्य सुधा' नामक पत्र का सम्पादन भी आपने किया था। इसके साथ ही जगन्नाथदास 'रत्नाकर' बहुत अधिक परिश्रम और अपना बहुत-सा धन व्यय कर 'सूरसागर' का सम्पादन भी कर रहे थे, पर उसका केवल तीन चतुर्थांश ही पूर्ण कर सके। बहुत अधिक संख्या में इनकी स्फुट रचनाएँ भी मिलती हैं। 'नागरी प्रचारिणी सभा' काशी ने इन स्फुट कविताओं व उक्त सभी काव्य कृतियों का एक सुन्दर संग्रह 'रत्नाकर' नामक प्रकाशित किया है।

हिन्दी साहित्य निर्माता

हिन्दी साहित्य में रत्नाकर जी एक निर्माता के रूप में स्मरण करने योग्य हैं। ये नवीन और प्राचीन को साथ लेकर चले हैं। इन्होंने आधुनिक हिन्दी साहित्य के तीनों काल देखे थे, पर किसी भी युग विशेष से प्रभावित नहीं हो सके। द्विवेदी युग में होने वाली खड़ी बोली के आन्दोलन ने इनको तनिक भी आकर्षित नहीं किया और ये ब्रजभाषा की उपासना-अराधना में लगे रहे। रत्नाकर जी हिन्दी के स्वर्ण-युग (मध्य युग) के पुजारी थे।

साहित्यिक विशेषताएँ

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने भक्ति काल की भाव प्रवणता और रीति काल की शृंगारिकता को अपनी कविता के नए बाने में सजाया। उन्होंने भक्ति भावना से समन्वित कविताएँ भी लिखीं, वीरों के वृत्तांत भी लिखे, नीति को भी कविता में उताराय लेकिन उनका मन मूलतः शृंगारिकता की अभिव्यक्ति में ही अधिक रमा है और इस शृंगारिकता की खूबी यह रही कि इसके अंतर्गत भक्ति, स्नेह, प्रेम, वात्सल्य सभी का समाहार हो गया। उनका ग्रंथ 'उद्धवशतक' मानव मन की अद्‌भुत चित्रशाला बनकर सामने आया। शृंगार रस के निरूपण में उनका कोई भी समकालीन उनके समक्ष खड़ा नहीं किया जा सकता। शृंगार के दोनों पक्षों के निरूपण में जगह-जगह तीव्र भावावेश के क्षणों में ऐसा लगता

है मानो कवि स्वयं ही द्रविभूत होकर कविता बन उपस्थित हुआ हो। भाव-चित्रों के इस शिल्पी ने 'उद्धवशतक' में अनुभवों की योजना, मूक मौन व्यजंना और रसासिक्त मर्मस्पर्शी सूक्तियों का अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया है। इस कृति का ताना-बाना भावुकता के अतिरेक से पैदा होने वाले कृतिम उद्वेग से नहीं, बल्कि हृदय की सच्ची पुकार से बुना गया है, जहाँ विरहणी ब्रजांगनाओं के आँसुओं में प्रेम की स्निग्धता, अनुभूति की आर्द्रता उनके विश्वास में संयम की धार भी है।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने अपनी कृतियों से सामर्थ्य का झंडा ऊँचा कर दिखाया है, जिसमें शब्द और अर्थ एक हो गये हैं, जहाँ शब्द अपने आप बोलते हैं, मानो शब्द का अर्थ-विधान ही अपने पट खोलता चलता हो। उन्होंने अलंकारों के बड़े ही संतुलित और अपेक्षित प्रयोगों द्वारा भाव-व्यजंना को उत्कर्ष दिया है। उनके सांगरूपक तो हिन्दी में विरले ही हैं। परंपरा की कई लीकों से हटकर लोकोक्तियों और मुहावरों का अलग अंदाज है। रीति काव्य परंपरा का प्रेम और ब्रजभाषा को उनकी दृष्टि की सीमा भले ही माना जाये, लेकिन यह ब्रजभाषा के प्रति अपूर्व निष्ठा थी, जो ब्रजभाषा को अपने सशक्त मानदंडों में सुरक्षित रखना चाहती थी। सामयिक आंदोलनों से परे रहकर उन्होंने ब्रजभाषा साहित्य का परिष्कार करने और मानवीय अंतर्मन का कोना-कोना झाँकने में अपनी शक्ति लगा दी। नारी मन का कोई छोर ऐसा नहीं बचा, जिसे उनके शब्दों के कोमल और तीव्र स्पर्श ने छुआ न हो।

निधन

सन् 1930, कलकत्ता में हुए 'अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य' के जगन्नाथ जी अध्यक्ष नियुक्त हुए थे। ब्रजभाषा के कवियों में आधुनिक कवियों के तौर पर ये सर्वथा विशिष्ट हैं। 22 जून, 1932 को इनकी मृत्यु के पश्चात् 'कविवर बिहारी' शीर्षक ग्रंथ की रचना का प्रकाशन इनके पौत्र रामकृण ने किया था। मरणोपरांत 'सूरसागर' सम्पादित ग्रंथ का प्रकाशन आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के निरीक्षण में हुआ।

गयाप्रसाद शुक्ल 'स्नेही'

पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'स्नेही' (जन्म: 1883 ई. - मृत्यु: 20 मई, 1972 ई.) ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि थे।

जीवन परिचय

पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' जी का जन्म श्रावण शुक्ल त्रयोदशी, संवत् 1940 में उन्नाव जिले के हडहा नामक ग्राम में हुआ। यह गाँव बैसवाड़ा क्षेत्र के अंतर्गत है। सनेही जी के पिता पं. अक्सेरीलाल शुक्ल बड़े साहसी और देशभक्त व्यक्ति थे। 1850 ई. के स्वातंत्र्य संग्राम में उन्होंने भी जमकर भाग लिया और ब्रिटिश सरकार के कोपभाजन बने। देशभक्ति और वीरभाव की यह परंपरा सनेही जी को अपने पिता से ही प्राप्त हुई। सनेही जी आरम्भ से ही मेधावी छात्र रहे। काव्यरचना का शौक इन्हें बचपन से ही था। काव्यशास्त्र का सम्यक् अनुशील इन्होंने हडहा निवासी लाला गिरधारी लाल के चरणों में बैठकर किया। लालाजी रीतिशास्त्र के बड़े पंडित और ब्रजभाषा के सिद्धस्त कवि थे।

कार्यक्षेत्र

सनेही जी ने अपनी जीविका के लिए शिक्षक की वृति अपनाई। सन् 1902 में ये शिक्षण पद्धति का प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए दो वर्ष लखनऊ आकर रहे। यहाँ इनकी प्रतिभा का और भी विकास हुआ तथा ये ब्रजभाषा, खड़ीबोली एवं उर्दू के कवियों के संपर्क में आये। सनेही जी इन तीनों भाषाओं में काव्यरचना करते थे परन्तु रससिद्ध कविता की दृष्टि से ये प्रमुखत: ब्रजभाषा के ही कवि थे। इनकी प्रसिद्धि होने पर पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इन्हें खड़ीबोली काव्यरचना की ओर प्रेरित किया और इस क्षेत्र में भी सनेही जी का अद्वितीय स्थान रहा परन्तु ब्रजभाषा में भी ये आजीवन लिखते रहे। शिक्षा विभाग में नौकरी करने के कारण इन्होंने अपनी राष्ट्रीय कवितायें 'त्रिशूल' उपनाम से लिखीं। सनेही नाम से ये परंपरागत और रससिद्ध कवितायें करते थे और त्रिशूल उपनाम से ये समाज सुधार और स्वाधीनता प्रेम की रचनाएं लिखते थे। 'तरंगी' और 'अलमस्त' ये दोनों भी सनेही जी के उपनाम हैं। असहयोग आन्दोलन के समय इन्होंने टाउन स्कूल की हेड मास्टरी से त्याग पत्र दे दिया और कानपुर को अपना कर्मक्षेत्र बनाकर स्वाधीनता के कार्यों में अपने को खपा दिया।

साहित्यिक परिचय

सनेही जी की आरंभिक रचनाएं 'रसिक रहस्य', 'साहित्य सरोवर', 'रसिकमित्र' आदि पत्रों में प्रकाशित होती थी। बाद में सरस्वती में भी लिखने लगे थे। 'प्रताप' में इनकी क्रांतिकारी रचनाएं प्रकाशित होती थी। 'दैनिक वर्तमान'

के संस्थापकों में से ये एक थे। गोरखपुर से निकलने वाले 'कवि' का संपादन इन्होंने वर्षों किया। सन् 1928 में इन्होंने कविता प्रधान पत्र 'सुकवि' निकाला। संपादन, संचालन सनेही जी 22 वर्षों तक करते रहे। इस पत्र में पुराने और नए – दोनों श्रेणियों के कवियों की रचनाएं प्रकाशित होती थीं। समस्यापूर्ति इसका स्थायी स्तम्भ था, जिसके कारण कविता का प्रचार, प्रसार तो हुआ ही, न जाने कितने सहृदयों को सनेही जी ने रचनाकार भी बना दिया। सनेही जी ने अपने जीवन में असंख्य कवियों को काव्याभ्यास कराकर सत्काव्यरचना में प्रवृत किया। वर्तमान के अनेक प्रसिद्ध कवि अपने को सनेही जी का शिष्य कहने में गौरव का अनुभव करते हैं। इन्होंने कवि सम्मेलनों की परंपरा का भी विकास किया और जीवन में अनेक कवि सम्मेलनों का सभापतित्त्व भी किया।

रचनाकाल एवं रचनाएँ

सनेही जी का रचनाकाल और रचना का विषय क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। इनकी प्रकाशित रचनाओं में प्रेम पच्चीसी, कुसुमांजलि, कृषक् क्रंदन, त्रिशूल तरंग, राष्ट्रीय मन्त्र, संजीवनी, राष्ट्रीय वाणी, कलामे त्रिशूल तथा करुणा-कादम्बिनी हैं। स्पष्ट है कि सनेही जी का रससिद्ध व्यक्तित्त्व उनके ब्रजभाषा काव्य में ही परागत हुआ है। आचार्य पं. रामचंद्र शुक्ल ने लिखा भी है –

पं गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' के प्रभाव से कानपुर में ब्रजभाषा काव्य के मधुस्रोत अब भी बराबर वैसे ही चल रहे हैं, जैसे 'पूर्ण' जी के समय में चलते थे।

सनेही जी की प्रथम कृति 'प्रेम पच्चीसी' का प्रकाशन सन् 1905 के आस-पास हुआ था। इसमें शृंगार रस के ब्रजभाषा में लिखे पच्चीस छंदों का संकलन किया गया था। 'प्रेमपच्चीसी' का एक छंद यहाँ प्रस्तुत है –

जेहि चाह सों चाह्यो तुम्हें प्रथमै
अबहूँ तेहि चाह सों चाहनौ है।
तुम चाहौ न चाहौ लला हमको
कछु दीबो न याकौ उराहनौ है।
दु:ख दीजै कि कीजै दया दिल में
हर रंग तिहारौ सिराहनौ है।
मन भावै करौ मनभावन सो
हमें नेह कौ नातौ निभावनौ है।

साहित्यिक विशेषताएँ

समय के साथ सनेही जी का ब्रजभाषा काव्य भाव और कला दोनों ही दृष्टियों से समृद्धतर होता गया। प्रेम व्यंजना को इन्होंने ब्रजभाषा काव्य में सर्वप्रमुख स्थान दिया है। इस प्रेमवर्णन में ये भक्तिकाल के कवियों की अपेक्षा रीतिकाल के कवियों से अधिक प्रभावित हैं। इतना अवश्य है कि इनमें रीतिकाल के अधिकाँश कवियों के सामान हृद्यानुभूति का अभाव और केवल कलात्मकता ही नहीं है, अपितु इनकी रचनाएं प्रसाद गुण लिए हुए अनुभूतियों का विषद् वर्णन ही है। प्रेम के विषय में श्रीकृष्ण की नि:संगता को आधार बनाकर सनेही जी ने विरहणी गोपियों की स्थिति को किस प्रकार आमने - सामने रखकर इस छंद को प्रस्तुत किया है, यह देखते ही बनता है-

नव नेह कौ नेम निबाहत चातक, कानन ही में मवासौ रहै
रट 'पी कहाँ' श्पी कहाँ' की ही लगे, भरो नीर रहै पै उपासौ रहै
तजि पूरबी पौन न संगी कोऊ, कछु देत हिए कौं दिलासौ रहै
लगी डोर सदैव पिया सों रहै, चहे बारहु मॉस पियासौ रहै

भाषा-शैली

सरल और सहज अभिव्यक्ति होते हुए भी ब्रजभाषा कवियों की अलंकार प्रियता की रीति सनेही जी ने भी निबाही है। उक्त छंद में 'पियासौ' में यमक अलंकार कितना स्वाभाविक ढंग से आ बैठा है। सनेही जी के काव्य में कलात्मकता भी कम नहीं है। समस्यापूर्ति के निमित्त लिखी गयी रचनाओं में चमत्कार का प्रदर्शन स्वभावत: अधिक होता है, परन्तु सनेही जी का यह पांडित्य केवल शब्दों में न होकर उनकी कल्पनाशीलता में है, परिणामत: इनके छंद अनुभूति को ही विशेष रूप से जाग्रत करने में समर्थ होते हैं। सनेही जी की ब्रजभाषा की रचनाओं में श्रृंगार रस के अतिरिक्त शांत, वीर, करुण, हास्य एवं अन्य रसों की भी कवितायें हैं। इनकी भाषा में अवधी, बैसवाड़ी, बुन्देलखंडी प्रयोगों के साथ अरबी-फारसी के शब्द भी प्रयाप्त मात्रा में पाए जाते हैं इसलिए इनकी भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा नहीं कही जा सकती। यही नहीं खड़ी बोली का पुट भी जहाँ तहां इनकी भाषा में मिलता है। इन सब प्रयोगों से इनकी ब्रजभाषा सरल और प्रसादगुण युक्त भी बनी है यही सनेही जी की विशेषता है। इनकी कथन भंगिमाएं सहज और विविध हैं, इनका अलंकार विधान स्वाभाविक है, छंद

योजना में ये प्रायः रीतिकाल के अनुवर्ती हैं। अर्थात् इस विवेच्य युग में भी सनेही जी ब्रज से बाहर रहकर भी ब्रजभाषा के एक बहुत बड़े स्तम्भ माने जाते हैं।

निधन

पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' जी का निधन 20 मई, 1972 को 89 वर्ष की अवस्था में कानपुर के उस्रला अस्पताल में हो गया।

मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्त (अंग्रेजी: Maithili Sharan Gupt, जन्म- 3 अगस्त, 1886, झाँसी, मृत्यु- 12 दिसंबर, 1964, झाँसी) खड़ी बोली के प्रथम महत्त्वपूर्ण कवि थे। महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से आपने खड़ी बोली को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया और अपनी कविता के द्वारा खड़ी बोली को एक काव्य-भाषा के रूप में निर्मित करने में अथक प्रयास किया। इस तरह ब्रजभाषा जैसी समृद्ध काव्य भाषा को छोड़कर समय और संदर्भों के अनुकूल होने के कारण नये कवियों ने इसे ही अपनी काव्य-अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। हिन्दी कविता के इतिहास में गुप्त जी का यह सबसे बड़ा योगदान है।

जीवन परिचय

मैथिलीशरण गुप्त जी का जन्म 3 अगस्त, 1886 चिरगाँव, झाँसी, उत्तर प्रदेश में हुआ था। संभ्रांत वैश्य परिवार में जन्मे मैथिलीशरण गुप्त के पिता का नाम 'सेठ रामचरण' और माता का नाम 'श्रीमती काशीबाई' था। पिता रामचरण एक निष्ठावान् प्रसिद्ध राम भक्त थे। इनके पिता 'कनकलता' उप नाम से कविता किया करते थे और राम के विष्णुत्व में अटल आस्था रखते थे। गुप्त जी को कवित्व प्रतिभा और राम भक्ति पैतृक देन में मिली थी। वे बाल्यकाल में ही काव्य रचना करने लगे। पिता ने इनके एक छंद को पढ़कर आशीर्वाद दिया कि 'तू आगे चलकर हमसे हजार गुनी अच्छी कविता करेगा' और यह आशीर्वाद अक्षरशः सत्य हुआ। मुंशी अजमेरी के साहचर्य ने उनके काव्य-संस्कारों को विकसित किया। उनके व्यक्तित्त्व में प्राचीन संस्कारों तथा आधुनिक विचारधारा दोनों का समन्वय था। मैथिलीशरण गुप्त जी को साहित्य जगत् में 'दद्दा' नाम से सम्बोधित किया जाता था।

शिक्षा

मैथिलीशरण गुप्त की प्रारम्भिक शिक्षा चिरगाँव, झाँसी के राजकीय विद्यालय में हुई। प्रारंभिक शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त गुप्त जी झाँसी के मेकडॉनल हाईस्कूल में अंग्रेजी पढ़ने के लिए भेजे गए, पर वहाँ इनका मन न लगा और दो वर्ष पश्चात् ही घर पर इनकी शिक्षा का प्रबंध किया। लेकिन पढ़ने की अपेक्षा इन्हें चकई फिराना और पतंग उड़ाना अधिक पसंद था। फिर भी इन्होंने घर पर ही संस्कृत, हिन्दी तथा बांग्ला साहित्य का व्यापक अध्ययन किया। इन्हें 'आल्हा' पढ़ने में भी बहुत आनंद आता था।

काव्य प्रतिभा

इसी बीच गुप्त जी मुंशी अजमेरी के संपर्क में आये और उनके प्रभाव से इनकी काव्य-प्रतिभा को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, अतः अब ये दोहे, छप्पयों में काव्य रचना करने लगे, जो कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) में प्रकाशित होने वाले 'वैश्योपकारक' पत्र में प्रकाशित हुई। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जब झाँसी के रेलवे ऑफिस में चीफ क्लर्क थे, तब गुप्त जी अपने बड़े भाई के साथ उनसे मिलने गए और कालांतर में उन्हीं की छत्रछाया में मैथिलीशरण जी की काव्य प्रतिभा पल्लवित व पुष्पित हुई। वे द्विवेदी जी को अपना काव्य गुरु मानते थे और उन्हीं के बताये मार्ग पर चलते रहे तथा जीवन के अंत तक साहित्य साधना में रत रहे। उन्होंने राष्ट्रीय आंदलनों में भी भाग लिया और जेल यात्रा भी की।

लोकसंग्रही कवि

मैथिलीशरण गुप्त जी स्वभाव से ही लोकसंग्रही कवि थे और अपने युग की समस्याओं के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील रहे। उनका काव्य एक ओर वैष्णव भावना से परिपोषित था, तो साथ ही जागरण व सुधार युग की राष्ट्रीय नैतिक चेतना से अनुप्राणित भी था। लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक, विपिनचंद्र पाल, गणेश शंकर विद्यार्थी और मदनमोहन मालवीय उनके आदर्श रहे। महात्मा गांधी के भारतीय राजनीतिक जीवन में आने से पूर्व ही गुप्त का युवा मन गर्म दल और तत्कालीन क्रान्तिकारी विचारधारा से प्रभावित हो चुका था। 'अनघ' से पूर्व की रचनाओं में, विशेषकर जयद्रथ वध और भारत भारती में कवि का क्रान्तिकारी स्वर सुनाई पड़ता है। बाद में महात्मा गांधी, राजेन्द्र प्रसाद, जवाहर लाल नेहरू और विनोबा भावे के सम्पर्क में आने के कारण वह

गांधीवाद के व्यावहारिक पक्ष और सुधारवादी आंदोलनों के समर्थक बने। 1936 में गांधी ने ही उन्हें मैथिली काव्य-मान ग्रन्थ भेंट करते हुए राष्ट्रकवि का सम्बोधन दिया। महावीर प्रसाद द्विवेदी के संसर्ग से गुप्त जी की काव्य-कला में निखार आया और उनकी रचनाएँ 'सरस्वती' में निरन्तर प्रकाशित होती रहीं। 1909 में उनका पहला काव्य जयद्रथ-वध आया। जयद्रथ-वध की लोकप्रियता ने उन्हें लेखन और प्रकाशन की प्रेरणा दी। 59 वर्षों में गुप्त जी ने गद्य, पद्य, नाटक, मौलिक तथा अनुदित सब मिलाकर, हिन्दी को लगभग 74 रचनाएँ प्रदान की हैं। जिनमें दो महाकाव्य, 20 खंड काव्य, 17 गीतिकाव्य, चार नाटक और गीतिनाट्य हैं।

देश प्रेम

काव्य के क्षेत्र में अपनी लेखनी से संपूर्ण देश में राष्ट्रभक्ति की भावना भर दी थी। राष्ट्रप्रेम की इस अजस्र धारा का प्रवाह बुंदेलखंड क्षेत्र के चिरगांव से कविता के माध्यम से हो रहा था। बाद में राष्ट्रप्रेम की इस धारा को देश भर में प्रवाहित किया था, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने।

मैथिलीशरण गुप्त

जो भरा नहीं है भावों से जिसमें बहती रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।

पिताजी के आशीर्वाद से वह राष्ट्रकवि के सोपान तक पदासीन हुए। महात्मा गांधी ने उन्हें राष्ट्रकवि कहे जाने का गौरव प्रदान किया। भारत सरकार ने उनकी सेवाओं को देखते हुए उन्हें दो बार राज्यसभा की सदस्यता प्रदान की। हिन्दी में मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-साधना सदैव स्मरणीय रहेगी। बुंदेलखंड में जन्म लेने के कारण गुप्त जी बोलचाल में बुंदेलखंडी भाषा का ही प्रयोग करते थे। धोती और बंडी पहनकर माथे पर तिलक लगाकर संत के रूप में अपनी हवेली में बैठे रहा करते थे। उन्होंने अपनी साहित्यिक साधना से हिन्दी को समृद्ध किया। मैथिलीशरण गुप्त के जीवन में राष्ट्रीयता के भाव कूट-कूट कर भर गए थे। इसी कारण उनकी सभी रचनाएं राष्ट्रीय विचारधारा से ओत-प्रोत है। वे भारतीय संस्कृति एवं इतिहास के परम भक्त थे। परन्तु अंधविश्वासों और थोथे आदर्शों में उनका विश्वास नहीं था। वे भारतीय संस्कृति की नवीनतम रूप की कामना करते थे।

महाकाव्य

मैथिलीशरण गुप्त को काव्य क्षेत्र का शिरोमणि कहा जाता है। मैथिलीशरण जी की प्रसिद्धि का मूलाधार भारत-भारती है। भारत-भारती उन दिनों राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का घोषणा पत्र बन गई थी। साकेत और जयभारत, दोनों महाकाव्य हैं। साकेत रामकथा पर आधारित है, किन्तु इसके केन्द्र में लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला है। साकेत में कवि ने उर्मिला और लक्ष्मण के दाम्पत्य जीवन के हृदयस्पर्शी प्रसंग तथा उर्मिला की विरह दशा का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है, साथ ही कैकेयी के पश्चात्ताप को दर्शाकर उसके चरित्र का मनोवैज्ञानिक एवं उज्ज्वल पक्ष प्रस्तुत किया है। यशोधरा में गौतम बुद्ध की मानिनी पत्नी यशोधरा केन्द्र में है। यशोधरा की मन:स्थितियों का मार्मिक अंकन इस काव्य में हुआ है। विष्णुप्रिया में चैतन्य महाप्रभु की पत्नी केन्द्र में है। वस्तुत: गुप्त जी ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा बांग्ला भाषा में रचित 'काव्येर उपेक्षित नार्या' शीर्षक लेख से प्रेरणा प्राप्त कर अपने प्रबन्ध काव्यों में उपेक्षित, किन्तु महिमामयी नारियों की व्यथा-कथा को चित्रित किया और साथ ही उसमें आधुनिक चेतना के आयाम भी जोड़े।

विविध धर्मों, सम्प्रदायों, मत-मतांतरों और विभिन्न संस्कृतियों के प्रति सहिष्णुता व समन्वय की भावना गुप्त जी के काव्य का वैशिष्ट्य है। पंचवटी काव्य में सहज वन्य-जीवन के प्रति गहरा अनुराग और प्रकृति के मनोहारी चित्र हैं, तो नहुष पौराणिक कथा के आधार के माध्यम से कर्म और आशा का संदेश है। झंकार वैष्णव भावना से ओत-प्रोत गीतिकाव्य है, तो गुरुकुल और काबा-कर्बला में कवि के उदार धर्म-दर्शन का प्रमाण मिलता है। खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारण और विकास में गुप्त जी का अन्यतम योगदान रहा।

भारत-भारती

'भारत-भारती', मैथिलीशरण गुप्त जी द्वारा स्वदेश प्रेम को दर्शाते हुए वर्तमान और भावी दुर्दशा से उबरने के लिए समाधान खोजने का एक सफल प्रयोग है। भारतवर्ष के संक्षिप्त दर्शन की काव्यात्मक प्रस्तुति 'भारत-भारती' निश्चित रूप से किसी शोध कार्य से कम नहीं है। गुप्त जी की सृजनता की दक्षता का परिचय देने वाली यह पुस्तक कई सामाजिक आयामों पर विचार करने को विवश करती है। यह सामग्री तीन भागों में बाँटी गयी है:-

1. साकेत का आवरण पृष्ठ
2. अतीत-खंड
3. भारत-भारती

यह भाग भारतवर्ष के इतिहास पर गर्व करने को पूर्णत: विवश करता है। उस समय के दर्शन, धर्म-काल, प्राकृतिक संपदा, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, सामाजिक-व्यवस्था जैसे तत्त्वों को संक्षिप्त रूप से स्मरण करवाया गया है। अतिशयोक्ति से दूर इसकी सामग्री संलग्न दी गयी, टीका-टिप्पणियों के प्रमाण के कारण सरलता से ग्राह्य हो जाती हैं। मेगस्थनीज से लेकर आर. सी. दत्त. तक के कथनों को प्रासंगिक ढंग से पाठकों के समक्ष रखना एक कुशल नियोजन का सूचक है। निरपेक्षता का ध्यान रखते हुए निन्दा और प्रशंसा के प्रदर्शन हुए है, जैसे मुगल काल के कुछ क्रूर शासकों की निंदा हुई है तो अकबर जैसे मुगल शासक का बखान भी हुआ है। अंग्रेजों की उनके विष्कार और आधुनिकीकरण के प्रचार के कारण प्रशंसा भी हुई है।

भारतवर्ष के दर्शन पर वे कहते हैं-
पाये प्रथम जिनसे जगत् ने दार्शनिक संवाद हैं-
गौतम, कपिल, जैमिनी, पतंजली, व्यास और कणाद है।
नीति पर उनके द्विपद ऐसे हैं-
सामान्य नीति समेत ऐसे राजनीतिक ग्रन्थ हैं-
संसार के हित जो प्रथम पुण्याचरण के पंथ हैं।
सूत्रग्रंथ के सन्दर्भ में ऋषियों के विद्वत्ता पर वे लिखते हैं-
उन ऋषि-गणों ने सूक्ष्मता से काम कितना है लिया,
आश्चर्य है, घट में उन्होंने सिन्धु को है भर दिया।

वर्तमान-खंड

दारिद्र्य, नैतिक पतन, अव्यवस्था और आपसी भेदभाव से जूझते उस समय के देश की दुर्दशा को दर्शाते हुए, सामाजिक नूतनता की माँग रखी गयी है।

अपनी हुई आत्म-विस्मृति पर वे कहते हैं-
हम आज क्या से क्या हुए, भूले हुए हैं हम इसे,
है ध्यान अपने मान का, हममें बताओ अब किसे!
पूर्वज हमारे कौन थे, हमको नहीं यह ज्ञान भी,
है भार उनके नाम पर दो अंजली जल-दान भी।

नैतिक और धार्मिक पतन के लिए गुप्त जी ने उपदेशकों, संत-महंतों और ब्राह्मणों की निष्क्रियता और मिथ्या-व्यवहार को दोषी मान शब्द बाण चलाये हैं। इस तरह कविवर की लेखनी सामाजिक दुर्दशा के मुख्य कारणों को खोज उनके सुधार की माँग करती है। हमारे सामाजिक उत्तरदायित्व की निष्क्रियता को उजागर करते हुए भी 'वर्तमान खंड' आशा की गाँठ को बाँधे रखती है।

भविष्यत्-खंड

अपने ज्ञान, विवेक और विचारों की सीमा को छूते हुए राष्ट्रकवि ने समस्या समाधान के हल खोजने और लोगों से उसके के लिए आह्वान करने का भरसक प्रयास किया है।

आर्य वंशज हिन्दुओं को देश पुनर्स्थापना के लिए प्रेरित करते हुए वे कहते हैं–

हम हिन्दुओं के सामने आदर्श जैसे प्राप्त हैं-
संसार में किस जाति को, किस ठौर वैसे प्राप्त हैं,
भव-सिन्धु में निज पूर्वजों के रीति से ही हम तरें,
यदि हो सकें वैसे न हम तो अनुकरण तो भी करें।

पुस्तक की अंत की दो रचनाएं 'शुभकामना' और 'विनय' कविवर की देशभक्ति की परिचायक है। तन में देश सद्भावना की ऊर्जा का संचार करने वाली यह दो रचनाएं किसी प्रार्थना से कम नहीं लगती।

वह अमर लेखनी ईश्वर से प्रार्थना करती है-
इस देश को हे दीनबन्धो!आप फिर अपनाइए,
भगवान! भारतवर्ष को फिर पुण्य-भूमि बनाइये,
जड़-तुल्य जीवन आज इसका विघ्न-बाधा पूर्ण है,
हेरम्ब! अब अवलंब देकर विघ्नहर कहलाइए।

राष्ट्रकवि

अपने साहित्यिक गुरु महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से गुप्त जी ने 'भारत-भारती' की रचना की। 'भारत-भारती' के प्रकाशन से ही गुप्त जी प्रकाश में आये। उसी समय से आपको 'राष्ट्रकवि' के नाम से अभिनंदित किया गया। उनकी साहित्य साधना सन् 1921 से सन् 1964 तक निरंतर आगे बढ़ती रही। गुप्त जी युग-प्रतिनिधि राष्ट्रीय कवि थे। इस अर्द्ध-शताब्दी की समस्त सामाजिक,

राजनैतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक हलचलों का प्रतिनिधित्व इनकी रचनाओं में मिल जाता है। इनके काव्य में राष्ट्र की वाणी मुखर हो उठी है। देश के समक्ष सबसे प्रमुख समस्या दासता से मुक्ति थी। गुप्त जी ने 'भारत-भारती' तथा अपनी अन्य रचनाओं के माध्यम से इस दिशा में प्रेरणा प्रदान की। इन्होंने अतीत गौरव का भाव जगाकर वर्तमान को सुधारने की प्रेरणा दी। अपनी अभिलाषा अभिव्यक्त करते हुए वे कहते हैं-

'मानव-भवन में आर्यजन, जिसकी उतारें आरती।
भगवान भारतवर्ष में, गूंजे हमारी भारती।'

इस युग की प्रमुख समस्या हिन्दू-मुस्लिम एकता थी। गुप्त जी ने अपनी अनेक रचनाओं में दोनों की एकता पर बल दिया। 'काबा और कर्बला' में उन्होंने मुसलमानों की सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयास किया है। इस प्रकार गुप्त जी ने समस्त समस्याओं का राष्ट्रीय दृष्टि से समाधान प्रस्तुत किया है।

काव्य सौन्दर्य

मैथिलीशरण गुप्त अपनी भाव रश्मियों से हिन्दी साहित्य को प्रकाशित करने वाले युग कवि थे। 40 वर्ष तक निरंतर इनकी रचनाओं में युग स्वर गूंजता रहा। इन्होंने गौरवपूर्ण अतीत को प्रस्तुत करने के साथ-साथ भविष्य का भी भव्य रूप प्रस्तुत किया-

'मैं अतीत नहीं भविष्यत् भी हूँ आज तुम्हारा।'

गुप्त जी मानवतावाद के पोषक और समर्थक थे। इनकी भगवत भावना महान् थी। इनके काव्य में निर्गुण नारायण ही पृथ्वी को स्वर्ग बनाने के लिए भूतल पर आते हैं।

'भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल ही को स्वर्ग बनाने आया।'

गुप्त जी का काव्य मानस की प्रेरणा और प्रवृत्ति का स्रोत है। आधुनिक काल का यह समन्वित रूप है। मानवीय चरित्र की जितनी भी संभावनाएँ संभव हैं, उस सबकी सृष्टि राम का चरित्र है।

भाषा-शैली

शैलियों के निर्वाचन में मैथिलीशरण गुप्त ने विविधता दिखाई, किन्तु प्रधानता प्रबंधात्मक इतिवृत्तमय शैली की है। उनके अधिकांश काव्य इसी शैली में हैं- 'रंग में भंग', 'जयद्रथ वध', 'नहुष', 'सिद्धराज', 'त्रिपथक', 'साकेत' आदि प्रबंध शैली में हैं। यह शैली दो प्रकार की है- 'खंड काव्यात्मक' तथा 'महाकाव्यात्मक'। साकेत महाकाव्य है तथा शेष सभी काव्य खंड काव्य के अंतर्गत आते हैं।

गुप्त जी की एक शैली विवरण शैली भी है। 'भारत-भारती' और 'हिन्दू' इस शैली में आते हैं।

तीसरी शैली गीत शैली है। इसमें गुप्त जी ने नाटकीय प्रणाली का अनुगमन किया है। 'अनघ' इसका उदाहरण है।

आत्मोद्‌गार प्रणाली गुप्त जी की एक और शैली है, जिसमें 'द्वापर' की रचना हुई है।

नाटक, गीत, प्रबंध, पद्य और गद्य सभी के मिश्रण एक मिश्रित शैली है, जिसमें 'यशोधरा' की रचना हुई है।

इन सभी शैलियों में गुप्त जी को समान रूप से सफलता नहीं मिली। उनकी शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें इनका व्यक्तित्त्व झलकता है। पूर्ण प्रवाह है। भावों की अभिव्यक्ति में सहायक होकर उपस्थित हुई हैं। मैथिलीशरण गुप्त की काव्य भाषा खड़ी बोली है। इस पर उनका पूर्ण अधिकार है। भावों को अभिव्यक्त करने के लिए गुप्त जी के पास अत्यंत व्यापक शब्दावली है। उनकी प्रारंभिक रचनाओं की भाषा तत्सम है। इसमें साहित्यिक सौन्दर्य कला नहीं है। 'भारत-भारती' की भाषा में खड़ी बोली की खड़खड़ाहट है, किन्तु गुप्त जी की भाषा क्रमशः विकास करती हुई सरस होती गयी। संस्कृत के शब्द भंडार से ही उन्होंने अपनी भाषा का भण्डार भरा है, लेकिन 'प्रियप्रवास' की भाषा में संस्कृत बहुला नहीं होने पायी। इसमें प्राकृत रूप सर्वथा उभरा हुआ है। भाव व्यंजना को स्पष्ट और प्रभावपूर्ण बनाने के लिए संस्कृत का सहारा लिया गया है। संस्कृत के साथ गुप्त जी की भाषा पर प्रांतीयता का भी प्रभाव है। उनका काव्य भाव तथा कला पक्ष दोनों की दृष्टि से सफल है।

काव्यगत विशेषताएँ

इनके काव्य की विशेषताएँ इस प्रकार उल्लेखित की जा सकती हैं -

- राष्ट्रीयता और गांधीवाद की प्रधानता,
- गौरवमय अतीत के इतिहास और भारतीय संस्कृति की महत्ता,
- पारिवारिक जीवन को भी यथोचित् महत्ता,
- नारी मात्र को विशेष महत्त्व,
- प्रबंध और मुक्तक दोनों में लेखन,
- शब्द शक्तियों तथा अलंकारों के सक्षम प्रयोग के साथ मुहावरों का भी प्रयोग।

पतिवियुक्ता नारी का वर्णन

स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रकवि के आसंदी पर आरूढ़ मैथिलीशरण गुप्त जी ने अपने साठ वर्षीय काव्य साधना, कला में लगभग सत्तर कृतियों की रचना करके न केवल हिन्दी साहित्य की अपितु सम्पूर्ण भारतीय समाज की अमूल्य सेवा की है। उन्होंने अपने काव्य में एक ओर भारतीय राष्ट्रवाद, संस्कृति, समाज तथा राजनीति के विषय में नये प्रतिमानों को प्रतिष्ठित किया, वहीं दूसरी ओर व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के अंत:सम्बंधों के आधार पर इन्हें नवीन अर्थ भी प्रदान किया है। गुप्त जी द्विवेदी युग के प्रमुख कवि थे। वह युग जातीय जागरण और राष्ट्रीय उन्मेष का काल था। वे अपने युग और उसकी समस्याओं के प्रति अत्यंत संवेदनशील थे। उनका संवेदनशील और जागरुक कवि हृदय देश की वर्तमान दशा से क्षुब्ध था। वे धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों को इस दुर्दशा का मूल कारण मानते थे, अत: उनके राष्ट्रवाद की प्रथम जागृति धार्मिक और सामाजिक सुधारवाद के रूप में दिखाई देती है। नारियों की दुरावस्था तथा दु:खियों-दीनों और असहायों की पीड़ा ने उसके हृदय में करुणा के भाव भर दिये थे। यही वजह है कि उनके अनेक काव्य ग्रंथों में नारियों की पुनर्प्रतिष्ठा एवं पीड़ित के प्रति सहानुभूति झलकती है। नारियों की दशा को व्यक्त करती उनकी ये पंक्तियां पाठकों के हृदय में करुणा उत्पन्न करती है-

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

एक समुन्नत, सुगठित और सशक्त राष्ट्रीय नैतिकता से युक्त आदर्श समाज, मर्यादित एवं स्नेहासिक्त परिवार और उदात्त चरित्र वाले नर - नारी के निर्माण की दिशा में उन्होंने प्राचीन आख्यानों को अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाकर उनके सभी पात्रों को एक नया अभिप्राय दिया है। जयद्रथवध, साकेत,

पंचवटी, सैरन्ध्री, बक संहार, यशोधरा, द्वापर, नहुष, जयभारत, हिडिम्बा, विष्णुप्रिया एवं रत्नावली आदि रचनाएं इसके उदाहरण हैं। गुप्त जी मर्यादा प्रेमी भारतीय कवि हैं। उनके ग्रंथों के सुपात्र वारिक व्यक्ति हैं। उन्होंने संयुक्त परिवार को सर्वोपरि महत्त्व दिया है तथा नैतिकता और मर्यादा से युक्त सहज सरल पारिवारिक व्यक्ति को श्रेष्ठ माना है। ऐसे ही व्यक्ति में उदात्त गुणों का प्रादुर्भाव हो सकता है। इस संदर्भ में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का कथन द्रष्टव्य है– मैथिलीशरण गुप्त ने सम्पूर्ण भारतीय पारिवारिक वातावरण में उदात्त चरित्रों का निर्माण किया है। उनके काव्य शुरू से अंत तक प्रेरणा देने वाले हैं। उनमें व्यक्तित्त्व का स्वत: समुच्छित उच्छ्वास नहीं है, पारिवारिक व्यक्तित्त्व का और संयत जीवन का विलास है। वस्तुत: गुप्त जी पारिवारिक जीवन के कथाकार है। परिवार का अस्तित्त्व नारी के बिना असंभव है। इसीलिए वे नारी को जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग मानते हैं। नारी के प्रति उनकी दृष्टि रोमानी न होकर मर्यादावादी और सांस्कृतिक रही है। वे अपने नारी पात्रों में उन्हीं गुणों की प्रतिष्ठा करते हैं, जो भारतीय कुलवधू के आदर्श माने गये हैं। उनकी दृष्टि में नारी भोग्य मात्र नहीं अपितु पुरुष का पूरक अंग है। इसीलिए उनके काव्य में नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्त्व स्वाभिमान, दर्प और स्वावलम्बन का समुचित चित्रण हुआ है। उनके काव्य में नारी, अधिकारों के प्रति सजग, शीलवती, मेधाविनी, समाज सेविका, साहसवती, त्यागशीलता और तपस्विनी के रूप में उपस्थित हुई। इस अनुपम सृष्टि, इसके सर्जक और इसके महत्त्वपूर्ण घटक नर – नारी के प्रति गुप्त जी की पूर्ण आस्था है। इस आस्था के दर्शन उनके काव्य में होते हैं। आस्था का विखंडन गुप्त जी के लिए असहनीय है। नारी के प्रति पुरुष का अनुचित आचरण उन्हें अस्वीकार है। इसीलिए 'द्वापर' में विधृता के माध्यम से इन पंक्तियों को प्रस्तुत करते हैं–

नर के बांटे क्या नारी की नग्न मूर्ति ही आई।
माँ बेटी या बहिन हाय, क्या संग नहीं लाई॥

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी गुप्त जी के काव्य – गुरु थे। द्विवेदी जी के कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता के विमर्श ने गुप्त जी को साकेत महाकाव्य लिखने के लिए प्रेरित किया। भारत वर्ष में गूंजे हमारी भारती की प्रार्थना करने वाले कवि कालान्तर में, विरहिणी नारियों के दु:ख से द्रवित हो जाते हैं। परिवार में रहती हुई पतिवियुक्ता नारी की पीड़ा को जिस शिद्दत के साथ गुप्त जी अनुभव करते हैं और उसे जो बानगी देते हैं, वह आधुनिक साहित्य में दुर्लभ है। उनकी वियोगिनी नारी पात्रों में उर्मिला (साकेत महाकाव्य), यशोधरा

(काव्य) और विष्णुप्रिया खण्डकाव्य प्रमुख है। उनका करुण विप्रलम्भ तीनों पात्रों में सर्वाधिक मर्मस्पर्शी बन पड़ा है। उनके जीवन संघर्ष, उदात्त विचार और आचरण की पवित्रता आदि मानवीय जिजीविषा और सोदेश्यता को प्रमाणित करते हैं। गुप्त जी की तीनों विरहिणी नायिकाएं विरह ताप में तपती हुई भी अपने तन - मन को भस्म नहीं होने देती वरन् कुंदन की तरह उज्ज्वल वर्णी हो जाती हैं। साकेत की उर्मिला रामायण और रामचरितमानस की सर्वाधिक उपेक्षित पात्र है। इस विरहिणी नारी के जीवन वृत्त और पीड़ा की अनुभूतियों का विशद् वर्णन आख्यानकारों ने नहीं किया है। उर्मिला, लक्ष्मण की पत्नी है और अपनी चारों बहनों में वही एक मात्र ऐसी नारी है, जिसके हिस्से में चौदह वर्षों के लिए पतिवियुक्ता होने का दु:ख मिला है। उनकी अन्य तीनों बहनों में सीता, राम के साथ, मांडवी भरत के सान्निध्य में तथा श्रुतिकीर्ति शत्रुघ्न के संग जीवनयापन करती हैं। उर्मिला का जीवन वृत्त और उसकी विरह - वेदना सर्वप्रथम मैथिलीशरण गुप्त जी की लेखनी से साकार हुई हैं। डॉ. जगीनचन्द सहगल लिखते हैं - साकेत मैथिलीशरण गुप्त का निज कवि धन है। यह उनका जीवन कार्य है। डॉ. सहगल कवि के लक्ष्य की ओर इंगित करते हुए आगे लिखते हैं साकेत के कवि का लक्ष्य रामकथा के उपेक्षित पात्रों को प्रकाश में लाना तथा उसके देवत्व गुणयुक्त पात्रों को मानव रूप में उपस्थित करना है। गुप्त जी ने अपने काव्य का प्रधान पात्र राम और सीता को न बनाकर लक्ष्मण, उर्मिला और भरत को बनाया है। गुप्त जी ने साकेत में उर्मिला के चरित्र को जो विस्तार दिया है, वह अप्रतिम है। कवि ने उसे मूर्तिमति ऊषा, सुवर्ण की सजीव प्रतिमा कनक लतिका, कल्पशिल्पी की कला आदि कहकर उसके शारीरिक सौंदर्य की अनुपम झांकी प्रस्तुत की है। उर्मिला प्रेम एवं विनोद से परिपूर्ण हास - परिहास मयी रमणी है। उसका हास-परिहास बुद्धिमत्तापूर्ण है- लक्ष्मण जब उर्मिला की मंजरी सी अंगुलियों में यह कला देखकर अपना सुधबुध भूल जाते हैं और मत्त गज-सा झूम कर उर्मिला से अनुनय करते हैं -

कर कमल लाओ तुम्हारा चूम लूं।

इसके प्रत्युत्तर में उर्मिला अपना कमल सा हाथ पति की ओर बढ़ाती हुई मुस्कराती है और विनोद भरे शब्दों में कहती है-

मत्त गज बनकर, विवेक न छोड़ना।
कर कमल कह, कर न मेरा तोड़ना।

एक ओर उसका दाम्पत्य जीवन अत्यन्त आल्हाद एवं उमंगों से भरा हुआ है तो दूसरी ओर उसमें त्याग, धैर्य एवं बलिदान की भावना अत्यधिक मात्र में

विद्यमान है। लक्ष्मण के वन गमन का समाचार सुनकर उसके हृदय में भी सीता की भांति वन - गमन की इच्छा होती है, परन्तु लक्ष्मण की विवशता देखकर वह अपने प्रिय के साथ चलना उचित नहीं समझती। वह अपने हृदय में धैर्य धारण करके अपने मन को यह कह कर समझा लेती है-

तू प्रिय-पथ का विघ्न न बन
आज स्वार्थ है त्याग धरा।
हो अनुराग विराग भरा।
तू विकार से पूर्ण न हो
शोक भार से चूर्ण न हो।।

किन्तु उर्मिला अत्यन्त भोली - भाली सुकुमारी एवं कोमल हृदयवाली भी है। राजसुखों में पली हुई वह नवयौवना वियोग का दु:ख क्या होता है, उसे नहीं जानती। इसीलिए अपने प्रियतम पति लक्ष्मण के बिछुड़ते ही वह अपने धैर्य को संभाल नहीं पाती और एक मुग्धानारी की भांति हाय कहकर धड़ाम से धरती पर गिर जाती है। उसका मूर्छित होना स्वाभाविक है, किन्तु सचेत होने पर उसकी बौद्धिकता पुन: जागृत हो जाती है और अपनी मूर्च्छा को वह नारी सुलभ दुर्बलता मानकर अपने पति के बारे में यही कामना करती है-

करना न सोच मेरा इससे। व्रत में कुछ विघ्न पड़े जिससे।।

उर्मिला के चौदह वर्षों का विरहकाल व्यतीत करना आसान नहीं है। उसके पास लक्ष्मण के साथ बिताये हुए सुखमय जीवन की स्मृतियों के सिवाय कुछ भी नहीं है। एक - एक पल पर्वत-सा प्रतीत होता है, किन्तु विरह के इस वृहत् काल को तो गुजारना ही होगा। यह निश्चय करके उर्मिला सेवा का मार्ग अपना लेती है। वह अपनी सासों की सेवा करती है, रसोई बनाती है, किसानों की दशा पूछती रहती है-

पूछी थी सुकालदशा मैंने आज देवर से

इतना ही नहीं। वह नगर की जितनी प्रोषित पतिकाएं हैं, उनकी सुध-बुध लेती है। उनके हाल-चाल जानने के लिए आतुर रहती है। इस तरह एक विरह - विदग्धा सर्व सुविधा सम्पन्न राज वधु को एक लोक सेविका के रूप में रूपान्तरित करके राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने नारी को एक दिशा दी है। जीवन के प्रति अटूट आस्था स्थापित की है।

यशोधरा खण्डकाव्य

गुप्त जी की यशोधरा खण्डकाव्य में राजकुमार सिद्धार्थ की पत्नी यशोधरा के मनोभावों का बखूबी चित्रण हुआ है। यशोधरा भी एक वियोगिनी नारी है। सिद्धार्थ के द्वारा रात्रि में उसे सोती हुई छोड़कर राजप्रसाद से चुपचाप संन्यास हेतु निकल जाने से उसका मन आहत हो जाता है। यशोधरा को इसी बात का दु:ख था कि उसके पति समझते थे कि वह उनके मार्ग की बाधा बनेगी इसीलिए उसे बिना बताएं घर छोड़कर चले गये। यही पीड़ा इसलिए और अधिक गहरी हो जाती है कि जो पत्नी सहधर्मिणी थी, जो उसके हर काम में सहयोग देती थी, उस पर सिद्धार्थ ने अविश्वास किया। यशोधरा का कहना है कि यदि वे उस पर विश्वास करते और गृहत्याग की बात बता देते तो वह उन्हें पूरा सहयोग देती। उसने अपने आहत अभिमान की व्यंजना – सखि वे मुझसे कहकर जाते। गीत में करती है, वह गा उठती है–

सिद्धि हेतु स्वामी गये यह गौरव की बात।
पर चोरी चोरी गये यह बड़ी आघात।
सखी वे मुझसे कहकर जाते।

विरहिणी यशोधरा की आंखों का पानी कभी नहीं सूखता, राहुल के प्रति कर्त्तव्य भार को वहन करते हुए जल–जलकर काया को जीवित रखती है। एक तो वह पीड़ा का स्वागत करती है। वेदना तू भी भली बनी तो दूसरी वह मृत्यु का वरन् सुन्दर बन आयारी। गुप्त जी के नारी पात्र घोर संकट ओर विषम परिस्थितियों में भी धीरता, कर्मण्यता और कर्त्तव्य भावना का परित्याग नहीं करते। वे कर्त्तव्यनिष्ठा, त्यागशील और सहिष्णु नारी है। यशोधरा अपने श्वसुर शुद्धोदन से भी अधिक धैर्यवान, सहिष्णु है और वह स्व–निर्मित मर्यादा में तल्लीन रहती है। गौतम द्वारा उनका परित्याग कर देने पर भी यशोधरा यही कामना करती है–

व्यर्थ न दिव्य देह वह तप–वर्षा–हिम–वात सहे।

उसकी सहिष्णुता का यह रूप है कि वह विरहिणी के असहाय दु:ख को भी अपने लिए मूल्यवान मानती है।

होता सुख का क्या मूल्य, जो न दु:ख रहता।
प्रिय हृदय सदय हो तपस्ताप क्यों सहता।
मेरे नयनों से नीर न यदि यह बहता।
तो शुष्क प्रेम की बात कौन फिर कहता।

रह दु:ख प्रेम परमार्थ दया मैं लाऊँ।
कह मुक्ति भला किसलिए तुम्हें मैं पाऊँ।

विष्णुप्रिया खण्डकाव्य

गुप्त जी की विष्णुप्रिया भी उर्मिला और यशोधरा के समान ही एक पतिवियुक्ता नारी हैं। पश्चिम बंगाल के प्रसिद्ध संत महाप्रभु चैतन्य की पत्नी के रूप में वह प्रतिष्ठित है। महाप्रभु चैतन्य के साथ उनका विवाह मात्र 12 वर्ष की आयु में हुआ और पति के संन्यासी बन जाने के कारण वह 26 वर्षों तक पतिवियुक्ता बन कर विरहाग्नि में जलती रही। वह सामान्य मध्यम परिवार की नारी है और नि:संतान है। गुप्त जी ने विष्णुप्रिया खण्डकाव्य में भी एक भारतीय नारी की विवशता को दर्शाया है। श्री चैतन्य के संन्यास लेने के प्रसंग में विष्णुप्रिया के कथन – रो रो कर मरना नारी लिखा लायी है। इसका प्रमाण है। इसी तरह अनेक पंक्तियां एक सामान्य नारी के रूप में विष्णुप्रिया की विवशता को प्रकट करती हैं। यथा – देव ने लिखाया सुख फिर भी दिया नहीं, मेरी मति और गति केवल तुम्हीं – तुम्हीं आदि। यशोधरा की तरह उसके हृदय को भी यह सोचकर ठेस लगती है – हाय मैं छली गयी हूँ, छिपकर भागे वे।

चैतन्य के संन्यास ग्रहण करने हेतु चले जाने पर विष्णुप्रिया पति वियोग के सन्ताप को सहती हुई जीविकोपार्जन, सास की सेवा और पति – चिंतन के सहारे समय व्यतीत करती है। इस तरह गुप्त जी ने विष्णुप्रिया में प्रेम, पीड़ा और कर्त्तव्य भावना का समन्वय किया है। स्वप्न दर्शन के माध्यम से उसके आत्मबल को अभिव्यक्त किया है और पर्वोत्सवों के माध्यम से उसकी करुणामयी सामाजिक चेतना, वेदना तथा उदार भावना को प्रकट किया है। पति और सास के स्वर्गारोहण के बाद विष्णुप्रिया नितान्त अकेली रह जाती है। वह हताश होकर इस दुनिया को छोड़ देना चाहती है, किन्तु वह मर नहीं पाती क्योंकि वह पति – स्मरण छोड़ नहीं पाती थी। उसे चैतन्य की मूर्ति में विलीन होने का स्वप्न आता है। वह सती भी नहीं हो सकती क्योंकि स्वप्न में चैतन्य का आदेश था – आयु शेष रहते मरण आत्मघात है, मेरी एक मूर्ति रखो निज गृह कक्ष में। इस आदेश के अनुसार विष्णुप्रिया ने एक मंदिर बनवाया – मंदिर बनाया निज गेह उस देवी ने। इस तरह विरहिणी विष्णुप्रिया एकान्तवासिनी होकर जितने मंत्र, श्लोक जपती थी, उतने ही धान्य – कणों का भोजन करती हुई पति और सास का चिन्तन करती है। इस तरह गुप्त जी की विष्णुप्रिया पतिवियुक्ता विरहिणी होकर भी भारतीय मध्यमवर्गीय

परिवार की सहनशीला, सेवाभावी, पतिपरायणा और सदा गृहस्थ नारी के रूप में चित्रित हुई है।

प्रमुख कृतियाँ

मैथिलीशरण के नाटकों में 'अनघ' जातक कथा से सम्बद्ध बोधिसत्व की कथा पर आधारित पद्य में लिखा गया नाटक है।

प्रमुख कृतियाँ

नाम	प्रकाशित वर्ष
जयद्रथ वध	1910
भारत-भारती	1912
पंचवटी	1925
साकेत	1933
यशोधरा	1932
विष्णुप्रिया	1957
झंकार	1929
जयभारत	1952
द्वापर	1936
कुणाल गीत	
अजित	
अर्जन और विसर्जन	

प्रमुख नाटक

मौलिक नाटक	भास नाटक
अनघ	स्वप्नवासवदत्ता
चरणदास	प्रतिमा
तिलोत्तमा	अभिषेक
निष्क्रिय प्रतिरोध	अविमारक

विसर्जन

गुप्त जी की 52 से भी अधिक काव्य रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें से कुछ अनुदित भी हैं। उन्होंने 'मधुप' उपनाम से 'विरहणी ब्रजांगन', 'प्लासी का युद्ध' और 'मेघनाद वध' नामक बंगला काव्य कृतियों का अनुवाद किया है तथा कुछ संस्कृत नाटकों के अनुवाद भी किये। इसी प्रकार 'रुबाइयात उमरखय्याम' भी उमर खयाम की रुबाइयों का हिन्दी रूपान्तर है। इनकी उल्लेखनीय मौलिक रचनाओं की तालिका में- रंग में भंग, जयद्रथ वध, पद्य प्रबंध, भारत भारती, शकुंतला, तिलोत्तमा, चंद्रहास, पत्रवली, वैतालिका, किसान, अनघ, पंचवटी, स्वदेश संगीत, हिन्दू, विपथगा, शक्ति विकटभट, गुरुकुल, झंकार, साकेत, यशोधरा, सिद्धराज, द्वापर, मंगलघट, नहुष, कुणालगीत, काबा और कर्बला, प्रदक्षिणा, जयभारत, विष्णुप्रिया आदि आते हैं।

पुरस्कार व सम्मान

मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी के प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि कहे जाते हैं। सन् 1936 में इन्हें काकी में अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया था। इनकी साहित्य सेवाओं के उपलक्ष्य में आगरा विश्वविद्यालय तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने इन्हें डी. लिट. की उपाधि से विभूषित भी किया। 1952 में गुप्त जी राज्य सभा के सदस्य मनोनीत हुए और 1954 में उन्हें 'पद्मभूषण' अलंकार से सम्मानित किया गया। इसके अतिरिक्त उन्हें हिन्दुस्तानी अकादमी पुरस्कार, 'साकेत' पर 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' तथा 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से भी अलंकृत किया गया। 'हिन्दी कविता' के इतिहास में गुप्त जी का यह सबसे बड़ा योगदान है। 'साकेत' उनकी रचना का सर्वोच्च शिखर है।

मृत्यु

मैथिलीशरण गुप्त जी का देहावसान 12 दिसंबर, 1964 को चिरगांव में ही हुआ। इनके स्वर्गवास से हिन्दी साहित्य को जो क्षति पहुंची, उसकी पूर्ति संभव नहीं है।

भारत के साहित्य इतिहास की चर्चा की जाए तो बहुत से ऐसे लेखाकार या हिंदी साहित्य के अनुभवी कवियों के नाम आए जिन्होंने भारत के गौरव को और ऊँचा कर दिया। ऐसा ही एक नाम है मैथिलीशरण गुप्त जी का। मैथिलीशरण

गुप्त हिंदी साहित्य के जाने माने कवि कहे जाते हैं। उन्होंने अपनी बहुत सी रचनाओं से सभी का दिल जीता था। वे हिंदी साहित्य के खड़ी बोली के बहुत ही महत्त्वपूर्ण और प्रथम कवि माने जाते है। उनका पहला कविता संग्रह "रंग में भंग" तथा इसके बाद "जयद्रथ वध" नामक साहित्य प्रकाशित हुआ। उन्होंने बंगाली में भी बहुत-सी साहित्य रचनाएं की जो कि "मेघनाथ वध" एवं "ब्रजांगना" का अनुवाद है।

प्रारंभ में मैथिलीशरण गुप्त की कविता का नाम सरस्वती था, जो कि ब्रज भाषा में प्रकाशित हुई थी। उनका पहला कविता संग्रह "रंग में भंग" तथा इसके बाद "जयद्रथ वध" नामक साहित्य प्रकाशित हुआ। उन्होंने बंगाली में भी बहुत सी साहित्य रचनाएं की जो की "मेघनाथ वध" एवं "ब्रजांगना" का अनुवाद है उनकी बाकी रचनाएँ ज्यादातर खरी बोली में थी जो की जयद्रथ-वध, भारत-भारती, पंचवटी, यशोधरा, द्वापर, सिद्धराज, नहुष, अंजलि और अर्द्ध, अजित, अर्जन और विसर्जन, काबा और कर्बला किसा, कुणाल गीत, गुरु तेग बहादुर, गुरुकुल, जय भारत, झंकार, पृथ्वीपुत्र, मेघनाद वध, सैरन्ध्री, साकेत, आदि थी।

मैथिलीशरण गुप्त की कविता यशोधरा

"माँ कह एक कहानी।"
बेटा समझ लिया क्या तूने मुझको अपनी नानी?"
"कहती है मुझसे यह चेटी, तू मेरी नानी की बेटी
कह माँ कह लेटी ही लेटी, राजा था या रानी?
माँ कह एक कहानी।"
"तू है हठी, मानधन मेरे, सुन उपवन में बड़े सवेरे,
तात भ्रमण करते थे तेरे, जहाँ सुरभि मनमानी।"
"जहाँ सुरभि मनमानी! हाँ माँ यही कहानी।"
वर्ण वर्ण के फूल खिले थे, झलमल कर हिमबिंदु झिले थे,
हलके झोंके हिले मिले थे, लहराता था पानी।"
"लहराता था पानी, हाँ-हाँ यही कहानी।"
"गाते थे खग कल-कल स्वर से, सहसा एक हंस ऊपर से,
गिरा बिद्ध होकर खग शर से, हुई पक्षी की हानी।"
"हुई पक्षी की हानी? करुणा भरी कहानी!"

चौंक उन्होंने उसे उठाया, नया जन्म सा उसने पाया,
इतने में आखेटक आया, लक्ष सिद्धि का मानी।"
"लक्ष सिद्धि का मानी! कोमल कठिन कहानी।"
"मांगा उसने आहत पक्षी, तेरे तात किन्तु थे रक्षी,
तब उसने जो था खगभक्षी, हठ करने की ठानी।"
"हठ करने की ठानी! अब बढ़ चली कहानी।"
हुआ विवाद सदय निर्दय में, उभय आग्रही थे स्वविषय में,
गयी बात तब न्यायालय में, सुनी सभी ने जानी।"
"सुनी सभी ने जानी! व्यापक हुई कहानी।"
राहुल तू निर्णय कर इसका, न्याय पक्ष लेता है किसका?
कह दे निर्भय जय हो जिसका, सुन लँ तेरी बानी"
"माँ मेरी क्या बानी? मैं सुन रहा कहानी।
कोई निरपराध को मारे तो क्यों अन्य उसे न उबारे?
रक्षक पर भक्षक को वारे, न्याय दया का दानी।"
"न्याय दया का दानी! तूने गुनी कहानी।"

मैथिलीशरण गुप्त की कविता की विषयवस्तु

यद्यपि हम हैं सिद्ध न सुकृती, व्रती न योगी,
पर किस अघ से हुए हाय ! ऐसे दुख-भोगी?
क्यों हैं हम यों विवश, अकिंचन, दुर्बल, रोगी?
दयाधाम हे राम ! दया क्या इधर न होगी ?।।1।।
देव ! तुम्हारे सिवा आज हम किसे पुकारें?
तुम्हीं बता दो हमें कि कैसे धीरज धारें?
किस प्रकार अब और मरे मन को हम मारें?
अब तो रुकती नहीं आँसुयों की ये धारें!।।2।।
ले ले कर अवतार असुर तुम ने हैं मारे,
निष्ठुर नर क्यों छोड़ दिये फिर बिना विचारे?
उनके हाथों आज देख लो हाल हमारे,
हम क्या कोई नहीं दयामय कहो, तुम्हारे?।।3।।
पाया हमने प्रभो! कौन सा त्रस नहीं है?
क्या अब भी परिपूर्ण हमारा ह्रास नहीं है?

मिला हमें क्या यहीं नरक का वास नहीं है,
विष खाने के लिए टका भी पास नहीं है!।।4।।
नहीं जानते, पूर्व समय क्या पाप किया है,
जिसका फल यह आज दैव ने हमें दिया है–
अब भी फटता नहीं वज्र का बना हिया है,
इसीलिए क्या हाय ! जगत में जन्म लिया है!।।5।।

2

हिन्दी निबन्ध का इतिहास

हिन्दी निबन्ध का जन्म भारतेन्दु-काल में हुआ। यह नवजागरण का समय था। भारतीयों की दीन-दुखी दशा की ओर लेखकों का बहुत ध्यान था। पुराने गौरव, मान, ज्ञान, बल-वैभव को फिर लाने का प्रयत्न हो रहा था। लेखक अपनी भाषा को भी हर प्रकार से सम्पन्न और उन्नत करने में लग गए थे और सबसे बड़ी बात यह थी कि इस काल के लेखक स्वतंत्र विचारों के थे। उनमें अक्खड़पन और फक्कड़पन भी था। ऐसा युग निबन्ध के बहुत अनुकूल होता है, इसलिए इस युग में जितने अच्छे निबन्ध लिखे गये उतने अच्छे नाटक, आलोचना, कहानी आदि नहीं लिखे गए।

भारतेन्दु युग

भारतेन्दु काल के वातावरण और परिस्थितियों से तो आप परिचित ही है। उस युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमधन', बालमुकुन्द गुप्त, राधाचरण गोस्वामी जैसे प्रमुख निबन्धकार हुए।

भारतेन्दु जी के निबन्ध भी अनेक विषयों पर हैं। 'काश्मीर कुसुम' 'उदयपुरोदय', 'कालचक्र', 'बादशाह दर्पण'-ऐतिहासिक, 'वैद्यनाथ धाम', 'हरिद्वार', सरयू पार की यात्रा'-विवरणात्मक, 'कंकण स्तोत्र'-व्यंग्यपूर्ण वर्णनात्मक और 'नाटक', 'वैष्णवता और भारतवर्ष' विचारात्मक निबन्ध हैं। भारतेन्दु सबसे अधिक

सफल हुए अपने व्यंगात्मक निबन्धों में। 'लेवी प्राणलेवी', 'स्वर्ग में विचार-सभा का अधिवेशन', 'पाँचवें पैगम्बर', 'अंग्रेज स्रोत', 'कंकड़ स्रोत' आदि में गजब का हास्य-व्यंग्य है ही 'सरयू पार की यात्रा' में भी भारतेन्दु अपने व्यंग्य का बढ़िया नमूना उपस्थित करते हैं। जैसे—वाह रे बस्ती। झक मारने बसती है। अगर बस्ती इसी को कहते हैं, तो उजाड़ किसे कहेंगे?

इनके निबन्धों की भाषा स्वच्छ और श्लेषपूर्ण है। कहीं-कहीं तो उर्दू की बढ़िया शैली भी आपने उपस्थित की। भाव और विचार की दृष्टि से युग की वे सभी विशेषताएं इनमें भी हैं, जो भट्ट जी या प्रतापनारायण मिश्र में हैं।

बालकृष्ण भट्ट अपने समय के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार कहला सकते हैं। इन्हें हिन्दी का 'मान्तेन, कहा जाता है। भट्ट जी ने सभी प्रकार के निबन्ध लिखे। 'मेला-ठेला', 'वकील'—वर्णनात्मक, 'आंसू', 'चन्द्रोदय', 'सहानुभूति', 'आशा माधुर्य', 'खटका'—भावात्मक 'आत्म-निर्भरता', 'कल्पना-शक्ति', 'तर्क' और 'विश्वास'—विचारात्मक निबन्ध हैं। 'खटका', 'इंगलिस पढ़े तो बाबू होय', 'रोटी तो कमा खाय किसी भांति', 'मुछन्दर', 'अकल अजीरन राग' आदि निबन्धों में मस्ती, हास-परिहास, विनोद-व्यंग्य सभी कुछ हैं। ऐसे निबन्धों की भाषा चलती और दैनिक व्यवहार की है। भट्ट जी की भाषा विषय के अनुकूल और अपने समय में सबसे अधिक मंजी हुई सबल और प्रभावशाली है। समाज, व्यक्ति, जीवन, धर्म, दर्शन, राष्ट्र, हिन्दी—सभी विषयों पर आपने लिखा। जन-साहित्य को जन-भाषा में लिखने वालों में प्रतापनारायण मिश्र का नाम सर्वप्रथम आएगा। इनके व्यक्तित्त्व और निबन्धों में निराला आकर्षण है। लापरवाही, चुभता व्यंग्य, गुदगुदीभरा विनोद इनकी रचनाओं की विशेषताएँ हैं। इस युग में इतनी चुलबुली भाषा लिखने वाला और कोई नहीं हुआ। यह 'ब्राह्मण' नामक पत्र निकालते थे, जिसमें इनके निबन्ध छपते थे। छोटे-छोटे विषयों पर इतने बढ़िया, मनोरंजन और उच्च उद्देश्य को लेकर किसी लेखक ने नहीं लिखा। 'नाक', 'भौंह', 'वृद्ध', 'दांत', 'पेट', 'मृच्छ' आदि विषयों को लेकर आपने अपने निबन्धों में मनोरंजन का सामान भी जुटाया और देश-प्रेम, समाज-सुधार, हिन्दी के प्रति प्रेम, स्वाभिमान, आत्म-गौरव का सन्देश भी दिया। इनकी शैली में घरेलू बोलचाल की शब्दावली तथा पूर्वी बोलियों की कहावतों और मुहावरों का प्रयोग मिलता है। लापरवाही के कारण भाषा की अशुद्धियाँ रहना साधारण बात है। 'आत्मीयता', 'चिन्ता', 'मनोयोग' इनके विचारात्मक निबन्ध हैं।

प्रेमधन जी अपने निरालेपन के लिए याद किए जाते हैं। उनका उद्देश्य यह नहीं था कि उनकी बात साधारण समाज तक पहुंचे, उसका मनोरंजन हो या उसके विचारों में परिवर्तन हो। कलम की करामात दिखाना ही उनका उद्देश्य था। वह स्वाभाविक, प्रवाहमय, सुबोध भाषा नहीं लिखते। बल्कि शब्दों की जड़ाई करते थे। भाषा बनावटी होते हुए भी उसमें कहीं-कहीं विवेचन की शक्ति पायी जाती है। आप 'नागरी नीरद' और 'आनन्द कादम्बिनी' नामक पत्र निकालते थे। इन्हीं में उनके निबन्ध छपा करते थे। इनके शीर्षक उनकी भाषा-शैली को प्रकट करते हैं, जैसे सम्पादकीय, सम्पत्ति सीर, हास्य, हरितांकुर, विज्ञापन और वीर बधूटियां। 'हमारी मसहरी' और 'हमारी दिनचर्या' जैसे मनोरंजक लेख उन्हीं के लिखे हुए हैं। 'फागुन', 'मित्र', 'त्तु-वर्णन' उनके अच्छे निबन्ध हैं।

बालमुकुन्द गुप्त इस युग के अन्तिम और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण निबन्धकार थे। 'शिवशम्भू' के नाम से 'भारतमित्र' में वह 'शिवशम्भू' का चिट्ठा' लिखा करते थे। हास्य-व्यंग्य के बहाने 'शिवशम्भू का चिट्ठा नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए। उनका व्यंग्य शिष्ट और नागरिक होता था। भाषा मिली-जुली हिन्दी-उर्दू। राधाचरण गोस्वामी को भी इस युग के प्रगतिशील लेखकों में गिना जाएगा। 'यमपुर की यात्रा' में उन्होंने धार्मिक अंधविश्वास का बहुत मजाक उड़ाया है। धार्मिक विचारों के लोग गाय की पूंछ पकड़कर वैतरणी पार करते हैं। इसमें कुत्ते के पूंछ पकड़कर वैतरणी पार कराई गई है। पहले ऐसी बात सोचना घोर पाप समझा जा सकता था।

भारतेन्दु-काल के निबन्धकारों की विशेषताएँ हैं–निबन्धों के विषयों की विविधता, व्याकरण-सम्बन्धी लापरवाही और अशुद्धियां, देशज या स्थानीय शब्दों का प्रयोग, शैली के विविध रूप और विचार-स्वतन्त्रता, समाज सुधार, देश भक्ति, पराधीनता के प्रति रोष आत्म-पतन पर खेद, देशोत्थान की कामना, हिन्दी सम्मान की रक्षाभावना, हिन्दू, पर्व-त्यौहारों के लिए उत्साह और नवीन विचारों का स्वागत। निबन्ध की एक विशेष शैली भी इस युग की विशेषता है–'राजा भोज का सपना' (शिवप्रसाद सितारे हिन्द), एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न (भारतेन्दु) एक अनोखा स्वप्न (बालकृष्ण भट्ट), यमपुर की यात्रा (राधाप्रसाद गोस्वामी)–इन रचनाओं में स्वप्न के बहाने राजनैतिक अधिकार पाने, समाज सुधार तथा धर्म-संस्कार का संदेश दिया गया है।

द्विवेदी युग

भारतेन्दु-युग के बाद द्विवेदी-युग आता है। भारतेन्दु-युग गद्य-साहित्य के बचपन का समय था। बचपन में लापरवाही, खिलवाड़, विनोद, मनोरंजन, मुग्धता, चंचलता रहती है। किशोर अवस्था में थोड़ी जिम्मेदारी, समझदारी, शिक्षा, नियम-पालन, साज-संवार, स्थिरता आ जाती है। इसी अवस्था में प्रतिस्पर्द्धा की भावना भी जागती है। अन्य साथियों की शिष्टता, शील, ज्ञान, आत्म-सम्मान आदि को देखकर उनके समान ही हम भी गुण विकसित करना चाहते हैं। यही बात भारतेन्दु युग के संदर्भ में समझनी चाहिए। भारतेन्दु-काल में साहित्य तो बहुत लिखा गया था, पर भाषा की भूलें साधारण बात थी। निबन्ध के विषय भी साधारण हुआ करते थे। इस युग में इन अभावों की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इस काल के निबन्धों का आरम्भ दो अनुवाद-पुस्तकों से हुआ। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अंग्रेज लेखक बेकन के निबन्धों का अनुवाद 'बेकन-विचार-रत्नावली' के नाम से, गंगा प्रसाद अग्निहोत्री ने मराठी लेखक चिपलूणकर के निबन्धों का अनुवाद प्रकाशित कराया। लेकिन यहाँ यह बात ध्यान रखने की है कि द्विवेदी युग का निबन्ध-साहित्य भारतेन्दु युग के निबन्ध-साहित्य के समान सम्पन्न नहीं है। महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, अध्यापक पूर्णसिंह और चन्द्रधर शर्मा गुलेरी इस युग के प्रमुख निबन्धकार हैं। गोविन्द नारायण मिश्र, पद्मसिंह शर्मा और श्यामसुन्दरदास का नाम दूसरी श्रेणी में लिया जा सकता है।

द्विवेदी युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम सबसे पहले आता है। अपने युग के यह आचार्य थे। आचार्य का काम होता है शिक्षा देना, ज्ञान-वर्द्धन कराना, समाज पर नया संस्कार डालना और सुधार करना। ये सब काम इन्होंने किये, इसलिए यह आचार्य कहलाए और इनके नाम पर ही इस काल का नाम द्विवेदी युग रखा गया। अपने निबन्धों और समालोचनाओं के द्वारा सबसे मुख्य काम इन्होंने भाषा-सुधार का किया। 'किंकर्त्तव्य' नामक निबन्ध में यह लिखते हैं—'कविता लिखने में व्याकरण के नियमों की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। शुद्ध भाषा का जितना मान होता है, अशुद्ध का नहीं होता। जहां तक सम्भव हो, शब्दों का मूल रूप न बिगाड़ना चाहिए। मुहावरे का विचार रखना चाहिए। क्रोध क्षमा कीजिए, इत्यादि वाक्य कान को अतिशय पीड़ा पहुंचाते हैं।' इस अवतरण से इनके भाषा सम्बन्धी विचार स्पष्ट हो जाते हैं।

द्विवेदी जी ने सभी प्रकार के निबन्ध लिखे। 'कवि और कविता' 'प्रतिभा', 'साहित्य की महत्ता' इनके विचारात्मक निबन्ध हैं। 'लोभ', 'क्रोध'

'संतोष'–भावात्मक, 'हंस का क्षीरनीर विवेक', 'जापान में पतंगबाजी', 'हजारों वर्ष पुराने खंडहर' और 'प्रताप सुषमा'–वर्णनात्मक है और 'हंस-संदेश' तथा 'नल का दुस्तर दूत-कार्य'–विवरणात्मक। यहाँ यह बात ध्यान रखने की है कि इनके निबन्धों में जानकारी अधिक रहती है, इनकी रचनाओं को पढ़कर ऐसा लगता है कि एक आचार्य शिष्य-मण्डली को पढ़ा रहा है।

माधवप्रसाद मिश्र भारतीय संस्कृति, धर्म-दर्शन, साहित्य कला के सच्चे उपासक थे। इनका अपना व्यक्तित्त्व था। यदि ये किसी को भारतीय और प्राचीन साहित्य का गौरव घटाने का प्रयत्न करते हुए पाते थे, तो उनकी आलोचना करते थे। आचार्य द्विवेदी और श्रीधर पाठक की भी उन्होंने निर्भय आलोचना की थी। इनकी भाषा निर्दोष, साफ-सुथरी, विषयानुकूल, व्यंग्यात्मक और प्रभावशाली है। संस्कृत का प्रभाव उन पर स्पष्ट है। इनके लिखे 'धृति', 'क्षमा', 'श्री वैष्णव सम्प्रदाय', 'काव्यालोचना', 'वेबर का भ्रम'–विचारात्मक और 'सब मिट्टी हो गया'–भावात्मक निबन्ध हैं। भारतेन्दु युग की यह परम्परा मिश्र जी के निबन्धों के साथ ही समाप्त हो गई।

अध्यापक पूर्णसिंह इस युग के सबसे प्रमुख, भावुक और विचारक निबन्धकार हैं। इससे अधिक गौरव की बात और क्या होगी कि इन्होंने केवल छः निबन्ध लिखे और फिर भी अपने समय के श्रेष्ठ लेखक माने गए। उनमें से प्रमुख हैं 'मजदूरी और प्रेम', 'आचरण की सभ्यता' और 'सच्ची वीरता'। अध्यापक जी के निबन्धों में प्रेरणा देने वाले नए-नए विचार हैं। इनकी भाषा बड़ी ही शक्तिशाली है। उसमें एक खास बाँकपन है जिससे भाव का प्रकाशन भी निराले ढंग से होता है। विषय भी ऐसे नए कि अब तक किसी को सूझे ही नहीं। साथ, ही इनमें भावुकता का माधुर्य भरा है। वीरता, आचरण, शारीरिक परिश्रम का जो महत्त्व उन्होंने समझाया, उसको ठीक समझा जाए तो आज धर्म का नया रूप सामने आ जाए। समाज में क्रांति हो जाए, मनुष्य और सारा देश उन्नति के शिखर पर पहुंच जाए। ''जब तक जीवन के अरण्य में पादरी, मौलवी, पंडित और साधु-संन्यासी, हल कुदाल और खुरपा लेकर मजदूरी न करेंगे तब तक उनका आलस्य जाने का नहीं।'' 'मजदूरी और प्रेम' का यह उद्धरण कितना महान् संदेश देता है। भाषा की लाक्षणिकता इनकी विशेषता है।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी भी स्वतंत्र विचारों के लिए प्रसिद्ध हैं। निबन्ध इन्होंने भी थोड़े ही लिखे। इनकी रचनाओं में भी जीवन को उठाने की प्रेरणा और नए विचारों का खजाना मिलता है। संस्कृत के महापण्डित होते हुए भी पुरानी लकीर

पीटने वाले ये नहीं थे। प्राचीन धार्मिक कथाओं की ये वैज्ञानिक और बुद्धसम्मत व्याख्या करते थे। 'कछुआ धर्म' नामक निबंध भी गम्भीर तर्कपूर्ण, प्रभावशाली, विचार-प्रधान शैली इनकी विद्वता और तर्क-कुशलता का सुन्दर उदाहरण है।

गोविन्द नारायण मिश्र का नाम उनकी विचित्र अलंकारपूर्ण संस्कृत शब्दावली से लदी काव्यमय और बनावटी शैली के लिए लिया जा सकता है। आपको याद होगा भारतेन्दु-काल में 'प्रेमघन' जी भी इसलिए याद किए जाते हैं।

प्रसाद-युग

प्रसाद युग हिन्दी साहित्य का स्वर्ण काल है। क्या कविता, क्या गद्य दोनों का विकास इस काल में ऊँचे शिखर पर पहुंचा। कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, आलोचना सभी का खूब विकास हुआ। वर्णन और विवरण प्रधान निबन्धों की रचना बहुत कम हुई, विचारात्मक और भावात्मक की अधिक। इन दोनों प्रकार के सर्वश्रेष्ठ निबन्ध इसी युग में लिखे गए। विचारात्मक निबन्धकारों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और भावात्मक निबन्धकारों में डॉ. रघुवीर सिंह, सिरमौर हैं। गुलाबराय, वासुदेवशरण अग्रवाल, शांतिप्रिय द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, वियोगी हरि और रायकृष्णदास का नाम भी उल्लेखनीय है।

गुलाबराय जी के सामने द्विवेदी-युग का सारा साहित्य-भण्डार था। इनके साहित्य का बहुत कुछ रंग द्विवेदी-युग का रहा। यह निबन्धकार पहले हैं, आलोचक बाद में। 'फिर निराशा क्यों? 'मेरी असफलताएं', 'अंधेरी कोठरी' इनके निबन्ध संग्रह हैं। 'मेरी असफलताएं' आत्मपरक या वैयक्तिक व्यंग्यात्मक निबन्धों का संग्रह है। शेषदोनों संग्रहों में विचारात्मक निबन्ध हैं। अन्तिम संग्रह मनोवैज्ञानिक निबन्धों का है। आपकी भाषा बड़ी सरल और सुबोध होती है। विचारात्मक और मनोवैज्ञानिक निबन्धों तक में भाषा या भाव की उलझन नहीं मिलेगी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का निबन्ध-संग्रह 'चिन्तामणि' भारतीय साहित्य में ही नहीं, विश्व-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। विचारात्मक निबन्धों में शुक्ल जी के निबन्ध सर्वश्रेष्ठ हैं। इनमें विचारों की बारीकी और गंभीरता, भावों की मनोवैज्ञानिकता, भाषा का गठन और उसकी शक्ति आदि आदर्श हैं। 'चिन्तामणि' में 'क्रोध', 'ईर्ष्या', 'लोभ और प्रीति', 'उत्साह', 'श्रद्धाभक्ति', 'भय', 'करुणा', 'घृणा', 'लज्जा' और 'ग्लानि' आदि विषयों पर लिखे निबन्ध मानसिक भावों, वृत्तियों और विचारों से सम्बन्ध रखते हैं। 'कविता क्या है?'

'साधारणीकरण और व्यक्तिवैचित्रय' साहित्यिक व्याख्या और विश्लेषण सम्बन्धी हैं और 'तुलसीदास का भक्ति मार्ग', 'मानस की धर्म-भूमि' आदि साहित्य समीक्षा सम्बन्धी। 'मित्रता' और 'प्राचीन भारतीयों का पहरावा' परिचयात्मक वर्णनात्मक निबन्ध हैं।

मनोभावों या चित्तवृत्तियों का विवेचन करते हुए वे राजनीति, समाजनीति, धर्म, पारस्परिक व्यवहार आदि पर भी यह अपने मौलिक विचार प्रकट करते चलते हैं। इन निबन्धों की शैली में लेखक का गहन ज्ञान और गम्भीर व्यक्तित्त्व प्रकट होता है। थोड़े शब्दों में बड़ी से बड़ी बात कहने की शक्ति इनमें है। जो उच्च स्थान इनका आलोचक के रूप में है, वही निबन्धकार के रूप में भी है। लोक मंगल की भावना भी इनके निबन्धों की प्रमुख विशेषता है।

छायावाद-युग के कवियों ने भी कुछ रेखाचित्र, संस्मरण और ललित निबन्धों की सम्मिश्रित विधा में रचनाएं की हैं। ऐसी रचनाओं में महादेवी वर्मा की ये पुस्तकें उल्लेखनीय मानी जाती हैं–'स्मृति की रेखाएँ', 'अतीत के चलचित्र' तथा 'शृंखला की कड़ियां'। इनके अतिरिक्त गम्भीर विचारपूर्ण निबन्धों के लेखक सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'को भी नहीं भुलाया जा सकता। उसके तीन निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'पृथिवी पुत्र' में आपने एक स्थान पर कहा है–''विदेशी विचारों को मस्तिष्क में भर कर उन्हें अधपके ही बाहर उंडेल देने से किसी साहित्य का लेखक लोक में चिर जीवन नहीं पा सकता। हिन्दी साहित्यकारों को अपनी खुराक भारत की सांस्कृतिक और प्राकृतिक भूमि से प्राप्त करनी चाहिए।'' ये भारतीयता के पुजारी और पक्ष-पोषक थे। 'कला संस्कृति' में प्राचीन और नवीन भारतीय ऋषियों, दार्शनिकों, कवियों और कलाकारों के विषय में निबन्ध हैं। इन्होंने 'समुद्र-मंथन', 'कल्पवृक्ष' आदि की व्याख्या नवीन वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक ढंग से की है। आपके सभी निबन्ध विचारात्मक हैं।

निबन्ध-लेखकों में शांतिप्रिय द्विवेदी को भी नहीं भुलाया जा सकता। 'संचारिणी', 'सामयिकी', 'पदचि', 'युग और साहित्य', 'परिव्राजक की प्रथा' इनकी पुस्तकें हैं। गांधीवादी नैतिकता और छायावादी भाषा रचनाओं की विशेषता है। 'धरातल' में आप अपने को समाजवाद का हिमायती बताते हैं। इस संग्रह में जीवन की समस्याओं का भौतिक समाधान खोजा गया है। विचारात्मक और भावात्मक दोनों प्रकार के निबन्ध उन्होंने लिखे हैं। हिन्दी निबन्ध-साहित्य को इनकी देन है इनके वैयक्तिक निबन्ध। इस क्षेत्र में यह अद्वितीय है। अपने माता-पिता-बहन के जो चित्र इन्होंने खींचे हैं उनमें करुणा की नमी है और हृदय

को स्पर्श करने वाली सच्चाई। इनके ये अनुपम वैयक्तिक निबन्ध 'पदचि"' और 'परिव्राजक की प्रथा' में संगृहीत हैं। आप काव्यमय, कोमल-कान्त भाषा का प्रयोग करते हैं।

डॉ. रघुवीर सिंह, माखनलाल चतुर्वेदी, रायकृष्ण दास, वियोगी हरि आदि ने भावात्मक निबन्ध लिखे। रघुवीर सिंह और माखनलाल जी के निबन्ध काफी बड़े हैं, शेष दोनों के बहुत छोटे-छोटे एक डेढ़ पृष्ठ के। इनके निबन्धों की शैली अन्य निबन्धकारों की शैली से भिन्न हैं—छोटे-छोटे वाक्य, कहीं खंडित, कहीं अपूर्ण। आश्चर्य, शोक, करुणा, प्रेम का आवेश इसमें उमड़ता-सा दिखता है, ऐसी रचनाओं को हिन्दी गद्यकाव्य का नाम दिया गया है। हम इन्हें निबन्ध मानते हैं। गद्य-काव्य के भीतर तो कहानी, नाटक, उपन्यास, शब्दचित्र, निबन्ध, आलोचना, सभी कुछ सम्मिलित हैं।

रघुवीर सिंह इतिहास के विद्वान हैं। मुगलकालीन घटनाओं, इमारतों, चरित्रों को लेकर इन्होंने 'अतीत स्मृति' और 'शेष स्मृतियाँ' दो पुस्तकें लिखी। वैसे तो इन निबन्धों में वर्णन और विवरण है, फिर भी ये भावात्मक हैं। क्योंकि लेखक ने इनमें वर्णन को महत्त्व नहीं दिया, इनको देखकर अपने हृदय में उठने वाले भावों को ही प्रकाशित किया है।

माखनलाल जी ने विचार-प्रधान निबन्धों को भी भावात्मक शैली में लिखा। 'युग और कला', 'साहित्य देवता', 'रंगों की बोली', 'व्यक्तित्त्व' आदि निबन्ध—कला, साहित्य, चित्रकला और व्यक्तित्त्व विषयों पर हैं, ये विचारात्मक हो सकते हैं। लेकिन विचार भी प्रभावात्मक ढंग से दिये गये हैं। लेखक की मुग्धता, श्रद्धा, करुणा, सहानुभूति ही इसमें प्रकट हुई है।

वियोगी हरि और रायकृष्णदास जी की रचनाओं में भक्ति, प्रेम, विस्मय, पश्चाताप, आत्म-निवेदन, मनोमुग्धता, करुणा, संवेदना आदि अनेक भाव और भावना प्रकट हुई हैं। 'भावना' और 'अन्तर्नाद' वियोगी हरि की और 'साधना' रायकृष्ण दास की पुस्तक है। इन सभी निबन्धकारों ने उर्दू शब्दों का भी यथावसर प्रयोग किया है।

प्रसादोत्तर युग

प्रसादोत्तर या प्रगतियुग में निबन्ध-साहित्य ने सबसे अधिक विकास किया। विषयों की संख्या और विविधता की दृष्टि से तो इस युग का मुकाबला ही नहीं। यह युग उथल-पुथल का युग है। दूसरा विश्वयुद्ध हुआ, समाजवादी विचारों का

आगमन हुआ। भारत स्वतंत्र होकर विभाजित हुआ। प्राचीन साहित्य, संस्कृति और कला की ओर हमारा ध्यान गया। अनेक आर्थिक एवं सामाजिक समस्याएं भी पैदा हुईं। इन सब बातों की छाया निबन्धों में भी मिलती है। इस युगके चार निबन्धकार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, जैनेन्द्र कुमार भवन्त आनन्द कौशल्यायन तथा यशपाल।

कौशल्यायन जी बौद्धभिक्षु थे और समाजवादी विचारों का इन पर बहुत प्रभाव था। निबन्ध तो इन्होंने बहुत नहीं लिखे, पर पृथक् विषय की दृष्टि से इनका महत्त्व है। 'जो न भूल सका' इनके संस्मरणात्मक निबन्धों का संग्रह है, जिनमें सामाजिक विषमता, धार्मिक शोषण, आर्थिक उत्पीड़न के तीखे चित्र हैं। धर्म को यह शोषण का संगठित साधन बताते हैं और अमीरों के भवनों को गरीबों की हड्डियों की ईंटों और खून के चूने से बना मानते हैं। जनवादी लेखक होने से इनकी भाषा सरल है।

प्रगतिवादी निबन्ध-साहित्य में यशपाल बेजोड़ हैं। इनके ये निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं–'चक्कर क्लब', 'न्याय का संघर्ष, 'गांधीवाद की शव परीक्षा', 'देखा, सोचा, समझा', 'बात में बात', 'राम-राज्य की कथा' इन सभी पुस्तकों के नामों से भी पता चलता है कि ये समाजवाद के समर्थक ही नहीं, प्रचारक भी हैं। पुरानी परम्पराओं, समाज के ढांचे, धर्म की बुनियादों पर उन्होंने बड़े जोश के साथ वार किए हैं। इनका विश्वास है कि पुराने दर्शन और संस्कृति, मानव की उन्नति में रोड़े हैं। इसलिए इनका विरोध यह निडर होकर करते हैं। वर्तमान समाज में धन के गलत बंटवारे के कारण कोई राजा बन गया और कोई गुलाम। वे कहते हैं कि 'मानव की घृणा', मानव से मानव की शत्रुता, मानव द्वारा मानव का शोषण और अपमान तभी दूर हो सकेगा, जब सबको अपने परिश्रम का फल मिले, विकास का अवसर प्राप्त हो।' सभ्यता, संस्कृति, कला, साहित्य, समाज सभी के विषय में इन्होंने अपने मौलिक विचार प्रकट किए। विविधता की दृष्टि से इन्होंने हिन्दी निबन्ध-साहित्य को धनी बताया है।

जैनेन्द्र कुमार शुद्ध रूप से विचारक हैं। धर्म, युद्ध, न्याय, राष्ट्रीयता, दान की बात, दीन की बात, पैसा कमाई और भिखाई, गांधीवाद का भविष्य, रोटी का मोर्चा, संस्कृति की बात, उपवास और लोकतंत्र, दुःख, सत्यं शिवं सुन्दरं, साहित्य की सच्चाई, प्रगतिवाद, जड़-चेतन, सम्पादकीय मैटर-इनके इन निबन्धों से विषय की विविधता का तो पता चलता ही है, यह भी पता चलता है कि लेखक समाज, साहित्य, धर्म, राजनीति, जीवन की यथार्थ उलझनों आदि किसी

से भी बेखबर नहीं। इनके ये निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं–'जड़ की बात', पूर्वोदय', 'जैनेन्द्र के विचार' 'इतस्ततः'। इनके निबन्धों की विशेषताएं हैं–गांधीवाद, नैतिकता, संस्कृति-प्रेम, मौलिक विचार, स्वतंत्रता और सबल, संक्षिप्त गठी हुई शैली। व्यक्तित्त्व और शैली को निबन्ध का प्राण मानें, तो जैनेन्द्र जी एक महान लेखक हैं। भाषा सरल, हाट-घाट-बाट की है, लेकिन उसमें अर्थ गजब का मिलेगा। इनकी शैली के लिए कुछ अवतरण देखिए:–

व्यवस्था का दल कागजी है।

काम उसके दफ्तरी है।

मत पता लगने दो कि नीचे जान है।

दिलेरी डर से पैदा होती है।

उस नीयत का मुँह बाहर चाहे न दीखता हो, पेट में छिपी उसकी जड़ है जरूर।

निबन्धकारों में राहुल सांकृत्यायन का नाम भी महत्त्वपूर्ण है। इनके निबन्ध देश-दशा, राजनीति, यात्रा-वृत्तान्त तथा इतिहास को लेकर ही होते हैं। देश-दशा और राजनीति से सम्बन्धित निबन्धों के एक संग्रह का नाम है–'तुम्हारा क्षय'। इस संग्रह के सभी निबन्धों का निष्कर्ष यह है कि जो रूढ़िवादी है, जो रास्ता रोककर खड़े हैं, उनका क्षय हो। इनके कुछ संस्मरणात्मक निबन्धों के संग्रह ये हैं बचपन की स्मृतियां, जिनका मैं कृतज्ञ, मेरे असहयोग के साथी, राहुल जी का अपराध आदि। राहुल जी के असली व्यक्तित्त्व और निबन्धकार की आत्मा का यदि दर्शन करना हो तो उनका 'घुमक्कड़ शास्त्र' पढ़ना चाहिए।

राहुल जी जैसी मस्ती और जैनेन्द्र कुमार जैसी शैली की झलक कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के निबन्धों में मिलती है। इनके निबन्धों के 6 संग्रह हैं–'जिन्दगी मुस्कराई', 'आकाश के तारे', 'धरती के फूल', 'दीप जले' 'शंख बजे', 'माटी हो गयी सोना', 'महके आंगन, चहके द्वार' तथा 'बूँद-बूँद सागर लहराया'।

आधुनिक निबन्धकारों में विद्यानिवास मिश्र का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने अधिकतर ललित निबन्ध लिखे हैं। इन निबन्धों में कविता और पाण्डित्यपूर्ण शास्त्र का आनन्द एक साथ मिलता है। इनके तीन निबन्ध संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं–(1) छितवन की छाँह, (2) कदम की फूली डाल तथा (3) तुम चन्दन हम पानी। नये निबन्धकारों में प्रभाकर माचवे, नामवर सिंह, हरिशंकर परसाई, श्रीनिधि सिद्धान्तालंकार, शरद जोशी, श्री लाल शुक्ल आदि के नाम उल्लेखनीय

हैं। प्रभाकर माचवे के निबन्धों के संग्रह का नाम है–'खरगोश के सींग' और नामवर सिंह का निबन्ध-संग्रह है–बकलम-खुद'। हरिशंकर परसाई के व्यंग्य-विनोदपूर्ण निबन्धों में मस्ती और जान है। 'भूत के पाँव' 'सदाचार का ताबीज' और 'निठल्ले की डायरी' में उनके व्यंग्य लेख संग्रहीत हैं। विद्या निवास मिश्र का 'छितवन की छाह', 'तुम चन्दन हम पानी', 'आंगन का पंछी' 'बनजारामन' और 'मेरे राम का मुकुट' भीग रहा है', कुबेर नाथ राय का 'प्रिया-नीलकंठी', 'गन्ध मादन', 'माया बीज', विवेकी राय का 'आम रास्ता नहीं है', 'देवेन्द्र सत्यार्थी का 'एक युग का प्रतीक' हरिशंकर परसाई का 'शिकायत मुझे भी है' हरीशनवल का 'बागपत के खरबूजे आदि प्रसिद्ध निबन्ध संकलन हैं।

हिन्दी निबन्ध लेखन की परम्परा अत्यन्त समृद्ध है, लेकिन इधर कुछ वर्षो में इस क्षेत्र में नये लेखकों का आगमन बहुत कम हुआ है। ललित भावात्मक, विचारात्मक निबन्ध लेखन की प्रवृत्ति कम हुई है और जो लिख भी रहे हैं वे पुरानी पीढ़ी के ही लेखक हैं। नये लेखकों की निबन्ध लेखन की ओर से यह उदासीनता अत्यन्त चिन्ताजनक है।

हिन्दी निबन्ध का जन्म भारतेन्दु-काल में हुआ। यह नवजागरण का समय था। भारतीयों की दीन-दुखी दशा की ओर लेखकों का बहुत ध्यान था। पुराने गौरव, मान, ज्ञान, बल-वैभव को फिर लाने का प्रयत्न हो रहा था। लेखक अपनी भाषा को भी हर प्रकार से सम्पन्न और उन्नत करने में लग गए थे और सबसे बड़ी बात यह थी कि इस काल के लेखक स्वतंत्र विचारों के थे। उनमें अक्खड़पन और फक्कड़पन भी था। ऐसा युग निबन्ध के बहुत अनुकूल होता है, इसलिए इस युग में जितने अच्छे निबन्ध लिखे गये उतने अच्छे नाटक, आलोचना, कहानी आदि नहीं लिखे गए।

3

हिन्दी नाटक का इतिहास

प्राचीन हिन्दी नाटक

हिन्दी साहित्य में नाटक का विकास आधुनिक युग में ही हुआ है। इससे पूर्व हिन्दी के जो नाटक मिलते हैं, वे या तो नाटकीय काव्य हैं अथवा संस्कृत के अनुवाद मात्र या नाम के ही नाटक हैं, क्योंकि उनमें नाट्यकला के तत्त्वों का सर्वथा अभाव है, जैसे नेवाज का 'शकुन्तला', कवि देव का 'देवमायाप्रपंच', हृदयराम का 'हनुमन्नाटक' राजा जसवन्त सिंह का 'प्रबोधचन्द्र चन्द्रोदय' नाटक आदि। रीवां नरेश विश्वनाथ सिंह का 'आनन्द रघुनन्दन' नाटक हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक माना जाता है। जो लगभग 1700 ई. में लिखा गया था, किन्तु एक तो उसमें ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है, दूसरे वह रामलीला की पद्धति पर है, अत: वह भी आधुनिक नाट्यकला से सर्वथा दूर है। हिन्दी साहित्य के आदि और मध्य युग में गद्य अत्यन्त अविकसित स्थिति में था और अभिनयशालाओं का सर्वथा अभाव था। अस्तु, हिन्दी साहित्य के आदि और मध्य युग में नाट्यकला का विकास न हो सका, जबकि हिन्दी लेखकों के सम्मुख संस्कृत की नाट्यकला अत्यन्त विकसित और उन्नत अवस्था में विद्यमान थी। आधुनिक युग में हिन्दी नाटक का सम्पर्क अंग्रेजी से स्थापित हुआ। अंग्रेज लोग नाट्यकला और मनोरंजन में अत्यधिक रुचि रखते थे और साहित्य में नाटकों की रचना भी प्रभूत मात्रा में हो चुकी थी। इसके साथ ही इस युग में हिन्दी-गद्य भी स्थिर हो गया

और उसमें अभिव्यंजना शक्ति का भी विकास हो गया। इसलिए हिन्दी-नाट्यकला को पनपने का समुचित अवसर इसी युग में आकर प्राप्त हुआ।

आधुनिक हिन्दी नाटक

आधुनिक काल की अन्य गद्य-विधाओं के ही समान हिन्दी नाटक का भी आरम्भ पश्चिम के संपर्क का फल माना जाता है। भारत के कई भागों में अंग्रेजों ने अपने मनोरंजन के लिए नाट्यशालाओं का निर्माण किया जिनमें शेक्सपीयर तथा अन्य अंग्रेजी नाटककारों के नाटकों का अभिनय होता था। उधर सर विलियम जोन्स ने फोर्ट विलियम कॉलेज में संस्कृत के 'अभिज्ञान शाकुन्तलं' के हिन्दी अनुवाद के अभिनय की भी प्रेरणा दी। इस बीच 'अभिज्ञान शाकुन्तलं' के कई हिन्दी अनुवाद हुए जिनमें राजा लक्ष्मण सिंह का अनुवाद आज भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। सन् 1859 में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता बाबू गोपालचन्द्र ने 'नहुष' नाटक लिखा और उसको रंगमंच पर प्रस्तुत किया। इधर पारसी नाटक कम्पनियां नृत्य–संगीत प्रधान, नाटकों को बड़े धूम-धड़ाके से प्रस्तुत कर रही थी जिससे सुरुचि सम्पन्न तथा साहित्यिक गुणों के खोजी हिन्दी-साहित्यकार क्षुब्ध थे। इस सबसे प्रेरित होकर भारतेन्दु बाबू ने जनता की रुचि का परिष्कार करने के लिए स्वयं अनेक नाटक लिखे और अन्य लेखकों को नाट्य साहित्य की रचना के लिए प्रोत्साहित किया।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हिन्दी-नाट्यकला के विकास को चार कालों में बाँटा जा सकता है–

(1) भारतेन्दुयुगीन नाटक–1850 से 1900 ई.
(2) द्विवेदी युगीन नाटक–1901 से 1920 ई.
(3) प्रसाद युगीन नाटक–1921 से 1936 ई.
(4) प्रसादोत्तर युगीन नाटक–1937 से अब तक

भारतेन्दु-युगीन नाटक

हिन्दी में नाट्य साहित्य की परम्परा का प्रवतर्तन भारतेन्दु द्वारा होता है। भारतेन्दु युग नवोत्थान का युग था। भारतेन्दु देश की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक दुर्दशा से आहत थे, अतः साहित्य के माध्यम से उन्होंने समाज को जाग्रत करने का संकल्प लिया। समाज को जगाने में नाटक सबसे प्रबल सिद्ध होता है। भारतेन्दु ने इस तथ्य को पहचाना और नैराश्य के अन्धकार

में आशा का दीप जलाने के लिए प्रयत्नशील हुए। युग-प्रवतर्तक भारतेन्दु ने अनुदित/मौलिक सब मिलाकर सत्रह नाटकों की रचना की, जिनकी सूची इस प्रकार है–

(1) विद्यासुन्दर (1868), (2) रत्नावली (1868), (3) पाखण्ड विखंडन (1872), (4) वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1873),

(5) धनंजय विजय (1873), (6) प्रेम जोगिनी, (1874), (7) सत्यहरिश्चन्द्र (1875), (8) मुद्राराक्षस (1875),

(9) कर्पूर मंजरी (1876), (10) विषस्य विषमोषधम् (1876), (11) श्री चन्द्रावली (1875), (12) भारत-दुर्दशा (1876),

(13) भारत जननी (1877) (14) नीलदेवी (1880), (15) दुर्लभ-बन्धु (1880), (16) अन्धेर नगरी (1881), (17) सती प्रताप (1884)।

मौलिक नाटक

भारतेन्दु जी की मौलिक कृतियों में वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, प्रेमयोगिनी, विषस्य विषमोषधम्, चन्द्रावली, भारत दुर्दशा, नीलदेवी, अंधेर नगरी तथा सती प्रताप हैं। वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, प्रेम योगिनी और पाखण्ड विखंडन में धार्मिक रूढ़ियों और विडम्बनाओं से ग्रस्त समाज के पाखण्ड, आडम्बर, भ्रष्टाचार आदि का नाटकीय आख्यान हुआ है। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में ऊपर से सफेदपोश दिखने वाले धर्मात्माओं के साथ ही तत्कालीन देशी नरेशों और मंत्रियों के व्याभिचार की पोल खोली गयी है। अपने युग की धार्मिक स्थिति के प्रति जो तीव्र आक्रोश नाटककार में है, वही उसकी अपूर्ण नाटिका 'प्रेमयोगिनी' में प्रस्तुत हुआ है। 'पाखण्ड विखंडन' में हिन्दुओं के सन्त-महन्तों की हीन दशा का चित्रण हुआ है। इस प्रकार धार्मिक पाखण्डों का खण्डन करना ही इन नाटकों का मूल स्वर रहा है।

भारतेन्दु-युग में अंग्रेजों ने बहुत से राजाओं से उनका शासन छीन कर उनका राज्य अपने अधीन कर लिया था। अंग्रेजों की इस नीति की प्रशंसा पर गुलामी के भय के द्वन्द्व की परिकल्पना 'विषस्य विषमौषधम्' प्रहसन में साकार हो उठी है। देशोद्धार की भावना का संघर्ष भारतेन्दु जी के 'भारत जननी' और 'भारत दुर्दशा' में घोर निराशा के भाव के साथ प्रस्तुत होता है। 'भारत दुर्दशा' में भारत के प्राचीन उत्कर्ष और वर्तमान अध:पतन का वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है–

रोअहु सब मिलि, आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥

भारतेन्दु ने राजनीतिक संघर्ष की पृष्ठभूमि पर नौकरशाही की अच्छी आलोचना करते हुए 'अंधेर नगरी' प्रहसन लिखा है। 'अन्धेर नगरी' के चौपट राजा को फांसी दिलाकर नाटककार कामना करता है कि कभी इस अयोग्य राजा की तरह नौकरशाही भी समाप्त होगी और देश के कुशासन की समाप्ति होगी। अंग्रेजों के शासन से देश मुक्ति की कामना ही 'नील देवी' नाटक में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर उभरती है। साथ ही तत्कालीन समाज में तीव्रता से उठ रहे 'नारी स्वातंत्र्य' के पक्ष-विपक्ष के द्वन्द को भी प्रस्तुत किया है।

'चन्द्रावली' और 'सती प्रताप' प्रेम की कोमल अभिव्यंजना से अभिभूत नाटक हैं। चन्द्रावली में ईश्वरोन्मुख प्रेम का वर्णन है। 'सती प्रताप' में भी पति-प्रेम का अनुकरणीय उज्ज्वल आदर्श है। इस प्रकार भारतेन्दु के नाटकों में भी प्रेम धारा तथा शृंगारिक मोहकता का वातावरण बना रहा है।

अनुदित और रूपान्तरित नाटक

भारतेन्दु ने अंग्रेजी, बंगला तथा संस्कृत के नाटकों के हिंदी अनुवाद भी किए, जिनमें रत्नावली नाटिका, पाखण्ड विखंडन, प्रबोध-चंद्रोदय, धनंजय-विजय, कर्पूर मंजरी, मुद्रा राक्षस तथा दुर्लभ बन्धु आदि हैं। अंग्रेजी से किए गए अनुवादों में भारतेन्दु की एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने उसमें भारतीय वातावरण एवं पात्रों का समावेश किया है। सभी नाटकों में मानव-हृदय के भावों की अभिव्यक्ति के लिए गीतों की योजना की है। इन नाटकों का अनुवाद केवल हिन्दी का भण्डार भरने की दृष्टि से नहीं किया गया बल्कि हिन्दी नाटकों के तत्त्वों में अपेक्षित परिवर्तन के लिए दिशा-निर्देश करने के उद्देश्य से किया गया। रूपांतरित नाटकों में 'विद्या सुन्दर' और 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक आते हैं। 'विद्यासुन्दर' में प्रेम विवाह का समर्थन करते हुए भारतेन्दु मां-बाप के आशीर्वाद को अनिवार्य मानते हैं। 'सत्य हरिश्चन्द्र' में सामाजिक विकृतियों से ऊपर उठ कर सत्य के आदर्शों से अनुप्राणित होने का आह्वान किया है।

नाट्य-शास्त्र के गम्भीर अध्ययन के उपरान्त भारतेन्दु ने 'नाटक' निबन्ध लिख कर नाटक का सैद्धान्तिक विवेचन भी किया है। सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को लेकर-अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक एवं मौलिक नाटकों की रचना ही नहीं की, अपितु उन्हें रंगमंच पर खेलकर भी दिखाया है। उनके नाटकों

में जीवन और कला, सुन्दर और शिव, मनोरंजन और लोक-सेवा का सुन्दर समन्वय मिलता है। उनकी शैली सरलता, रोचकता एवं स्वाभाविकता के गुणों से परिपूर्ण है। भारतेन्दु अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे। सबसे बड़ी बात यह है कि वे अद्‌भुत नेतृत्व-शक्ति से युक्त थे। वे साहित्य के क्षेत्र में प्रेरणा के स्रोत थे। फलतः अपने युग के साहित्यकारों और नाटक तथा रंगमंच की गतिविधियों को प्रभावित करने में सफल रहे। इसके परिणामस्वरूप प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास, लाला श्रीनिवास, देवकी नन्दन खत्री आदि बहुसंख्यक नाटककारों ने उनके प्रभाव में नाट्य रचना की। यह भी विचारणीय है कि भारतेन्दु मण्डल के नाटककारों ने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, चरित्र प्रधान राजनैतिक आदि सभी कोटियों के नाटक लिखे। इस युग में लिखे गये नाटक परिमाण और वैविध्य की दृष्टि से विपुल हैं। यहाँ मुख्य धाराओं का परिचय प्रस्तुत है:

(क) पौराणिक धारा–इसकी तीन उप-धाराएं–(1) रामचरित सम्बन्धी, (2) कृष्णचरित सम्बन्धी तथा (3) अन्य पौराणिक आख्यानक सम्बन्धी हैं। रामचरित सम्बन्धी नाटकों में देवकीनन्दन खत्री-कृत 'सीताहरण' (1876) और 'रामलीला' (1879), शीतलाप्रसाद त्रिपाठी-कृत 'रामचरित नाटक' (1891) उल्लेखनीय हैं। कृष्ण चरित सम्बन्धी नाटकों में अम्बिकादत्त व्यास-कृत 'ललिता' (1884), हरिहरदत्त दूबे-कृत 'महारास' (1885) और 'कल्पवृक्ष' तथा सूर्यनारायण सिंह-कृत 'श्यामानुराग नाटिका' (1899) उल्लेखनीय हैं। कृष्ण-परिवार के व्यक्तियों के चरित्र से सम्बन्धी नाटकों में चन्द्र शर्मा-कृत 'ऊषाहरण' (1887), कार्तिक प्रसाद खत्री-कृत ऊषाहरण (1892) और अयोध्या सिंह उपाध्याय-कृत 'प्रद्युम्न-विजय' (1893) तथा 'रुक्मणी परिणय' (1894) हैं। पौराणिक आख्यानकों से सम्बन्धी गजराजसिंह-कृत 'द्रोपदी हरण' (1882), श्री निवासदास-कृत 'प्रींद चरित्र' (1888), बालकृष्ण भट्ट-कृत 'नल-दमयन्ती स्वयंवर' (1895) और शालिग्राम लाल-कृत अभिमन्यु (1898) प्रसिद्ध हैं।

(ख) ऐतिहासिक धारा–ऐतिहासिक नाटक-धारा 'नीलदेवी' से प्रारम्भ होती है। ऐतिहासिक नाटकों में श्रीनिवासदास-कृत 'संयोगिता स्वयंवर' (1886), राधाचरण गोस्वामी-कृत 'अमर सिंह राठौर' (1895) और राधाकृष्ण दास-कृत 'महाराणा प्रताप' (1896) ने विशेष ख्याति प्राप्त की।

(ग) समस्या-प्रधान धारा–भारतेन्दु ने अपने सामाजिक नाटकों और प्रहसनों में नारी समस्या को जिस ढंग से उठाया था, वहीं उनके मण्डल के सभी

नाटककारों पर छाया रहा। प्राचीन आदर्शों के अनुरूप उनमें पतिनिष्ठा की प्रतिष्ठा की गयी और नवीन भावनाओं के अनुरूप, बाल-विवाह-निषेध, पर्दा-प्रथा का विरोध और विधवा-विवाह तथा स्त्री-शिक्षा का समर्थन किया गया। श्री राधाचरणदास-कृत 'दु:खिनी बाला' (1880), प्रतापनारायण मिश्र-कृत 'कलाकौतुक' (1886), बालकृष्ण भट्ट-कृत 'जैसा काम वैसा परिणाम' (1913), काशी नाथ खत्री-कृत 'विधवा विवाह' (1899) बाबू गोपालराम गहमरी-कृत 'विद्या विनोद' आदि नाटक नारी-समस्याओं को केन्द्र-बिन्दु मानकर लिखे गये। इन समस्या-प्रधान नाटकों का मूल स्वर समाज सुधार है। इस युग में जो तीव्र संघर्ष सामाजिक स्तर पर सुधारवाद की भावना से हो रहा था, वैसा इस काल के नाटकों में नहीं दिखाई देता। इनमें नाटक के नाम पर समस्याओं का वर्णन मात्र हुआ है। फिर भी इनमें सामाजिक जागरुकता मुख्य हुई है। इसमें संदेह नहीं कि ये अपने इसी स्वरूप में आगे के नाटकों के लिए कड़ी या आधार रहे।

(घ) प्रेम-प्रधान धारा–रीतिकाल की शृंगारिक प्रवृत्ति भारतेन्दु युग की कविताओं में ही नहीं नाटकों में भी देखने को मिल जाती है। प्रेम-प्रधान रोमानी नाटकों में श्रीनिवास दास-कृत 'रणधीर प्रेममोहनी' (1877), किशोरीलाल गोस्वामी-कृत 'मयंक मंजरी' (1891) और 'प्रणयिनी परिणय' (1890), खड्ग बहादुरमल-कृत 'रति कुसुमायुध' (1885), शालिग्राम शुक्ल-कृत लावण्यवती' सुदर्शन (1892) तथा गोकुलनाथ शर्मा-कृत 'पुष्पवती' (1899) उल्लेखनीय हैं। यद्यपि इन नाटकों में उपदेशों की भी सर्वत्र भरमार है जिनमें समय का सदुपयोग, वेश्या से घृणा, छोटे-बड़े के भेद की व्यर्थता, भाग्यवाद में विश्वास आदि विषयों पर भी उपदेश दिये गये हैं, फिर भी इन नाटकों की विषय-वस्तु तथा अभिप्राय रोमांटिक हैं।

(ड़) राष्ट्रीय प्रहसन धारा–राष्ट्रीय और व्यंग्यात्मक नाटकों की परम्परा 'नीलदेवी', 'भारत दुर्दशा' आदि द्वारा चलायी गयी थी। उसका मूल कारण सांस्कृतिक और राष्ट्रीय दृष्टि से उपस्थित संक्रांति-काल ही था। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति की टकराहट से नवजागरण का आलोक विकीर्ण हो रहा था। भारतेन्दु युगीन नाटककारों ने इस जागरण को अभिव्यक्त करने के लिए प्रहसनों को चुना। इस युग में राष्ट्रीय विचारधारा को उजागर करने वाले, खड्ग बहादुर मलकृत 'भारत आरत' (1885), अम्बिका दास व्यास-कृत 'भारत-सौभाग्य' (1887), गोपाल राम गहमरी-कृत 'देश-दशा' (1892), देवकीनन्दन त्रिपाठी-कृत 'भारत हरण' (1899) आदि नाटक विशेष उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में देश

की तत्कालीन दुर्दशा का चित्र खींचा गया है। आलोच्य युग के अनेक सफल प्रहसनों में से बालकृष्ण भट्ट-कृत 'जैसा काम वैसा परिणाम' (1877) और 'प्रचार बिडम्बना' (1899), विजयानन्द त्रिपाठी-कृत 'महा अंधेर नगरी' (1893), राधाचरण गोस्वामी-कृत 'बूढ़े मुँह मुहासे' (1886), राधाकृष्ण दास-कृत 'देशी कुतिया विलायती बोल' आदि प्रहसनों को विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई। नवीन वैचारिक आलोक के फलस्वरूप इन प्रहसनों में प्राचीन रूढ़ियों, घिसी हुई परम्पराओं और अंध-विश्वासों पर व्यंग्य किया गया है तथा समाज के महंतों और कुटिल जनों पर प्रहार किये गये हैं।

आलोच्य युग के नाटक साहित्य का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि इस युग के नाटक विषय-वैविध्य में पूर्ण हैं। भारतेन्दु युग के नाम से अभिहित इस संक्रांति काल में अनेक युग प्रश्नों यथा-कर, आलस्य, पारस्परिक फूट, मद्यपान, पाश्चात्य-सभ्यता का अन्धानुकरण, धार्मिक अंधविश्वास, पाखंड, छुआ-छूत, आर्थिक शोषण, बाल विवाह, विधवा-विवाह, वेश्या गमन आदि को नाटकों का विषय बनाया गया। ऐसा नहीं है कि किसी एक नाटक में इनमें से एक या दो बातों को लिया गया हो, पर अवसर पाते ही सभी बातें एक ही नाटक में गुम्फित हुई हैं। इससे कथानक में भले ही शिथिलता आ गई हो किंतु जनजीवन की विसंगति अवश्य स्पष्ट हो जाती है। नाटकों में प्रधान रूप से समाज में व्याप्त अशांति और व्याग्रता का चित्रण हुआ है। नाटककार अपने युग के प्रति बड़े सजग दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने भारत का अध:पतन अपनी आंखों से देखा था। चारों ओर रूढ़िग्रस्त, निष्क्रिय और मानसिक दासता में जकड़ी हुई जनता, पाश्चात्य सभ्यता का दूषित प्रभाव, भ्रष्ट राजनीति, हृदयविदारक आर्थिक अवस्था आदि ने उनके हृदय में सुधारवादी और राष्ट्रीय विचारों का उद्रेक किया। फलस्वरूप नाटकों में राष्ट्रीय जीवन को उन्नत बनाने के अनेक उपाय संकेतित हुए हैं। इनकी वाणी में नवोदित भारत की आकांक्षाओं का स्वर प्रतिध्वनित होता है।

शास्त्रीय दृष्टि से भारतेन्दु-कालीन नाटक संस्कृत-नाट्यशास्त्र की मर्यादा की रक्षा करते हुए लिखे गये। साथ ही पाश्चात्य नाट्य शास्त्र का प्रभाव भी इन पर लक्षित होता है। पाश्चात्य ट्रेजडी की पद्धति पर दु:खान्त नाटक लिखने की परम्परा भारतेन्दु के 'नीलदेवी' नाटक से प्रारम्भ हुई। इस युग के नाटक एक ओर पारसी कम्पनियों की अश्लीलता और फूहड़पन की प्रतिक्रिया थे, तो दूसरी ओर पाश्चात्य और पूर्व की सभ्यता की टकराहट के परिणाम। इसलिए उनमें अविचारित पुरानापन या अविचारित नयापन कहीं नहीं है। अभिनेयता की दृष्टि

से ये नाटक अत्यधिक सफल हैं। भारतेन्दु और उनके सहयोगी स्वयं नाटकों में भाग लेते थे और हिन्दी रंगमंच को स्थापित करने के लिए उत्सुक थे। नाटकों के माध्यम से जनता को वे जागरण का और आने वाले युग का सन्देश देना चाहते थे। इसी कारण भारतेन्दु-काल में विरचित ये नाटक सुदृढ़ सामाजिक पृष्ठभूमि पर अवस्थित थे।

अनुदित प्रस्तुत संदर्भ में भारतेन्दु युगीन, नाटकों पर विचार कर लेना भी समीचीन होगा। इस युग में संस्कृत, बंगला तथा अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध नाटकों के हिन्दी में अनुवाद किए गए। अनुवाद की परम्परा भी भारतेन्दु से ही प्रारम्भ हुई थी जिसकी चर्चा पीछे की जा चुकी है। उनके अतिरिक्त भी अनेक लेखक संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी के नाटक अनुदित करने में संलग्न रहे।

संस्कृत

भवभूतिः

(1) उत्तर रामचरित–देवदत्त तिवारी (1871), नन्दलाल, विश्वनाथ दूबे (1891), लाला सीताराम (1891)।
(2) मालती माधव–लाला शालिग्राम (1881), लाला सीता राम (1898)।
(3) महावीर चरित–लाला सीताराम (1897)।

कालिदासः

(1) अभिज्ञान शकुन्तला–नन्दलाल विश्वनाथ दूबे (1888)।
(2) मालविकाग्निमित्र–लाला सीताराम (1898)।

कृष्णमित्र

प्रबोध चन्द्रोदय–शीतला प्रसाद (1879), अयोध्याप्रसाद चौधरी (1885)।

शूद्रक

मृच्छकटिक–गदाधर भट्ट (1880), लाला सीताराम (1899)।

हर्ष

रत्नावली–देवदत्त तिवारी (1872), बालमुकुन्द सिंह (1798)।

भट्टनारायण

वेणीसंहार–ज्वालाप्रसाद सिंह (1897)।

बंगला

माइकेल मधुसूदन दत्त:

(1) पद्मावती–बालकृष्ण भट्ट (1878)।

(2) शर्मिष्ठा–रामचरण शुक्ल (1880)।

(3) कृष्णमुरारी–रामकृष्ण वर्मा (1899)।

द्वारिकानाथ गांगुली–वीरनारी-रामकृष्ण वर्मा (1899)।

राजकिशोर दे–पद्मावती–रामकृष्ण वर्मा (1888)।

मनमोहन वसु: सती–उदित नारायण लाल (1880)।

अंग्रेजी

शेक्सपीयर

(1) मर्चेंट ऑफ वेनिस (वेनिस के व्यापारी)–आर्या (1888)।

(2) द कॉमेडी आफ एरर्स (भ्रमजालक)–मुन्शी इमदाद अली, भूल भुलैया–लाल सीताराम (1885)।

(3) एज यू लाइक इट (मनभावन)–पुरोहित गोपीनाथ (1896)।

(4) रोमियो जूलियट (प्रेमलीला)–पुरोहित गोपीनाथ (1897)।

(5) मैकबैथ (साहसेन्द्र साहस)–मथुराप्रसाद उपाध्याय (1893)।

जोजेफ एडीसन: केटो (कृतान्त)–बाबू तोता राम (1879)

भारतेन्दु युगीन नाटककारों की अनुदित रचनाएं केवल उनकी अनुवाद वृत्ति का ही दिग्दर्शन नहीं कराती, वरन् सामाजिक जीवन के उन्नयन के लक्ष्य को भी प्रकट करती हैं। अनुवादक उन रचनाओं के माध्यम से वस्तुत: एक नाट्यादर्श प्रस्तुत करना चाहते थे और उन नैतिक तत्त्वों के प्रति भी जागरुक थे जो नव-जागरण में सहायक थे। इस प्रकार भारतेन्दु-युगीन इन नाटकों की विषय वस्तु में वैविध्य मिलता है। रामायण और महाभारत के प्रसंगों को लेकर पौराणिक नाटक बहुतायत से लिखे गये। इसी संदर्भ में ऐसे नाटकों की संख्या भी पर्याप्त कही जा सकती है, जो नारी के सतीत्व और पतिव्रता के आदर्श से सम्बन्धित है। सामाजिक नाटकों में भी विषय-वस्तु का वैविध्य और विस्तार मिलता है। इस काल में मुख्य रूप से अनमेल विवाह, विधवा विवाह, बहु विवाह, मद्यपान,

वेश्या गमन, नारी स्वातंत्र्य आदि समस्याओं पर विचार किया है। किन्तु युगीन सन्दर्भ के प्रति इस प्रकार की जागरुकता के बावजूद अनुभूति की तीव्रता और नाट्य शिल्प की विशिष्टता के अभाव में इस युग का नाट्य साहित्य कोई महत्त्वपूर्ण साहित्यिक देन नहीं दे सका। फिर भी नाट्य रचना और रंगमंच के लिए जैसा वातावरण इस युग में बन गया था, वैसा हिन्दी साहित्य के किसी काल में सम्भव नहीं हुआ।

द्विवेदी-युगीन नाटक

भारतेन्दु के अनन्तर साहित्य का जो दूसरा उत्थान हुआ, उसके प्रमुख प्रेरणा-केन्द्र महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। हिन्दी नाटकों के ऐतिहासिक विकास-क्रम में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी का योगदान भारतेन्दु की तुलना में इतना नगण्य है कि नाटक के क्षेत्र में द्विवेदी-युग को अलग से स्वीकार करना और महत्त्व प्रदान करना औचित्यपूर्ण प्रतीत नहीं होता है। भारतेन्दु के अवसान के साथ नाटक के ह्रास के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। अपने युग की समस्याओं को नाट्य रूप प्रदान करने का जो अदम्य साहस भारतेन्दु युग के लेखकों में दिखाई पड़ा था उसके दर्शन द्विवेदी-युग में नहीं होते। इसके कई कारण थे। प्रथम तो हिन्दी के नाटककारों में नाटक के सूक्ष्म नियमों एवं विधियों की योजना की क्षमता न थी। दूसरे, नाटकों के इस उदयकाल की सामाजिक स्थिति विक्षोभ पैदा करने वाली थी। इस प्रवृति ने कुछ कर बैठने की प्रेरणा तो दी किन्तु भावों और विचारों को घटनाओं के साथ कलात्मक ढंग से नियोजित करने के लिए मानसिक सन्तुलन नहीं प्रदान किया। तीसरे, आर्य समाज के आन्दोलन के लेखकों पर सुधारवादी जीवन दृष्टि और शास्त्रार्थ शैली का प्रभाव पड़ा जो निश्चय ही नाटकों के कलात्मक विकास में बाधक हुआ। चौथे, पाश्चात्य 'कॉमेडी' के अंधानुकरण के कारण भारतेन्दु के उपरान्त हिन्दी साहित्य में प्रहसनों की प्रवृत्ति भी पनप उठी। प्रहसनों की वृद्धि ने साहित्यिक एवं कलात्मक अभिनयपूर्ण नाटकों की रचना में व्याघात उपस्थित किया। पांचवें, द्विवेदी-युग नैतिकता और सुधार का युग था। नैतिकता और आदर्श के प्रतिस्थापन में उनका दृष्टिकोण संस्कृत के नाटककारों की भांति उदारवादी था अतएव भारतेन्दु-युग की नवीनता परवर्ती युग के स्वभाव के अनुकूल न थी, अतः कठोर नीतिवादी अथवा आदर्शात्मक बुद्धिवाद के फलस्वरूप द्विवेदी-युग, भारतेन्दु-युग की परम्परा को अग्रसर नहीं कर सका।

उपर्युक्त सभी कारणों के फलस्वरूप आलोच्य युग में मौलिक नाटकों की संख्या अत्यल्प है अनुवाद-कार्य पर अधिक बल रहा है। मौलिक नाटकों में साहित्य की दो धाराएं प्रमुख हैं–

(1) साहित्यिक नाटक (शौकिया रंगमंच),

(2) मनोरंजन प्रधान नाटक (व्यावसायिक पारसी रंगमंच)।

साहित्यिक नाट्य धारा को विकसित करने के उद्देश्य से अनेक नाटक मंडलियों की स्थापना की गई जेसे प्रयाग की 'हिन्दी नाटक मण्डली', कलकत्ते का 'नागरी नाटक मंडल' मुजफ्फरनगर की 'नवयुवक समिति' आदि। इनमें 'हिन्दी नाट्य-समिति' सबसे अधिक पुरानी थी। सन् 1893 ई. में यह 'रामलीला नाटक मंडली' के रूप में स्थापित हुई थी। इसके संस्थापकों में प्रमुख थे–पंडित माधव शुक्ल जो स्वयं अच्छे अभिनेता और रंगकर्मी थे और जिन्होंने राष्ट्रीयता चेतना प्रचार-प्रसार के लिए नाटकों को सशक्त माध्यम बनाया था। किन्तु हिन्दी रंगमंच समुचित साधन और संरक्षण के अभाव में तथा जनता की सस्ती रुचि के कारण अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पाया। फलतः नाटक का साहित्यिक रूप ही सामने आया। संख्या की दृष्टि में आलोच्य काल में लिखे गये नाटक कम नहीं हैं, किन्तु मौलिक नाटकों के नाम पर ऐतिहासिक पौराणिक प्रसंगों को ही नाटकों में या कथोपकथन में परिवर्तित कर दिया गया। अध्ययन की सुविधा के लिए आलोच्य युग के नाटकों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक उपादानों पर रचित नाटक, रोमांचकारी नाटक, प्रहसन और अनुदित नाटक।

पौराणिक नाटक

हृदय की वृत्तियों की सत्त्व की ओर उन्मुख करने का प्रयास भारतेन्दु-युग के नाटकों में बहुत पहले से होता आ रहा था। द्विवेदी-युग से इन वृत्तियों के उत्कर्ष के लिए पौराणिक आख्यानों को निःसंकोच ग्रहण किया गया। आलोच्य युग में पौराणिक नाटकों के तीन वर्ग देखने को मिलते हैं–कृष्णचरित-सम्बन्धी, रामचरित सम्बन्धी तथा अन्य पौराणिक पात्रों एवं घटनाओं से सम्बन्धित। कृष्ण चरित सम्बन्धी नाटकों में राधाचरण गोस्वामी कृत 'श्रीदामा' (1904), ब्रज नन्दन सहाय-कृत 'उद्धव' (1909), नारायण मिश्र-कृत 'कंसवध' (1910), शिव नन्दन सहाय-कृत 'सुदामा' (1907) और बनवारी लाल-कृत 'कृष्ण तथा कंसवध' (1910) को विशेष ख्याति प्राप्त है। रामचरित-सम्बन्धी नाटकों में

रामनारायण मिश्र-कृत 'जनक बड़ा' (1906) गिरधर लाल-कृत 'रामवन यात्रा' (1910) और गंगाप्रसाद-कृत 'रामाभिषेक' (1910), नारायण सहाय-कृत 'रामलीला' (1911) और राम गुलाम लाल-कृत 'धनुषयज्ञ लीला (1912), उल्लेखनीय हैं। अन्य पौराणिक घटनाओं से सम्बन्धित नाटकों में महावीर सिंह का 'नल दमयन्ती' (1905), सुदर्शनाचार्य का 'अनार्थ नल चरित' (1906), बांके बिहारी लाल का 'सावित्री नाटिका' (1908), बालकृष्ण भट्ट का 'बेणुसंहार' (1909), लक्ष्मी प्रसाद का 'उर्वशी' (1907) और हनुमंत सिंह का 'सती चरित' (1910), शिवनन्दन मिश्र का 'शकुन्तला' (1911), जयशंकर प्रसाद का 'करुणालय (1912) बद्रीनाथ भट्ट का 'कुरुवन दहन' (1915), माधव शुक्ल का 'महाभारत-पूर्वार्द्ध' (1916), हरिदास माणिक का 'पाण्डव-प्रताप' (1917) तथा माखन लाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन-युद्ध (1918) महत्त्वपूर्ण हैं।

इन नाटकों का विषय पौराणिक होते हुए भी पारसी रंगमंच के अनुरूप मनोरंजन करने के लिए हास-परिहास, शोखी और छेड़छाड़ के वातावरण का ही आधार ग्रहण किया गया है।

ऐतिहासिक नाटक

पौराणिक नाटकों के साथ ही इस काल में कुछ ऐतिहासिक नाटक भी लिखे गए जिनमें–गंगाप्रसाद गुप्त का 'वीर जय माल' (1903), शालिग्राम कृत 'पुरु विक्रम' (1905), वृन्दावन लाल वर्मा का 'सेनापति ऊदल' (1909), कृष्ण प्रकाश सिंह कृत 'पन्ना' (1915), बद्रीनाथ भट्ट कृत 'चन्द्रगुप्त' (1915), हरिदास माणिक-कृत 'संयोगिता हरण' (1915), जयशंकर प्रसाद का 'राज्यश्री' (1915) और परमेश्वरदास जैन का 'वीर चूड़ावत सरदार' (1918) महत्त्वपूर्ण हैं। इन नाटकों में प्रसाद के 'राज्यश्री' नाटक को छोड़कर और किसी भी नाटक में इतिहास-तत्त्व की रक्षा नहीं हो सकी।

सामाजिक-राजनैतिक समस्यापरक नाटक

द्विवेदी-युग में भारतेन्दु-युग की सामाजिक-राजनीतिक और समस्यापरक नाटकों की प्रवृत्ति का अनुसरण भी होता रहा है। इस धारा के नाटकों में प्रताप नारायण मिश्र-कृत 'भारत दुर्दशा' (1903) भगवती प्रसाद-कृत 'वृद्ध विवाह' (1905), जीवानन्द शर्मा-कृत 'भारत विजय' (1906), रुद्रदत शर्मा-कृत 'कंठी जनेऊ का विवाह' (1906), कृष्णानन्द जोशी-कृत 'उन्नति कहां से

होगी' (1915), मिश्र बन्धुओं का 'नेत्रोन्मीलन' (1915) आदि कई नाटक गिनाए जा सकते हैं। नाट्यकला की दृष्टि से विशेष महत्त्व न रखते हुए भी ये नाटक, समाज सुधार और नैतिकवादी जीवन दृष्टि से युक्त हैं।

व्यवसायिक दृष्टि से लिखे नाटक

इस युग में पारसी रंगमंच सक्रिय रहा जिसके लिए निरन्तर रोमांचकारी, रोमानी और धार्मिक नाटक लिखे जाते रहे। पारसी नाटक कम्पनियों के रूप में व्यवसायी रंगमंच का प्रसार भारतेन्दु-युग में ही हो चुका था। इस काल में 'ओरिजिनल थियेट्रिकल कम्पनी', 'विक्टोरिया थियेट्रिकल कम्पनी', 'एल्प्रफेड थियेट्रिकल कम्पनी', 'शेक्सपीयर थियेट्रिकल कम्पनी', 'जुबिली कम्पनी' आदि कई कम्पनियां 'गुलबकावली', 'कनकतारा', 'इन्द्र सभा', 'दिलफरोश', 'गुल फरोश', 'यहूदी की लड़की', जैसे रोमांचकारी नाटक खेलती थीं। रोमांचकारी रंगमंचीय नाटककारों में मोहम्मद मियाँ रादक', हुसैन मियाँ 'जर्राफ', मुन्शी विनायक प्रसाद 'तालिब', सैयद मेंहदी हसन 'अहसान', नारायण प्रसाद बेताब', आगा मोहम्मद हश्र' और राधेश्याम 'कथावाचक' उल्लेखनीय हैं। इनमें राधेश्याम कथावाचक और 'बेताब' ने सुरुचिपूर्ण धार्मिक-सामाजिक नाटक भी लिखे, किन्तु पारसी रंगमंच का सारा वातावरण दूषित ही रहा, जिसने द्विवेदी-युग में नाट्य लेखन की धारा को कुंठित कर दिया।

प्रहसन

इस काल में अनेकानेक स्वतंत्र प्रहसन भी लिखे गये। अधिकांश प्रहसन लेखकों पर पारसी रंगमंच का प्रभाव है, इसलिए वे अमर्यादित एवं उच्छृंखल हैं। प्रहसनकारों में बद्रीनाथ भट्ट एवं जी. पी. श्रीवास्तव के नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं। भट्ट जी के 'मिस अमेरिका', 'चुंगी की उम्मीदवारी', 'विवाह विज्ञापन', 'लबड़धोंधों' आदि शिष्ट-हास्यपूर्ण प्रहसन हैं। जी.पी. श्रीवास्तव ने छोटे-बड़े अनेक प्रहसन लिखे हैं। इन प्रहसनों में सौष्ठव और मर्यादा का अभाव है।

अनुदित नाटक

मौलिक नाटकों की कमी द्विवेदी-युग में अनुदित नाटकों द्वारा पूरी की गई। सामाजिक तथा राजनीतिक अशान्ति के इस वातावरण में लेखकों को हिन्दी

नाटक-साहित्य की हीनता स्पष्ट दिखाई देती थी, अतः कुछ थोड़े उदात्तवादी परम्परा के लोगों का ध्यान संस्कृत नाटकों की ओर गया, परन्तु अधिकांश का अध्ययन बंगला तथा पाश्चात्य नाटकों की ओर ही अधिक था।

संस्कृत से लाला सीताराम ने 'नागानन्द', 'मृच्छकटिक', 'महावीरचरित', 'उत्तररामचरित', मालती माधव' और 'मालविकाग्निमित्र' और सत्यनारायण कविरत्न ने 'उत्तररामचरित' का अनुवाद किया। अंग्रेजी से शेक्सपीयर के नाटकों 'हेमलेट', 'रिचर्ड' द्वितीय', 'मैकवेथ' आदि का हिन्दी में अनुवाद भी लाला सीताराम ने किया। फ्रांस के प्रसिद्ध नाटककार ओलिवर' के नाटकों को लल्लीप्रसाद पांडेय और गंगाप्रसाद श्रीवास्तव ने अंग्रेजी के माध्यम से अनुदित किया।

बंगला नाटकों का अनुवाद प्रस्तुत करने वालों में गोपालराम गहमरी स्मरणीय हैं। उन्होंने 'बनवीर' 'बभ्रुवाहन', 'देश दशा', 'विद्याविनोद', 'चित्रागंदा' आदि बंगला नाटकों के अनुवाद किये। बंगला नाटकों के अन्य समर्थ अनुवादक रामचन्द्र वर्मा तथा रूप नारायण पांडेय हैं। उन्होंने गिरीशचन्द्र घोष, द्विजेन्द्र लाल राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मनमोहन गोस्वामी, ज्योतीन्द्रनाथ ठाकुर तथा क्षीरोद प्रसाद के नाटकों का अनुवाद किया। पांडेय जी के अनुवाद बड़े सफल हैं, उनमें मूल नाटकों की आत्मा को अधिक सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया है।

इसी प्रकार भारतेन्दु-युग तथा प्रसाद-युग को जोड़ने वाले बीच के लगभग 25-30 वर्षों में कोई उल्लेखनीय नाटक नहीं मिलता। भले ही प्रसाद-युगीन नाटककारों की आरम्भिक नाट्य कृतियाँ द्विवेदी-युग की सीमा में आती हैं, परन्तु आगे चलकर उनकी नाट्य कृतियों में जो वैशिष्ट्य आता है, वह उन्हें द्विवेदी-युग के लेखकों से पृथक् कर देता है। द्विवेदी-युग में हिन्दी रंगमंच विशेष सक्रिय नहीं रहा। इस युग में बद्रीनाथ भट्ट ही अपवाद स्वरूप एक ऐसे नाटककार थे, जिन्होंने नाटकीय क्षमता का परिचय दिया है, किन्तु इनके नाटक भी पारसी कम्पनियों के प्रभाव से अछूते नहीं हैं। उनमें उत्कृष्ट साहित्यिक तत्त्व का अभाव है।

प्रसाद-युगीन नाटक

प्रसाद का आगमन नाट्य रचना में व्याप्त गतिरोध को समाप्त करने वाले युग-विधायक व्यक्ति के रूप में हुआ। उन्होंने एक प्रवर्तक के रूप में कविता, नाटक तथा निबंध आदि सभी क्षेत्रों में युग का प्रतिनिधित्व किया। डॉ. गुलाबराय

का कहना है, 'प्रसाद जी स्वयं एक युग थे।' उन्होंने हिन्दी नाटकों में मौलिक क्रांति की। उनके नाटकों को पढ़कर लोग जितेन्द्र लाल के नाटकों को भूल गये। वर्तमान जगत के संघर्ष और कोलाहलमय जीवन से ऊबा हुआ उनका हृदयस्थ कवि उन्हें स्वर्णिम आभा से दीप्त दूरस्थ अतीत की ओर ले गया। उन्होंने अतीत के इतिवृत्त में भावना का मधु और दार्शनिकता का रसायन घोलकर समाज को एक ऐसा पौष्टिक अवलेह दिया जो ह्रास की मनोवृत्ति को दूर कर उसमें एक नई सांस्कृतिक चेतना का संचार कर सके। उनके नाटकों में द्विजेन्द्रलाल राय की सी ऐतिहासिकता और रवि बाबू की-सी दार्शनिकतापूर्ण भावुकता के दर्शन होते हैं।

प्रसाद की आरम्भिक नाट्य कृतियां—सज्जन (1910), 'कल्याणी परिणय (1912), प्रायश्चित (1912), करुणालय (1913) और राज्यश्री (1918), द्विवेदी-युग की सीमा के अंतर्गत आती हैं। प्रसाद के इन नाटकों में उनका परम्परागत रूप तथा प्रयोग में भटकती हुई नाट्य दृष्टि ही प्रमुखता से उभर कर सामने आती है। नाटक रचना का प्रारम्भिक काल होने के कारण इन कृतियों में प्रसाद की नाट्य कला का स्वरूप स्थिर नहीं हो पाया है, वह अपनी दिशा खोज रही है। यह दिशा उन्हें विशाख (1921), अजातशत्रु (1922), कामना (1927), जनमेजय का नागयज्ञ (1926) स्कन्दगुप्त (1928), एक घूँट (1930), चन्द्रगुप्त (1931) और ध्रुवस्वामिनी (1933) में प्राप्त हुई। इन नाटकों में प्रसाद जी ने अपनी गवेषणा शक्ति और सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया।

'सज्जन' का कथानक महाभारत की एक घटना पर आधारित है। इस नाटक में प्रसाद जी ने परम्परागत मान्यताओं को स्वीकार करते हुए भारतेन्दु-कालीन नाट्य-प्रणाली को अपनाया है। 'कल्याणी—परिणय' भी प्रसाद का प्रारम्भिक प्रयास है, जिसका अंतर्भाव उन्होंने बाद में 'चन्द्रगुप्त' के चतुर्थ अंक के रूप में किया है। 'करुणालय' बंगला के 'अमित्रक्षर अरिल्ल छंद' की शैली पर लिखा गया गीति-नाट्य है। 'प्रायश्चित' हिन्दी का प्रथम दुखांत मौलिक रूपक है। शिल्प-विधान की दृष्टि से प्रसाद ने इसमें सर्वप्रथम पाश्चात्य नाट्य-शिल्प को अपनाने का प्रयास किया है। सही अर्थों में 'राज्यश्री' प्रसाद का प्रथम उत्कृष्ट ऐतिहासिक नाटक है। 'विशाख' प्रसाद की पूर्ववर्ती और परवर्ती नाटकों में एक विभेदक रेखा है। इनका कथानक साधारण होते हुए भी देश की तत्कालीन राजनैतिक धार्मिक और सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति से ओत-प्रोत है यद्यपि प्रसाद के अधिकांश नाटक ऐतिहासिक ही हैं, परन्तु इतिहास की पीठिका

में वर्तमान की समस्याओं को वाणी देने का विचार प्रसाद ने सर्वप्रथम इसी नाटक में व्यक्त किया है। भूमिका में वे लिखते हैं मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने में बहुत प्रयास किया है। और वह वर्तमान स्थिति परतंत्र भारत के राजनैतिक सामाजिक परिवेश से जुड़ी हुई थी। अपनी सत्ता को स्थानयी बनाये रखने के लिए ब्रिटिश शासन द्वारा भारतीयों में फूट डालने के लिए अपनाये गये साम्प्रदायिकता, प्रांतीयतावाद के हथकण्डे प्रसाद से छिपे नहीं थे, अत: इतिहास की पीठिका पर उन्होंने वर्तमान के इन प्रश्नों को यथार्थ की दृष्टि से उठाते हुए समन्वयवादी आदर्श समाधान प्रस्तुत किये। युगीन साम्प्रदायिक प्रभावों को आत्मसात् करते हुए प्रसाद ने अपने नाटकों में ब्राह्मण-बौद्ध धार्मिक संघर्षों को रूपायित किया है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक आर्यों और नागजाति तथा आर्य-नाग-संघर्ष की पृष्ठभूमि में रचा गया है।

'अजातशत्रु' में आर्य जनपदों का पारस्परिक संघर्ष परोक्ष रूप में युगीन-साम्प्रदायिक संघर्षों का ही प्रतिरूप है। इस प्रकार अपनी इन प्रौढ़ कृतियों में प्रसाद ने जातीय, क्षेत्रीय तथा वैयक्तिक भेदों को मिटाकर व्यापक राष्ट्रीयता का आह्वान किया है। इस दृष्टि से 'स्कन्दगुप्त' और 'चन्द्रगुप्त' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'कामना' और 'एक घूंट' भिन्न कोटि के नाटक हैं। इनकी कथावस्तु ऐतिहासिक नहीं है। कथ्य की दृष्टि से भी ये भिन्न हैं। इनमें प्रसाद ने भौतिक विलासिता का विरोध किया है। 'कामना' में विभिन्न भावों को पात्र रूप में प्रस्तुत किया गया है, इसलिए उसे प्रतीक नाटक कहा जा सकता है। 'एक घूंट' एकांकी है और उसमें प्रसाद ने यथार्थ और आदर्श की स्थिति, जीवन का लक्ष्य और स्त्री-पुरुष की प्रेम-भावना के सामंजस्य को चित्रित किया है। 'ध्रुवस्वामिनी' प्रसाद की अन्तिम कृति है। अन्य नाटकों में प्रसाद विशेष रूप से राजनैतिक प्रश्नों के यथार्थ से जूझते रहे हैं, परन्तु 'ध्रुवस्वामिनी' में सामाजिक जीवन की वर्तमान युगीन नारी समस्या पर बौद्धक विचार-विमर्श कर यथार्थ दृष्टि का परिचय दिया है। नारी-जीवन की इस सामाजिक समस्या के प्रति प्रसाद का आकर्षण वर्तमान नारी-आन्दोलन का ही परिणाम है। आज के समाज में नारी की स्थिति, दासता की शृंखला से उसकी मुक्ति, विशिष्ट परिस्थितियों में पुर्नविवाह की समस्या को बड़े साहस, संयम, तर्क और विचार एवं धर्म की पीठिका पर स्थित करके इस नाटक में सुलझाया गया है।

स्पष्ट है कि प्रसाद जी ने हिन्दी नाटक की प्रवाहमान् धारा को एक नए मोड़ पर लाकर खड़ा किया। वे एक सक्षम साहित्यकार थे। उनके हृदय में भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध ममता थी। उन्हें विश्वास था कि भारतीय संस्कृति ही मानवता का पथ प्रशस्त कर सकती है। इसी कारण अपने नाटकों द्वारा प्रसाद जी ने भारतीय संस्कृति के भव्य रूप की झांकी दिखाकर राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ-साथ अपने देश के अधुनातन निर्माण की पीठिका भी प्रस्तुत की है। भारतेन्दु ने अपने नाटकों में जिस प्राचीन भारतीय संस्कृति की स्मृति को भारत की सोई हुई जनता के हृदय में जगाया था, प्रसाद ने नाटकों में उसी संस्कृति के उदात्त और मानवीय रूप पर अपनी भावी संस्कृति के निर्माण की चेतना प्रदान की। पर यह समझना भी भूल होगी कि उन्होंने केवल भारतीय संस्कृति के गौरव-गान के लिए ही नाटकों की रचना की। वस्तुतः उनका नाट्य साहित्य ऐतिहासिक होते हुए भी सम-सामयिक जीवन के प्रति उदासीन नहीं है, वह प्रत्यक्ष को लेकर मुखर है और उनमें लोक-संग्रह का प्रयत्न है, राष्ट्र के उद्‌बोधन की आकांक्षा है।

प्रसाद से पूर्व साहित्यिक नाटकों का अभाव था। जिस समय भारतेन्दु ने नाटक-रचना की शुरुआत की, उनके सामने पहले से निश्चित, प्रतिष्ठित हिन्दी का कोई रंगमंच न था, अतः उन्होंने संस्कृत, लोकनाटक एवं पारसी रंगमंच शैली की विभिन्न रंग-परम्पराओं को सुधारवादी यथार्थ कथ्य के अनुरूप मोड़ देने का स्तुत्य प्रयास किया। प्रसाद के युग तक नाटकों में पारसी रंग-शिल्प का स्वरूप निर्धारित हो चुका था, अतः पारसी रंगमंच की अतिरंजना, चमत्कार, फूहड़ता, शोखभाषा, चुलबुले संवाद, शेरो-शायरी के घटियापन की प्रतिक्रिया में प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक, राष्ट्रीय नाटकों की रचना की। दार्शनिकता, सांस्कृतिक बोध, उदात्त कल्पना, काव्यमय अलंकृति, दुरूह भाषा का विन्यास उनकी उपलब्धि था। फिर भी साहित्यिक और कलात्मक वैशिष्ट्य होते हुए भी प्रसाद में नाट्य शिल्प के अनेक दोष दिखाई देते हैं। एक तथ्य यह है कि प्रकारान्तर से उन्होंने अतिरंजना की रूढ़ि को किंचित् परिवर्तन के साथ ग्रहण किया। यह परिवर्तन प्रमुखतः शेक्सपीयर के जीवन-बोध, एवं रंग विधान के प्रभाव-स्वरूप ही आया था। शेक्सपीयर का रोमानी बोध एवं नियतिवाद संभवतः भारतीय युगीन परिवेश के कारण भी स्वतः उद्‌भूत होकर प्रसाद की चेतना पर छा गया था। इन्हीं कारणों से प्रसाद मूलतः कवि, दार्शनिक तथा संस्कृति के जागरुक समर्थक थे। जीवन दृष्टि के अनुरूप उन्होंने अपने नाटकों की रचना स्वच्छन्दतावादी नाट्य-प्रणालियों

को आधार बनाकर कल्पना, भावुकता, सौन्दर्य-प्रेम, अतीत के प्रति अनुराग, उच्चादर्शों के प्रति मोह तथा शैली शिल्प की स्वच्छन्दता आदि को ग्रहण किया। किन्तु ऐसे साहित्यिक नाटकों के अनुरूप रंगमंच हिन्दी में नहीं था इसलिए अन्य सभी दृष्टियों से सफल होते हुए भी प्रसाद के नाटक अभिनय की दृष्टि से सफल नहीं हो सके। इधर हिन्दी रंगमंच के क्षेत्र में नए प्रयोग हो रहे हैं जिससे आज के रंगकर्मी, प्रसाद के नाटकों को चुनौती के रूप में स्वीकार करने लगे हैं। उनके नाटकों को इसीलिए सर्वथा अभिनय नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनमें से कुछ छुट-पुट रूप से उनके जीवन काल में ही खेले गये थे। फिर भी आकार की विपुलता, दृश्यों की भरमार, चरित्र-बाहुल्य और विलक्षण दृश्य-योजना उनके नाटकों को रंगमंच के लिए अति कठिन बना देती है।

आधुनिक हिन्दी नाटक साहित्य के विकास में जयशंकर प्रसाद के बाद हरिकृष्ण प्रेमी को गौरवपूर्ण स्थान दिया जाता है। प्रसाद-युग में 'प्रेमी' ने 'स्वर्ण-विहान' (1930), 'रक्षाबन्धन' (1934), 'पाताल विजय' (1936), 'प्रतिशोध' (1937), 'शिवासाधना' (1937) आदि नाटक लिखे हैं। इनमें 'स्वर्ण विहान', गीतिनाट्य है और शेष गद्य नाटक। प्रसाद ने जहाँ प्राचीन भारत का चित्रण करते हुए सत्य, प्रेम, अहिंसा व त्याग का संदेश दिया, वहाँ प्रेमी जी ने मुस्लिम-युगीन भारत को नाट्य-विषय के रूप में ग्रहण करते हुए हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। देश के उत्थान और संगठन के लिए इनके नाटक राष्ट्रीय भावना का प्रचार करने वाले हैं। प्रेमी जी प्रसाद की परम्परा के अनुयायी हैं। परन्तु उन्होंने प्रसाद जी की भांति अपने नाटकों को साहित्यिक और पाठ्य ही न रखकर उनको रंगमंच के योग्य भी बनाया है। साहित्यिकता और रंगमंचीयता का समन्वय उनके नाटकों की विशेषता है। उन्होंने संस्कृत नाट्य परम्परा का अनुसरण न करके पाश्चात्य नाट्यकला को अपनाया है। इन नाटकों के कथानक संक्षिप्त एवं सुगठित, चरित्र सरल एवं स्पष्ट, संवाद पात्रानुकूल एवं शैली सरल व स्वाभाविक है।

उपर्युक्त प्रमुख नाट्य कृतियों के अतिरिक्त आलोच्य युग में धार्मिक-पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों की रचना अत्यधिक हुई। इन नाटकों में कलात्मक विकास विशेष रूप से नहीं हुआ, किन्तु युग की नवीन प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर कई नाटककारों ने अपनी रचनाओं में नवीन दृष्टिकोण को अपनाया। धार्मिक नाट्य धारा के अन्तर्गत कृष्ण चरितराम चरित, पौराणिक तथा अन्य सन्त महात्माओं के चरित्रों को लेकर रचनाएं प्रस्तुत की गई। इस धारा की उल्लेखनीय

रचनाएं हैं–अम्बिकादत्त त्रिपाठी कृत 'सीय-स्वयंवर' (1918), रामचरित उपाध्याय-कृत 'देवी द्रौपदी' (1921), राम नरेश त्रिपाठी-कृत 'सुभद्रा' (1924) तथा 'जयन्त' (1934), गंगाप्रसाद अरोड़ा-कृत 'सावित्री सत्यवान' गौरीशंकर प्रसाद-कृत- 'अजामिल चरित्र नाटक' (1926), पूरिपूर्णानन्द वर्मा-कृत 'वीर अभिमन्यु नाटक' (1927), वियोगी हरि-कृत (1925), 'छद्मयोगिनी' (1929) और 'प्रबुद्ध यामुन' अथवा 'यामुनाचार्य चरित्र' (1929), जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी-कृत 'तुलसीदास' (1934) लक्ष्मीनारायण गर्ग-कृत' श्री कृष्णावतार', किशोरी दास वायपेयी-कृत 'सुदामा' (1934), हरिऔध-कृत 'प्रद्युम्न विजय व्यायोग' (1939), सेठ गोविन्ददास-कृत 'कर्त्तव्य' (1936) आदि। राष्ट्रीय चेतना की प्रधानता होने के कारण धार्मिक नाटकों में भी राष्ट्रीयता का चित्रण हुआ। नाटकों में अति-नाटकीय और अति-मानवता का बहिष्कार किया गया है। प्राचीन रूढ़ियों और मान्यताओं को पूर्ण रूप से हटाने की चेष्टा की गयी है। इस प्रकार की रचनाओं में नाटककारों ने प्रायः कथावस्तु प्राचीन साहित्य से लेकर उसी पुराने ढांचे में नई बुद्धवादी धाराओं तथा विचारधाराओं के अनुसार आधुनिक युग की समस्याओं को उनमें फिट कर दिया है।

प्रसाद युग में इतिहास का आधारलेकर अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएं प्रस्तुत की गई। इस समय के नाटककारों की दृष्टि इतिहास की ओर विशेष रूप से गई क्योंकि यह युग पुनरुत्थान और नवजागरणवादी प्रवृत्तियों से अनुप्राणित था। फलतः जन साधारण में अपने गौरवपूर्ण इतिहास तथा अपनी महान सांस्कृतिक चेतना का संदेश देना इन नाटककारों ने अपना कर्त्तव्य समझा। इस काल की गौण ऐतिहासिक कृतियों में गणेशदत्त इन्द्र-कृत 'महाराणा संग्रामसिंह' (1911), भंवरलाल सोनी-कृत 'वीर कुमार छत्रसाल' (1923), चन्द्रराज भण्डारी-कृत 'सम्राट' अशोक (1923) ज्ञानचन्द्र शास्त्री-कृत 'जयश्री' (1924) प्रेमचन्द-कृत 'कर्बला' (1928), जिनेश्वर प्रसाद भायल-कृत 'भारत गौरव' अर्थात् 'सम्राट चन्द्रगुप्त' (1928) दशरथ ओझा-कृत 'चित्तौड़ की देवी' (1928) और प्रियदर्शी सम्राट अशोक (1935), जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द-कृत 'प्रताप प्रतिज्ञा' (1929), चतुरसेन शास्त्री-कृत 'उपसर्ग' (1929) और 'अमर राठौर' (1933) उदयशंकर भट्ट-कृत 'विक्रमादित्य' (1929) और 'दाहर अथवा सिंधपतन' (1943), द्वारिका प्रसाद मौर्य–कृत 'हैदर अली या मैसूर-पतन' (1934), धनीराम प्रेम-कृत 'वीरांगना पन्ना' (1933) जगदीश शास्त्री-कृत 'तक्षशिला' (1937) उमाशंकर शर्मा-कृत 'महाराणा प्रताप' आदि को विशेष ख्याति प्राप्त हुई

है। इन नाटककारों ने आदर्शवादी प्रवृत्ति के बावजूद स्वाभाविकता का बराबर ध्यान रखा और कल्पना और मनोविज्ञान की सहायता से प्राचीन काल की घटनाओं और चरित्रों को स्वाभाविकता के साथ चित्रित करने की चेष्टा की। पुरानी मान्यताओं तथा अतिलौकिक वर्णनों के स्थान पर वास्तविक कथा-वस्तु को प्रयोग में लाया गया है। इन चरित्रों में संघर्ष का भी समावेश हुआ। सारांश यह है कि इन नाटकों के कथानक महत् हैं, चरित्र सभी दार्शनिक और आदर्शवादी हैं, शैली कवित्वपूर्ण और अतिरंजित है और नाटकों का वातावरण संगीत और काव्यपूर्ण है। ये नाट्य-कृतियां हिन्दी नाट्य-कला विकास का एक महत्त्वपूर्ण चरण पूरा करती हैं।

इस युग में पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा का महत्त्वपूर्ण स्थान तो रहा ही है, इसके अतिरिक्त सामाजिक नाटकों की रचना भी बहुतायत से हुई है। सामाजिक नाटकों में विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' कृत 'अत्याचार का परिणाम' (1921) और 'हिन्द विधवा नाटक' (1935), 'प्रेमचन्द-कृत 'संग्राम' (1922), ईश्वरी प्रसाद शर्मा-कृत दुर्दशा (1922), सुदर्शन-कृत 'अंजना' (1923), 'आनरेरी मैजिस्ट्रेट' (1929) और 'भयानक' (1937), गोविन्दवल्लभ पन्त-कृत 'कंजूस की खोपड़ी' (1923) और 'अंगूर की बेटी' (1929), बैजनाथ चावला-कृत 'भारत का आधुनिक समाज' (1929), नर्मदेश्वरी प्रसाद 'राम'-कृत 'अछूतोद्धार' (1926), छविनाथ पांडेय-कृत 'समाज' (1929), केदारनाथ बजाज-कृत 'बिलखती' 'विधवा' (1930), जमनादास मेहरा-कृत 'हिन्दू कन्या' (1932), महादेव प्रसाद शर्मा-कृत 'समय का फेर', बलदेव प्रसाद मिश्र-कृत 'विचित्र विवाह' (1932) और 'समाज सेवक' (1933) रघुनाथ चौधरी-कृत 'अछूत की लड़की या समाज की चिंगारी' (1934), महावीर बेनुवंश-कृत 'परदा' (1936), बेचैन शर्मा 'उग्र'-कृत 'चुम्बन' (1937) और डिक्टेटर' (1937), रघुवीर स्वरूप भटनागर-कृत 'समाज की पुकार' (1937), अमर विशारद-कृत 'त्यागी युवक' (1937) चन्द्रिका प्रसाद सिंह-कृत 'कन्या विक्रय या लोभी पिता' (1937) आदि उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में सामाजिक विकृतियों—बाल विवाह, विधवा-विवाह का विरोध, नारी स्वतंत्रता आदि का चित्रण करते हुए उनके उन्मूलन का प्रयास दृष्टिगोचर होता है। इन नाटकों में समुन्नत समाज की स्थापना का प्रयास किया गया है, भले ही नाट्यकला की दृष्टि से ये नाटक उच्चकोटि के नहीं हैं।

आलोच्य युग में शृंगार-प्रधान नाटकों का प्रायः ह्रास हो गया था। थोड़ी बहुत प्रतीकवादी परम्परा चल रही थी, किन्तु उसकी गति बहुत धीमी थी। प्रतीक का महत्त्व वस्तुतः सांकेतिक अर्थ में है। इस अवधि में प्रसाद की 'कामना' के पश्चात् सुमित्रनन्दन पन्त-कृत 'ज्योत्स्ना' (1934) इस शैली की उल्लेखनीय रचना है। इसमें पंत की रंगीन कल्पनामयी झांकी का मनोरम स्वरूप व्यक्त होता है। इसके अतिरिक्त एक नाट्य-धारा व्यंग्य-विनोद प्रधान नाटकों को लेकर थी। इसको प्रमुख रूप से समाज की त्रुटियों, रूढ़िगत विचारों अथवा किसी व्यक्ति विशेष की विलक्षण प्रवृत्तियों पर चोट करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार से किसी भी समस्या पर किया हुआ प्रहार ऊपर से तो साधारण-सा प्रतीत होता है। किन्तु तनिक भी ध्यान देने पर उसके पीछे छिपा हुआ अर्थ-गाम्भीर्य स्पष्ट हो जाता है। हास्य-व्यंग्य प्रधान नाटकों में जी.पी. श्रीवास्तव का 'दुमदार आदमी' (1919), गड़बड़ झाला (1919), नाक में दम उर्फ जवानी बनाम बुढ़ापा उर्फ मियां का जूता मियां के सर (1926) भूलचूक (1928), चोर के घर छिछोर (1933), चाल बेढव (1934), साहित्य का सपूत (1934), स्वामी चौखटानन्द (1936) आदि प्रसिद्ध हैं। जनता में इन नाटकों का खूब प्रचार हुआ परन्तु रस और कला की दृष्टि से ये निम्नकोटि की रचनाएं हैं। इस युग में कतिपय गीति-नाटकों की भी रचना हुई। इसमें प्रमुख हैं—मैथिलीशरण गुप्त का 'अनघ' (1928) हरिकृष्ण प्रेमी-कृत 'स्वर्ण विहान' (1937) भगवतीचरण वर्मा-कृत 'तारा', उदयशंकर भट्ट का मत्स्यगंधा (1937) और विश्वमित्र (1938) आदि उल्लेखनीय है। 'स्वर्ण विहान' में जीवन की बहिरंग व्यवस्था की ओर अधिक ध्यान दिया गया है और अन्य में आन्तरिक क्रिया-व्यापारों का चित्रण है। भाव प्रधान होने के कारण इन नाटकों में कार्य-व्यापार तथा घटना चक्र की कमी मिलती है। भावातिरेक ही भाव-नाट्यों की प्राणभूत विशेषता है।

इस प्रकार प्रसाद-युग हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में नवीन क्रांति लेकर आया। इस युग के नाटकों में राष्ट्रीय जागरण एवं सांस्कृतिक चेतना का सजीव चित्रण हुआ है, किन्तु रंगमंच से लोगों की दृष्टि हट गयी थी। जो नाटक इस युग में रचे गये उनमें इतिहास तत्त्व प्रमुख था और रंगमंच से कट जाने के कारण वे मात्र पाठ्य नाटक बनकर रह गए। कथ्य के स्तर पर वे देश की तत्कालीन समस्याओं की ओर अवश्य लिखे गये किन्तु उनमें आदर्श का स्वर ही प्रमुख रहा। फिर भी इतिहास के माध्यम से अपने युग की यथार्थ समस्याओं को अंकित करने में वे पीछे नहीं रहे।

प्रसादोत्तर-युगीन नाटक

प्रसादोत्तर-युगीन नाटक अधिकाधिक यथार्थ की ओर उन्मुख दिखाई पड़ते हैं। परन्तु भारत के सामने एक विशिष्ट उद्देश्य था राष्ट्र की स्वाधीनता की प्राप्ति और विदेशी शासकों के अत्याचारों से मुक्ति प्राप्त करना, फलस्वरूप व्यापक स्तर पर पुनरुत्थान एवं पुनर्जागरण की लहर फैल गई। इस समूचे काल में पुनर्जागरण की शक्तियों का प्रभाव होने के कारण चेतना के स्तर पर भावुक, आवेशात्मक, आदर्शवादी, प्रवृत्तियों से आक्रांत होना नाटककारों के लिए स्वाभाविक था। यही कारण है कि प्रसादोत्तर काल तक किंचित् परिवर्तनों के साथ सभी रचनाकारों की दृष्टि मूलत: आस्था, मर्यादा एवं गौरव के उच्चादर्शों से मंडित रही। भारतेन्दु ने अपनी अद्‌भुत व्यंग्य शक्ति एवं समाज-विश्लेषण की पैनी दृष्टि से सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया परन्तु उनकी मूल चेतना सुधारवादी आग्रहों का परिणाम होने के कारण आस्था मूलक थी। द्विवेदी युग में भी दो दशकों के अनवरत साहित्यिक अनुशासन आदर्शवादी मर्यादा एवं नैतिकता के कठोर बन्धन के कारण यथार्थ के स्वर मद्धिम पड़ गए। प्रसाद युगीन नाटकों की मूलधारा भी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक आदर्श चेतना से सम्बन्धित थी परन्तु खल पात्रों की चारित्रिक दुर्बलताओं तथा सद् पात्रों की जीवन चरित्र-सृष्टि में यथार्थ चेतना को नकारा नहीं जा सकता। 19वीं शताब्दी में पश्चिमी नाट्य साहित्य में इब्सन् एवं शॉ द्वारा प्रवर्तित यथार्थवादी नाट्यान्दोलन ने भारतीय नाट्य साहित्य की गतिविधियों को भी प्रेरित एवं प्रभावित किया। लक्ष्मी नारायण मिश्र ने समस्या नाटकों का सूत्रपात करके बुद्धवादी यथार्थ को प्रतिष्ठित करने का दावा किया है। परन्तु सिद्धांत एवं प्रयोग में पर्याप्त अन्तर पाते हुए हम देखते हैं कि एक ओर वैचारिक धरातल पर प्रकृतवाद सुलभ जीवन के क्रांतिव्यंजक सम्बन्ध उभरते हैं, वहीं दूसरी ओर समाधान खोजते हुए परम्परा के प्रति भावुकता-सिक्त दृष्टि भी पाई जाती है। 'भावात्मकता और बौद्धकता' का घपला होने के कारण उनके नाटकों का मूल स्वर यथार्थ से बिखर जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व अन्य युगीन सामाजिक समस्याओं के साथ राष्ट्र की मुक्ति का प्रश्न सभी नाटककारों की चेतना पर छाया हुआ था। स्वाधीन भारत से उन्हें अनेक प्रकार की मीठी अपेक्षाएं थीं, परन्तु विडम्बना यह है कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जीवन समस्याओं से आक्रांत, बोझिल और जटिल हो उठा। परिवेश के दबाव से ही यथार्थ बोध की शुरुआत हुई।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने नाटक का लेखन प्रसाद-युग में ही प्रारम्भ किया था। उनके अशोक (1927), संन्यासी (1829), 'मुक्ति का रहस्य' (1932), राक्षस का मन्दिर (1932), 'राजयोग' (1934), सिन्दूर की होली (1934), 'आधी रात' (1934) आदि नाटक इसी काल के हैं। किन्तु मिश्र जी के इन नाटकों में भारतेन्दु और प्रसाद की नाट्यधारा से भिन्न प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं। जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है कि भारतेन्दु और प्रसाद-युग के नाटकों का दृष्टिकोण मूलत: राष्ट्रीय और सांस्कृतिक था। यद्यपि इस युग के नाटकों में आधुनिक यथार्थवादी धारा का प्रादुर्भाव हो चुका था। तथापि प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों के द्वारा राष्ट्रीयता का उद्घोष इस युग के नाटककारों का प्रमुख लक्ष्य था, अत: उसे हम सांस्कृतिक पुनरुत्थान की दृष्टि कह सकते हैं, जिनमें प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों और नयी यथार्थवादी चेतना में समन्वय और सन्तुलन परिलक्षित होता है। मिश्र जी नयी चेतना के प्रयोग के अग्रदूत माने जाते हैं। डॉ. विजय बापट के मतानुसार नयी बौद्धक चेतना का विनियोग सर्वप्रथम उन्हीं के तथाकथित समस्या नाटकों में मिलता है। इस बौद्धक चेतना और वैज्ञानिक दृष्टि का प्रादुर्भाव बीसवीं शताब्दी में पश्चिमी चिन्तकों के प्रभाव से हुआ था। डारविन द्वारा प्रतिपादित विकासवादी सिद्धान्त, फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त और मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकतावादी सिद्धान्तों ने यूरोप को ही नहीं, भारतीय जीवन पद्धति को भी प्रभावित किया जिसके फलस्वरूप जीवन में आस्था और श्रद्धा की बजाय तर्क को प्रोत्साहन मिला। पश्चिम में इस प्रकार की बौद्धक चेतना ने समस्या नाटक को जन्म दिया। उन्हीं की प्रेरणा से मिश्र जी ने भी हिन्दी नाटकों में भावुकता, रसात्मकता और आनन्द के स्थान पर तर्क और बौद्धकता का समावेश किया। साथ ही द्रष्टव्य है कि बुद्धवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए भी वे परम्परा-मोह से मुक्त नहीं हो पाए। युगीन मूल्यगत अन्तर्विरोधी चेतना समान रूप से उनके प्रत्येक नाटकों में देखी जा सकती है। इनके नाटकों का केन्द्रीय विषय स्त्री-पुरुष सम्बन्ध एवं सेक्स है। राष्ट्रोद्धार, विश्व-प्रेम आदि के मूल में भी मिश्र जी ने काम भावना को ही रखा है, जो परितृप्ति के अभाव में अपनी दमित वृत्ति को देश सेवा आदि के रूप में अभिव्यक्त करती है और प्राय: इस प्रकार 'परितष्ति' के साधन जुटा लेती है।

मिश्र जी के नाटकों के साथ हिन्दी-नाटक के विषय और शिल्प दोनों में बदलाव आया है। मिश्र जी के सभी नाटक तीन अंकों के हैं। इनमें इब्सन की नाट्य पद्धति का अनुसरण कर किसी भी अंक में बाह्यत: कोई दृश्य विभाजन

नहीं रखा गया है यद्यपि दृश्य-परिवर्तन की सूचना यत्र-तत्र अवश्य दे दी जाती है। प्रेम, विवाह और सेक्स के क्षेत्र में विघटित जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति के लिए मिश्र जी ने शिल्पगत नवीनता को अपनाया है। पात्र समस्या के सम्बन्ध में तर्क मूलक वाद-विवाद करते हुए दिखाई देते हैं। कार्य-व्यापार के अभाव से इनके नाटकों में रुक्षता आ गई। जिसके फलस्वरूप प्रभावान्विति खण्डित हो गई। रसात्मकता, प्रभावन्विति के स्थान पर बौद्धक आक्रोश और उत्तेजना ही इनके नाटकों में प्रधान है। लेकिन भावुकता के कारण इनके नाटकों का शिल्पगत गठन प्रभावित हुआ है। इस अन्तर्विरोध के रहते हुए भी इनके नाटक अकलात्मक नहीं कहे जा सकते।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' उन नाटककारों में हैं जिन्होंने प्रसादोत्तर काल में नाट्य परम्परा को निर्भीक और बुनियादी यथार्थ की मुद्रा प्रदान की। काल-क्रम के अनुसार उनके प्रमुख नाटक हैं–'जय-पराजय' (1937), स्वर्ग की झलक' (1938, 'छठा बेटा' (1940), 'कैद' (1943-45), 'उड़ान' (1943-45), 'भंवर' (1943), 'आदि मार्ग' (1950), 'पैतरे' (1952), 'अलग-अलग रास्ते' (1944-53), 'अंजो दीदी' (1953-54), 'आदर्श और यथार्थ' (1954) आदि। अश्क के प्रायः सभी नाटकों में विकसित नाट्य-कला के दर्शन होते हैं। वस्तु-विन्यास की दृष्टि से इनके नाटक सुगठित, स्वाभाविक, सन्तुलित एवं चुस्त बन पड़े हैं। उच्च मध्य वर्गीय समाज की रुढ़ियों, दुर्बलताओं, उनके जीवन में व्याप्त 'कृत्रिमता', दिखावे और ढोंग का पर्दाफाश करना उनके नाटकों का मूलभूत कथ्य है। यह कथ्य समाज के स्थूल यथार्थ से सम्बन्धित है। कथ्य की स्थूलता और सतही प्रगतिशील यथार्थवादिता ही अश्क के नाटकों की सीमा है, तथापि स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के सम्मोहन से हिन्दी नाटक को मुक्त करने का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है। उनकी विशेषता इस बात में है कि उन्होंने जीवन और समाज को एक आलोचक की दृष्टि से देखा है। इनके अनेक नाटक मंचित तथा रेडियो पर प्रसारित हो चुके हैं। इनका योगदान हिन्दी नाटक और रंगमंच के लिए एक विशेष उपलब्धि है।

आलोच्य-युग में कुछ पुराने खेमे के नाटककार यथा–सेठ गोबिन्ददास, लक्ष्मी नारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्द वल्लभ पंत, उदयशंकर भट्ट, जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' आदि भी नाट्य साहित्य को समृद्ध करते रहे। सेठ गोविन्ददास के 'कर्ण' (1942), शशि गुप्त (1942) आदि पौराणिक नाटकों और 'हिंसा और अहिंसा' (1940), सन्तोष कहाँ (1941) आदि सामाजिक

नाटकों की रचना की। हरिकृष्ण प्रेमी के 'छाया' (1941) और बन्धक (1940), सामाजिक नाटक हैं। दोनों नाटकों में आर्थिक शोषण एवं विषमता का यथार्थ मुखरित है। ऐतिहासिक नाटकों में 'आहुति' (1940), स्वप्नभंग (1940), विषपान (1945), साँपों की सृष्टि, उद्धार आदि उल्लेखनीय हैं। 'अमृत-पुत्री' (1978), नवीनतम ऐतिहासिक नाटक हैं। गोविन्द वल्लभ पंत ने आलोच्य युग में 'अन्तःपुर का छिद्र (1940), 'सिन्दूर बिन्दी' (1946) और 'ययाति' (1951) नाटकों की रचना की। पन्त जी ने 'कला के लिए कला' की भावना से प्रेरित होकर नाटकों की रचना अवश्य की है, किन्तु उनके नाटक उद्देश्य से रहित नहीं हैं। उन्होंने जीवन की गहरी उलझनों एवं समस्याओं को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है। पंत ने यद्यपि प्रसाद-युग की परम्परा का निर्वाह किया है, किन्तु उनके परवर्ती नाटकों में सामाजिक चेतना अधिकाधिक मुखर होती गई है। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'गरुड़ध्वज' (1945), 'नारद की वीणा', 'वत्सराज' (1950), 'दशाश्वमेघ (1950), 'वितस्ता की लहरें' (1953), 'जगदगुरु', चक्रव्यूह (1953), कवि भारतेन्दु (1955), 'मृत्युञ्य' (1958), चित्रकूट, अपराजित, धरती का हृदय आदि नाटकों की रचना की। सभी नाटकों में वर्तमान युग के शिक्षित व्यक्तियों की समस्याओं, उनकी संशयात्मक मनः स्थिति, उनकी कुंठाओं और मानसिक विकृतियों का स्वाभाविक और मनोविश्लेषणात्मक चित्रण किया गया है। उदयशंकर भट्ट के नाटकों में 'राधा' (1961), 'अन्तहीन-अन्त' (1942) 'मुक्तिपथ' (1944) 'शक विजय' (1949), कालीदास (1950) 'मेघदूत' (1950), विक्रमोर्वशी (1950), 'क्रांतिकारी' (1953), 'नया समाज' (1955), पार्वती (1962), मत्स्यगंधा (1976), आदि हैं। भट्ट जी के ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों की मूल प्रेरणा राष्ट्रीयता है। इसमें इतिहास और मिथक के बीच में यथार्थ और समस्या का अहसास भी दिखाई देता है। सामाजिक नाटकों के माध्यम से भट्ट जी ने वर्तमान जीवन के व्यक्तिगत एवं समाजगत संघर्षों एवं समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द का 'समर्पण' (1950) और 'गौतम नन्द' (1952) ख्याति प्राप्त रचनाएं हैं। इनके अतिरिक्त कई अन्य साहित्यकारों ने भी नाटक के क्षेत्र में अवतरण किया, किन्तु उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली। इनमें बैकुण्ठनाथ दुग्गल, वृन्दावनलाल वर्मा, सीताराम चतुर्वेदी, चतुरसेन शास्त्री, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द आदि उल्लेखनीय हैं।

इसी काल में स्वतंत्रता के बाद हिन्दी नाटक में परिवर्तन की एक नई स्थिति दिखाई देती है। प्रसादोत्तर नाटक के पहले चरण में यथार्थवादी प्रवृत्ति से

अनुप्राणित हुआ और उसके साथ ही समस्यामूलक नाटक का आविर्भाव हुआ। किन्तु स्वतंत्रता के बाद सामाजिक यथार्थ और समस्या के प्रति जागरुकता के साथ-साथ नाटक के क्षेत्र में कथ्य और शिल्प के कई नए आयाम उभरे। इसके अतिरिक्त स्थूल यथार्थ के प्रति नाटककार के दृष्टिकोण में भी अन्तर आया।

युगीन परिवेश के ऐतिहासिक संदर्भों में पाँचवें दशक तक जीवन के समस्या संकुल होने पर भी आम जनता की स्थिति में सुधार और परिवर्तन आने की अभी धुँधली-सी आशा दिखाई दे रही थी परन्तु छठे दशक के बाद से मीठे मोहक सपने बालू की भीत की भांति ढह गए, परिवेश का दबाव बढ़ा, मोहासक्ति भंग हुई और आज परिवेशगत यथार्थ अधिक नंगा होकर सामने आ रहा है। यथार्थ बोध का सही अभिप्राय मोहभंग की इस प्रक्रिया से ही जोड़ा जा सकता है। जगदीश चन्द्र माथुर, लक्ष्मी नारायण लाल आदि नाटककारों ने अपनी ऐतिहासिक एवं सामाजिक रचनाओं द्वारा कुछ सीमाओं के साथ यथार्थ दृष्टि का परिचय दिया। 'जगदीशचन्द्र माथुर' के चार नाटक प्रकाशित हुए हैं–'कोणार्क' (1954), 'पहला राजा' (1969), शारदीया तथा 'दशरथनन्दन'। इन नाटकों में क्रमशः मार्क्स एवं फ्रायड के प्रभाव सूत्रों को आत्मसात् करते हुए छायावादी रोमानी कथास्थितियों की सृष्टि करने में माथुर की दृष्टि यथार्थवादी एवं आदर्शवादी, कल्पना तथा स्वच्छन्दतावादी भावुकता को एक साथ ग्रहण करती है। परिणामतः उनके नाटकों में अन्तर्निहित समस्याएं जीवन के यथार्थ को व्याख्यायित करते हुए भी यथार्थवादी कलाशिल्प में प्रस्तुत नहीं हुई हैं। समस्याओं का विश्लेषण एवं विकास बौद्धक एवं तार्किक क्रिया द्वारा प्रेरित नहीं है। कोणार्क में कलाकार एवं सत्ता के संघर्ष की समस्या धर्मपद के तार्किक उप-कथनों के माध्यम से विश्लेषित हुई हैं। परन्तु 'शारदीया' एवं 'पहला-राजा' की समस्याएं प्रगतिशील एवं हासशील मूल्यों के संघर्ष की भूमि पर अवतरित होते हुए भी बौद्धक एवं तार्किक प्रक्रिया के अभाव में यथार्थवादी कला की दृष्टि से हमारी चिन्तन शक्ति को उद्‌बुद्ध नहीं करती क्योंकि माथुर का विशेष बल आन्तरिक अनुभूतियों एवं मानवीय संवेदना को जगाने पर है। फलस्वरूप उन्होंने काव्यात्मकता एवं रसोत्कर्ष के साधनों का सहारा लिया है। अपनी विचारधारा के अनुरूप ही जगदीश चंद्र माथुर ने नाटकीय कला को संस्कृत एवं लोकनाट्य तथा यथार्थवादी मंच की विशेषताओं से अभिमंडित किया है। काव्य-तत्त्व, अलंकरण एवं रस परिपाक से सम्बन्धि त तत्त्व उन्होंने संस्कृत नाटकों से ग्रहण किए हैं। संघर्ष, अन्तर्द्वन्द का तत्त्व पाश्चात्य यथार्थवादी नाटक शिल्प का प्रभाव है। संक्षेप में, एक

ऐसे मंच की परिकल्पना पर उनका ध्यान केन्द्रित रहा है, जो बहुमुखी हो, एक ही शैली में सीमित नहीं हो, भिन्न-भिन्न सामाजिक आवश्यकताओं और चेतनाओं का परिचायक हो।

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी नाटक ने पाश्चात्य प्रभाव से जो नये आयाम ग्रहण किए उनकी प्रथम अभिव्यक्ति धर्मवीर भारती के 'अन्धायुग' में प्रकट हुई है। पश्चिम में दो महायुद्धों के बाद नाटक के क्षेत्र में कथ्य और शिल्प के अनेक प्रयोग हुए। इसके साथ ही युद्ध की परिस्थितियों के कारण जीवन मूल्यों में भी जो बड़ा भारी परिवर्तन आया उसकी अभिव्यक्ति भी नाटक में हुई। भारत में समानान्तर सामाजिक परिस्थिति तो नहीं आई किन्तु पश्चिम की विचारधारा का उस पर प्रभाव पड़े बिना न रहा। नई कविता और नई कहानी उससे अनुप्राणित थी ही, हिन्दी नाटक को भी उससे एक दिशा मिली। ऐसी स्थिति में आधुनिक भाव-बोध को उजागर करने का प्रयास हुआ और धर्मवीर भारती, लक्ष्मी नारायण लाल, मोहन राकेश आदि नाटककारों ने उसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

डॉ. धर्मवीर भारती के 'अन्धा युग' (1955) गीति-नाटक ने हिन्दी गीत नाट्य-परम्परा को एक नया मोड़ दिया है। इसमें नाटककार ने महाभारत के युद्ध को अनीति, अमर्यादा और अर्द्ध-सत्य से युक्त माना है। इसीलिए उन्होंने इस काल को अन्धायुग कहा है। इस नाटक में मिथकीय पद्धति द्वारा विगत और आगत का समन्वय कर, निरन्तरता में आस्था उत्पन्न करने का सघन प्रयास 'भारती' ने किया है। इसमें अस्तित्त्ववादी दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती है। 'अन्धायुग' के अतिरिक्त सुमित्रनन्दन पन्त के 'रजतशिखर', 'शिल्पी' और 'सौवर्ण' में संगृहीत गीतिनाट्य, गिरजाकुमार माथुर का 'कल्पान्तर', सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य-नाटक' में संगृहीत सिद्धान्त कुमार के पांच गीतिनाट्य-सृष्टि की साँझ, लोह देवता, संघर्ष, विकलांगों का देश और बादली का शाप तथा दुष्यन्त कुमार के गीतिनाटक 'एक कण्ठ विषपायी' (1963) आदि भी विशेष उल्लेखनीय हैं। डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल के हैं-'अन्धा कुआँ' (1955), 'मादा कैक्टस' (1959), 'तीन आँखों वाली मछली' (1960), 'सुन्दर रस', 'सूखा सरोवर' (1960), रक्त कमल (1961), 'रात रानी' (1962), 'दर्पण' (1963)' 'सूर्यमुख' (1968), 'कलंकी', 'मिस्टर अभिमन्यु' (1971), 'कर्फ्यू' (1972) आदि। 'अन्धा कुआँ' में आर्थिक संघर्ष के कारण उत्पन्न ग्राम्य-जीवन के सामाजिक और पारिवारिक द्वन्द का चित्रण है। 'मादा कैक्टस', 'सुन्दर रस', 'सूखा सरोवर' और 'रक्त कमल' उनके प्रतीक नाटक हैं। 'तोता मैना' नाटक टेकनीक के नये प्रयोगों को प्रस्तुत करता है। यह नाटक लोकवृत्त

पर आधारित है। 'दर्पण' और 'रातरानी' समस्या नाटक हैं। दर्पण में मनुष्य को अपने वास्तविक रूप की तलाश में भटकते हुए दिखाया गया है। 'कलंकी' नाटक में अनेक जटिल प्रश्नों यथा संक्राति कालीन लोक-चेतना को प्रस्तुत करना, आज के समय में भी कर्मकाण्ड, अन्धविश्वास, देखना, यथार्थ का सामना करने से कतराना आदि को लोकरंगमंचीय संस्कृति, अभिव्यंजनावादी नाट्य-संरचना में प्रस्तुत किया गया है। 'सूर्य-मुख' में महाभारत-युद्ध के बाद की घटना ली गयी है। इस नाटक पर 'अन्धायुग' और 'कनुप्रिया' की स्पष्ट छाप है। 'मिस्टर अभिमन्यु' और 'कर्फ्यू' आधुनिक जीवन की संवेदना को लेकर लिखे गये विचारोत्तेजक नाटक हैं। डॉ. लाल अपने चारों ओर के परिवेश और युग जीवन के प्रति सजग हैं। उनका लक्ष्य समाज की विरुपता को संयम और तर्क के साथ चित्रित कर समाज को बदलते जीवन-मूल्यों और नैतिक मानदंडों से अवगत कराना है।

हिन्दी नाटकों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाकर 'मोहन राकेश' ने एक नये युग की स्थापना की है। उनका 'आषाढ़ का एक दिन' (1956), 'लहरों के राजहंस (1963) तथा 'आधे-अधूरे' (1969) नाटक निश्चय ही ऐसे आलोक स्तम्भ हैं, जो सुदूर भविष्य में भी हिन्दी-नाटक को एक नवीन गति-दिशा प्रदान करते रहेंगे। मानवीय सम्बन्धों में विघटन के कारण टूटते हुए व्यक्ति के आभ्यंतर यथार्थ का चित्रण करना इन नाटकों का केन्द्रीय कथ्य एवं मूल स्वर है। 'आषाढ़ का एक दिन' कवि कालिदास और उसकी बाल-संगिनी मल्लिका के प्रेम और संघर्ष की कथा पर आधारित है। कालिदास अपने परिवेश एवं मल्लिका से कट जाने के कारण जीवन के नये अर्थ की तलाश में निकल पड़ता है। 'लहरों के राजहंस' अश्वघोष के प्रसिद्ध महाकाव्य 'सौन्दरानन्द' पर आधारित है। इस नाटक में नन्द सुन्दरी और गौतम दोनों से निरपेक्ष हो जाने के बाद अलगाव की स्थिति में आंतरिक सत्य की तलाश करने के लिए चल पड़ता है। उनका जीवन-बोध अस्तित्त्ववाद की वैचारिक भूमिका पर ही उभरा है। राकेश की दृष्टि का यह यथार्थ जीवन-अर्थों की खोज तक ही सीमित है। किसी परिणति तक पहुंचना राकेश का अभीष्ट भी नहीं है। इसी कारण उनके समस्त नाटकों का समापन किसी निश्चित अन्त पर पहुंच कर नहीं होता। 'आधे-अधूरे' द्वारा आधुनिक जीवन से साक्षात्कार कराया गया है, इसमें महानगर के मध्यम वर्गीय परिवार का चित्रण है। आज के परिवार की टूटन और चुक गये आपसी सम्बन्धों को नाटक में बड़े सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया गया है। अस्तु, राकेश ने अपनी नाट्य-सृष्टि में अन्तर्निहित यथार्थ को पकड़ने की चेष्टा की है। सभी नाटक रंगमंचीय सम्भावनाओं से पूर्ण है। प्रसाद जी के बाद सर्वाधिक

सशक्त नाटककार हम राकेश को कह सकते हैं। उन्होंने अतीत के सघन कुहासे और अपने समसामयिक जीवन के अन्धे-गलियारों में भटक कर सभी स्तरों पर अपनी नाट्यकला को पूर्णतया आधुनिक रखा है।

मोहन राकेश के बाद जिस नाटककार के प्रति विश्वास जागता है, वह है 'सुरेन्द्र वर्मा'। उनके नाटकों में 'द्रौपदी', 'सूर्य की अन्तिम किरण से पहली किरण तक', 'आठवां सर्ग' आदि उल्लेखनीय हैं। प्रथम नाटक में आधुनिक नारी की मन:स्थिति का चित्रण पुराने मिथक-प्रतीकों के माध्यम से बड़ी सफलतापूर्वक किया गया है। 'सूर्य की अन्तिम किरण से पहली किरण तक' का आधार छद्म इतिहास हैं, पर इसमें लेखक ने एक पौरुषहीन व्यक्ति के विवाह बन्धन में पड़ी नारी की शाश्वत समस्या को आधुनिक भाव-बोध के साथ उठाने का प्रयास किया है। आठवाँ सर्ग' कालिदास के जीवन और लेखन पर आधारित है और उसका कथ्य लेखकीय स्वातंत्रय की आधुनिक चेतना को उजागर करता है।

व्यवस्था के संदर्भ में समाज एवं व्यक्ति के बाह्य एवं आंतरिक यथार्थ का चित्रण करना नये नाटककारों के नाटकों का केन्द्रीय कथ्य लगता है। ब्रजमोहन शाह के 'त्रिशंकु', ज्ञानदेव अग्निहोत्री के 'शुतुरमुर्ग', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के 'बकरी' आदि नाटकों में सत्ता के छद्म और पाखंडो का ही पर्दाफाश किया है। अधुनातन नाटककार मुद्राराक्षस, लक्ष्मीकांत वर्मा, मणि मधुकर, शंकर शेष और भीष्म साहनी भी क्रमश: अपने नाटकों 'योअर्स-फेथ-फुल्ली', 'तेंदुआ', 'मरजीवा', 'रोशनी एक नयी है', 'रसगन्धर्व', 'एक और द्रोणाचार्य' तथा 'हानूश' के माध्यम से इन्हीं प्रश्नों से जूझ रहे हैं। इन्होंने जहाँ एक ओर वर्ग-वैषम्यों की चेतना को जाग्रत करके व्यवस्था के ह्रासशील रूपों का यथार्थ चित्रण किया है वहीं सत्ता के दबाव में पिस रहे आम आदमी की करुण नियति और उससे उत्पन्न संत्रस का भी रुपायन किया है। इस तरह नाटक सीधे जिन्दगी की शर्तों से जुड़े और उनकी विषमताओं के साथ जूझते व्यक्ति की यंत्रणा उसके भीतर यथार्थ को रंग-माध्यम से प्रस्तुत करने का बीड़ा उठाते हैं। बदलाव की चेतना और आकुलता को उजागर करने के सशक्त कथ्य से ही हिन्दी के रचनात्मक नाट्य के लिए शुभारम्भ की स्थिति मानी जा सकती है। नये नाटककार सत्यदेव 'दूबे, रमेश उपाध्याय, रामेश्वर प्रेम, शरद जोशी, गिरिराज, सुशील कुमार सिंह, बलराज पंडित, मृदुला गर्ग, सुदर्शन चोपड़ा नये नाटक लिखकर आंतरिक यथार्थ बोध की संपुष्टि में योग दे रहे हैं। अभी हाल ही में कुछ नाटक प्रकाशित हुए हैं–

प्रभात कुमार भट्टाचार्य का 'काठ महल', गंगाप्रसाद विमल का 'आज

नहीं कल', प्रियदर्शी प्रकाश का 'सभ्य साँप', रमेश बख्शी का 'वामाचरण', भगवतीचरण वर्मा का 'वसीयत', इन्द्रजीत भाटिया का 'जीवन दण्ड' सुदर्शन चोपड़ा का 'काला पहाड़' शिवप्रसाद सिंह का 'घाटियां गूंजती हैं' नरेश मेहता का 'सुबह के घण्टे' ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'नेफा की एक शाम' अमृतराय की 'विंदियों की एक झलक' गोविन्द चातक का' अपने अपने खूंटे' विपिन कुमार अग्रवाल का 'लैटन', विष्णुप्रभाकर का 'टगर', सुरेन्द्र वर्मा का 'द्रोपदी' और 'आठवाँ सर्ग' भीष्म साहनी का 'कबिरा खड़ा बाजार में', राजेन्द्र प्रसाद का 'प्रतीतियों के बाहर' और 'चेहरों का जंगल' आदि। इन नाटकों में जो सामान्य प्रवृत्तियां उभर कर आई हैं वे इस प्रकार हैं–आकार में छोटे, वर्तमान जीवन से उनका सम्बन्ध, वस्तुवाद का प्राधान्य, अधिकांश मनोवैज्ञानिक और समस्यात्मक, रंगमंचीय संकेतों का बाहुल्य संकलन त्रय के पालन की प्रवृत्ति आदि। इनमें से अन्तर्मन की सच्चाइयों को नकार कर तटस्थता का मुखौटा लगा लेने का उपदेश देने वाले नाटककार कहां तक सफल हो पायेंगे, इसका सही मूल्यांकन उनकी आने वाली कृतियों से ही लग सकेगा।

किसी भी रचना की सम्पूर्णता कथ्य और शिल्प के सानुपातिक कलात्मक संयोजन में निहित रहती है। हिन्दी नाटकों में इन दोनों तत्त्वों के बीच तालमेल की स्थिति पर यदि विचार किया जाए तो हिन्दी के बहुत कम नाटक इस स्तर तक ऊंचे उठ पाते हैं। जब तक रंग जगत में वे सफल नहीं होते, उन्हें अर्थवान साबित नहीं किया जा सकता। यह एक सुखद संयोग है कि हिन्दी रंगमंच व्यापक स्तर पर राष्ट्रीय रंगमंच की भूमिका में क्रियाशील है। आज के हिन्दी नाटकों की उपलब्धि पर विचार किया जाए तो यह निष्कर्ष निकलता है कि हिन्दी नाटक ने अपनी निरर्थकता और कलाहीनता के घेरे को तोड़कर उल्लेखनीय सर्जनात्मकता प्राप्त करने की दिशा में कदम बढ़ाया है। और अब नाट्य लेखन केवल सतही सामाजिक उद्देश्यपरकता के आस-पास चक्कर नहीं काटता बल्कि गहरी या मूलभूत मानवीय अनुभूति या स्थितियों का संधान करता है। इन नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे जीवन और समाज की विसंगतियों को उभारते हैं, पीड़ा संत्रस और अजनबीपन के बीच आज के मानव की दयनीय नियति को रेखांकित करते हैं। स्वतंत्रता के बाद नाटक आधुनिक युग बोध के साथ ही जुड़ता नहीं दिखाई देता, वरन् रंगशिल्प के प्रति अधिक जागरुक भी हो गया है।

4

हिन्दी कहानी का इतिहास

प्रारम्भिक युग

हिन्दी में कहानी वस्तुत: द्विवेदी-युग से प्रारम्भ होती है। भारतेन्दु-काल में और उसके पूर्व जो कहानियाँ लिखी गयीं, वे पश्चिमी ढंग की आधुनिक कहानी से काफी भिन्न हैं। वैसे तो ब्रज-भाषा की वैष्णव वार्ताओं तथा दृष्टांतों, राजस्थानी बातों 'गिलक्राइस्ट' या लल्लूलाल द्वारा सम्पादित 'लतायफ' आदि की लघु कहानियों में कहानी के बहुत से तत्त्व हैं। राजस्थानी बातें तो कहानियाँ ही हैं, परन्तु आधुनिक कहानी से विषय-वस्तु और शैली दोनों दृष्टि से पृथक् है। इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' (1805 ई. के लगभग) भी दास्तान शैली की लम्बी कहानी ही है। वास्तविक मानव-जीवन से दूर, अतिमानव प्रसंगों से युक्त कथाकृति से हिन्दी कहानी-परम्परा का आरम्भ नहीं माना जा सकता। इसकी रचना शुद्ध हिन्दी की छटा दिखाने के लिए की गयी थी। 1860 ई. के आस-पास उस समय के शिक्षा-संचालकों की प्रेरणा से 'बुद्धफलोदय', 'सूरजपुर की कहानी', 'धरमसिंह का वृतान्त', 'तीन देवां की कहानी' आदि शिक्षात्मक कहानियाँ लिखी गयी थीं, जो प्राय: अंगेजी या उर्दू से अनुदित हैं। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' की लिखी और लिखवायी हुई 'गुलाब और चमेली का किस्सा', 'वीर सिंह वृतान्त' आदि रचनाएँ भी प्राय: अनुदित या रूपान्तरित हैं। हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियाँ आख्यायिका शैली की हैं। उनमें उल्लेखनीय हैं–पं.

माधवप्रसाद मिश्र रचित 'मन की चंचलता (1900 ई. के लगभग), किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'इन्दुमती' (1900 ई. के लगभग), 'गुलबहार', मास्टर भगवानदास कृत 'प्लेग की चुड़ैल', आचार्य रामचन्द्र शुक्लप्रणीत 'ग्यारह वर्ष का समय', गिरिजादत्त वाजपेयी की 'पंडित और पंडितानी' और 'पति का पवित्र प्रेम', बंगमहिला की 'दुलाई वाली' तथा 'कुम्भ में छोटी बहू', पार्वती नन्दन की 'मेरा पुनर्जन्म' और वृन्दावनलाल वर्मा द्वारा लिखित 'राखीबन्द भाई'। इनमें कई कहानियाँ बंगला और अंग्रेजी की कहानियों के अनुकरण पर लिखी गई हैं। कुछ काफी लम्बी हैं और शुद्ध कहानी की श्रेणी में नहीं आती। इन कहानियों में से प्रथम द्विवेदी-युग के प्रारम्भ में 'सुदर्शन' में तथा शेष कहानियाँ 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थीं। डॉ. श्रीकृष्णलाल किशोरी लाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' को हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का कहना है कि शुक्ल जी की 'ग्यारह वर्ष का समय' नामक कहानी ही हिन्दी की पहली कहानी है। लगभग इसी समय (1909 ई. से) प्रसाद जी की प्रेरणा से 'इन्दु' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसमें प्रकाशित प्रसाद जी की 'ग्राम' शीर्षक कहानी हिन्दी जगत में नए युग का प्रारम्भ करती है।

भारतेन्दु युग में लेखकों का ध्यान नाटक, निबन्ध और उपन्यास की ओर अधिक था। कहानी को उन्होंने अधिक महत्त्व नहीं दिया। द्विवेदी युग के प्रारम्भ में भी इस ओर कम ध्यान दिया गया। अनुवाद-कार्य, भाषा के परिष्कार और गद्य के अन्य रूपों पर साहित्यकारों ने अधिक बल दिया। इन सब कारणों से प्रसाद और प्रेमचन्द से पूर्व कहानी साहित्य की रचना बहुत कम हुई। उसमें वास्तविक साधारण जीवन का यथार्थ विचित्र न उभर सका। इन्हीं दिनों संस्कृत और अंग्रेजी नाटकों की कथाओं के आधार पर लम्बी आख्यायिकाएँ भी लिखी गयीं। अधिकतर कथानक-प्रधान (घटना-प्रधान), उपदेशात्मक-कल्पनात्मक, विस्मयपूर्ण, व्यंग्य विनोदमय कहानियाँ लिखी गईं। शैली की दृष्टि से प्रेमचन्द से पहले की हिन्दी कहानियाँ प्रायः तीन प्रकार की हैं—ऐतिहासिक शैली में, आत्मकथात्मक और यात्रा शैली में लिखित। द्विवेदी-युग में पारसनाथ त्रिपाठी, बंगमहिला और गिरिजाकुमार घोष ने बंगला की कई सुन्दर कहानियों का हिन्दी में अनुवाद किया। आधुनिक ढंग की अंग्रेजी कहानियों का अनुवाद भी द्विवेदी-युग में प्रारम्भ हुआ।

प्रसाद-प्रेमचन्द युग

सन् 1916 ई. के आस-पास प्रेमचन्द और प्रसाद कहानी के क्षेत्र में आए। इसके बाद हिन्दी कहानी पर अंग्रेजी और बंगला कहानीकारों का प्रभाव कम होने

लगा। द्विवेदी-युग की 'सरस्वती', 'सुदर्शन', 'इन्दु', 'हिन्दी गल्प-माला' आदि पत्रिकाओं का हिन्दी-कहानी के प्रारम्भिक विकास में बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन पत्रिकाओं में सैकड़ों मौलिक और अनुदित कहानियाँ प्रकाशित हुई, जिनमें विविध विषय और शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। कहानी का वास्तविक विकास प्रेमचन्द के समय से ही प्रारम्भ होता है। उनके समय से ही आख्यायिका के स्थान पर सच्ची कहानी का प्रारम्भ हुआ। कहानी में घटना की प्रधानता के स्थान पर पात्र और भावना की प्रधानता हुई। वास्तविक मानव-जीवन और मनोविज्ञान से उनका सम्बन्ध स्थापित हुआ। प्रसाद जी कहानी क्षेत्र में प्रेमचन्द से कुछ पहले आए थे। वे मूलत: कवि हैं और बाद में नाटककार। उनकी कहानियों में भी काव्यात्मकता और नाटकीयता है। उनकी कहानियों को लक्ष्य में रखते हुए उन्हें यथार्थपरक, आदर्शवादी या रोमांटिक आदर्शवादी कहा जा सकता है। प्रसाद की कहानियों के संग्रह हैं–'प्रतिध्वनि', 'आकाश–दीप', 'आंधी', 'इन्द्रजाल' तथा 'छाया'। प्रसाद ने अधिकतर भावना प्रधान, कल्पनापरक कहानियाँ लिखी, जो प्राय: सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। उन्होंने चरित्र-प्रधान कहानियाँ भी लिखी हैं। नाटकीयता, अर्थ की गंभीरता, भावुकतापूर्ण वातावरण, काव्यात्मक भाषा और सांकेतिक व्यंजना उनकी कहानियों की अन्य विशेषताएँ हैं। प्रसाद प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रेमी थे।

प्रेमचन्द का आधुनिक काल के यथार्थवादी जीवन पर अधिक आग्रह था। वे यथार्थवादी हैं। प्रेमचन्द ने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखी हैं। उनकी कहानियाँ 'मानसरोवर' (6 भाग) तथा 'गुप्त धन' (2 भाग) में संगृहीत हैं। 'प्रेम-पचीसी', 'प्रेम-प्रसून', 'प्रतिमा', 'सप्तसुमन' आदि नामों से भी उनकी कहानियों के संग्रह छपे हैं। प्रेमचन्द की प्रारम्भ की कहानियों में घटना की प्रधानता और वर्णन की प्रवृत्ति है। चरित्र-चित्रण और मनोविज्ञान की ओर उचित ध्यान नहीं दिया गया। भाषा अपरिपक्व तथा व्याकरण–सम्बन्धी दोषों से युक्त है। वस्तुत: प्रेमचन्द प्रारम्भ में उर्दू के लेखक थे और वहाँ से हिन्दी में आए थे। उनकी प्रारम्भिक राष्ट्रीय कहानियाँ 'सोजे वतन' संग्रह में प्रकाशित हुई थी। आगे चलकर प्रेमचन्द ने चरित्र-प्रधान, मनोविज्ञान-मूलक, वातावरण-प्रधान, ऐतिहासिक आदि कई प्रकार की कहानियाँ लिखीं और वास्तविक-जीवन तथा मानव-स्वभाव के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए। प्रेमचन्द की भाषा सरल, व्यावहारिक है और उनके संवाद स्वाभाविक तथा सजीव हैं। साधारण घटनाओं और बातों को मार्मिक बनाने में वे कुशल हैं। प्रेमचन्द नवीन जीवन-रुचि रखने वाले मानवतावादी लेखक थे।

प्रारम्भ में प्रेमचन्द गांधी और ताल्स्ताय से प्रभावित रहे। बाद में वे मार्क्स और लेनिन की विचारधारा की ओर झुक गए थे।

प्रसाद-प्रेमचन्दयुग के प्रारम्भ के कहानीकारों में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और पं. ज्वाला दत्त शर्मा के नाम भी उल्लेखनीय हैं। गुलेरी जी की 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है। इस कहानी में भावुक वीर तथा कर्त्तव्य-परायण लहनासिंह के पवित्र प्रेम और बलिदान का चित्रण है। सुन्दर ढंग से विकसित होने वाला, सुगठित, कौतूहलपरक नाटकीय कथानक, सजीव वातावरण, मार्मिक अन्त, संवादों तथा घटनाओं की योजना द्वारा पात्रों का स्वाभाविक चरित्र-चित्रण, पात्रानुकूल संवाद, मुहावरेदार सरल-जीवन्त भाषा और सांकेतिक अभिव्यक्ति इस कहानी की मुख्य विशेषताएँ हैं। गुलेरी ने केवल तीन कहानियाँ लिखी हैं, परन्तु तीन कहानियों के बल पर वे हिन्दी के इतिहास में अपना एक विशिष्ट स्थान बना गए हैं। सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ 'कौशिक', पांडेय बेचैन शर्मा, 'उग्र', 'चतुरसेन शास्त्री', 'रायकृष्णदास', 'चण्डीप्रसाद, 'हृदयेश', 'गोविन्द वल्लभ पंत', 'वृन्दावन लाल वर्मा', 'जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज', 'राधिकारमण प्रसाद सिंह', 'सियारामशरण गुप्त' और भगवतीप्रसाद वाजपेयी, प्रेमचन्द-प्रसाद-काल के अन्य उल्लेखनीय कहानीकार हैं।

सुदर्शन और कौशिक प्रेमचन्द की शैली के कहानीकार हैं। दोनों ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को अपनाकर सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और पारिवारिक कहानियाँ लिखी हैं। चरित्र-चित्रण और भाषा की दृष्टि से भी ये दोनों प्रेमचन्द के निकट हैं। सुदर्शन ने मानव-जीवन के विविध पक्षों और अनेक सामाजिक सत्यों का चित्रण किया है। कौशिक जी ने अपनी कई कहानियों में पारिवारिक जीवन के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं। उनकी 'ताई' नामक चरित्र प्रधान कहानी हिन्दी जगत् में प्रसिद्ध है। चरित्र-परिवर्तन उनकी कहानी में स्वाभाविक रूप से होता है। संवादों द्वारा पात्रों की मन:स्थिति पर कहीं-कहीं उन्होंने अच्छा प्रकाश डाला है। सुदर्शन के कहानी-संग्रहों के नाम हैं–'परिवर्तन', 'सुदर्शन-सुधा', 'तीर्थ यात्रा', सुदर्शन-सुमन', 'पुष्पलता', 'सुप्रभात', 'नगीना', 'फूलवती', 'पनघट'। कौशिक जी की कहानियाँ 'गल्पमन्दिर', 'चित्रशाला', 'प्रेम-प्रतिमा', 'कल्लोल' आदि शीर्षकों से प्रकाशित हुई है।

उग्र जी ('चाकलेट', 'चिंगारियां', 'इन्द्रधनुष', 'निर्लज्जा', 'दोजख की आग', 'बलात्कार', 'सनकी अमीर', 'पीली इमारत', 'चित्र-विचित्र', 'यह कंचन-सी काया', 'कला का पुरस्कार' आदि के लेखक) की कहानियों में

समाज और राजनीति का मार्मिक अंकन हुआ है। रूढ़ियों तथा राजनीतिक एवं राष्ट्रीय दुष्प्रवृत्तियों पर उन्होंने तीव्र रोष प्रकट किया है। उसके पात्र सजीव-सबल होते हैं, संवाद प्रायः छोटे तथा स्पष्ट और भाषा वक्र होने पर भी सरल। उग्र जी ने कई तरह की कहानियाँ लिखी हैं–भावुकता तथा कल्पना से पूर्ण प्रतीकात्मक, समस्या मूलक और नाटकीय रेखाचित्र जैसी। चतुरसेन (राजकण, अक्षय आदि) ने अधिकतर सामाजिक परिस्थितियों का अंकन किया है। राधाकृष्णदास ('सुधांशु' आदि) भावप्रधान कहानियों के लेखक हैं। वे प्रसाद-पद्धति के कहानीकार हैं। रायकृष्णदास ने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार की कहानियाँ लिखी हैं। लघु प्रकृति-चित्र भी उन्होंने कहीं-कहीं दिए हैं। उनकी भाषा संस्कृतपरक और प्रांजल है। चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' ('नन्दन निकुंज', 'वन माला' आदि) की कहानियाँ भी लगभग इसी प्रकार की भाषा-शैली में लिखी गयी हैं–भावुकता, उच्च भावों की व्यंजना, स्वल्प कथानक और अलंकृत भाषा उनकी विशेषताएं हैं। पं. गोविन्द वल्लभ पंत में भी भावुकता तथा कल्पना की रंगीनी है, साथ ही यथार्थ की कटुता भी प्राप्त होती है। उनकी कहानियों में रोचकता भी काफी है।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा ('कलाकार का बल' आदि) मुख्यतः उपन्यासकार हैं। उनकी कहानियों में कल्पना तथा इतिहास का समन्वय होता है और सरल, स्वाभाविक भाषा–शैली होती है। प्रायः सभी कहानियाँ वर्णनपरक, बहिर्द्वन्दपूर्ण तथा आदर्शोन्मुख हैं। राधिकारमणप्रसाद सिंह की शैली भी काव्यात्मक तथा जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' (किसलय, मृदुदल, मधुमयी आदि) की कहानियाँ भी मार्मिक तथा करुणापूर्ण हैं। राधिकारमण प्रसाद सिंह की शैली भी काव्यात्मक तथा अलंकृत ही है। उनकी कहानियों का वातावरण प्रायः भावात्मकता तथा मार्मिकता से पूर्ण होता है। सियारामशरण गुप्त की कहानियों में सरल रोचक शैली में कोमल भावों की अभिव्यक्ति हुई है। भगवती प्रसाद वाजपेयी (पुष्करिणी, खाली बोतल, हिलोर आदि) की कहानियों में प्रायः घटनाओं की सांकेतिक व्यंजना रहती है। उन्होंने असाधारण परिस्थितियों में पड़े हुए नर-नारियों के चरित्र का मनोवैज्ञानिक निरूपण किया है। इस समय के अन्य उल्लेखनीय कहानीकार हैं–विनोद शंकर व्यास, मोहनलाल महतो 'वियोगी'तथा शिवपूजन सहाय। सुमित्रानन्दन पंत और निराला जीने भी कुछ कहानियाँ लिखी हैं। उपर्युक्त कहानीकारों में कौशिक, सुदर्शन, वाजपेयी आदि प्रेमचन्द के आदर्शों से प्रभावित हैं और राधिकारमण प्रसाद सिंह, रायकृष्णदास, विनोदशंकर व्यास, द्विजआदि

प्रसाद के आदर्शों से। कुछ कहानीकार अपना पृथक् व्यक्तित्त्व रखते हैं और उन्हें इन दोनों में से किसी वर्ग में नहीं रखा जा सकता।

वर्तमान युग–तीन पीढ़ियाँ

वर्तमान समय में हिन्दी में कई पीढ़ियाँ एक साथ कहानी लिखने में लगी रही हैं। प्रेमचन्द काल के उत्तरार्द्ध में इस क्षेत्र में आने वाले कुछ कहानीकार हैं–जैनेन्द्र ('फांसी' 'स्पर्द्धा', 'वातायन', 'पाजेब', 'जयसंधि', 'एकरात', 'दो चिड़ियां' आदि), यशपाल ('वो दुनिया', 'ज्ञान दान', 'अभिशप्त', 'पिंजड़े की उड़ान', 'तर्क का तूफान', 'चित्र का शीर्षक', 'यशपाल–श्रेष्ठ कहानी') इलाचन्द जोशी ('रोमांटिक छाया', 'आहुति', 'दिवाली और होली', 'कंटीले फूल लजीले कांटे'), अज्ञेय ('त्रिपथगा', 'कोठरी की बात', 'परम्परा', 'जयदोल' आदि) भगवतीचरण वर्मा ('दो बाँके', 'इन्स्टालमेंट आदि), चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ('चन्द्रकला', 'वापसी', 'अमावस', 'तीन दिन')। ये कथाकार जो उस समय नयी पीढ़ी के कहानीकार माने जाते थे अब पुराने हो चुके हैं। इनके बाद कहानीकारों की दो और पीढ़ियां विकसित हो चुकी हैं। इन तीनों पीढ़ियों के कहानीकारों ने हिन्दी कहानी का विषय-वस्तु तथा शिल्प दोनों दृष्टियों से पर्याप्त विकास किया है।

जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय ने चरित्र-प्रधान मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखी हैं। मार्मिक दृश्यों का चयन, एक ही दृश्य या घटना के सहारे कथानक का निर्माण करके देशकाल के संकलन का निर्वाह, असाधारण परिस्थितियों में पड़े मानवों का सूक्ष्म मनोविश्लेषण, विचारात्मकता और यत्र-तत्र वक्र-अस्पष्ट भाषा जैनेन्द्र की कहानी-कला की विशेषताएं हैं। इलाचन्द्र जोशी की कहानियों में मनोवैज्ञानिक सत्यों का मार्मिक उद्घाटन है। साधारण-असाधारण दोनों प्रकार के पात्रों का चित्रण उन्होंने किया। जोशी जी का कहना है कि मनोविश्लेषण करते हुए व्यक्ति के अहं पर प्रहार करना ही मेरा लक्ष्य है। अज्ञेय ने मनोवैज्ञानिक तथा सामयिक सत्य की व्यंजना करने वाली कहानियों के साथ समाज के मध्यम-वर्ग के दैनिक जीवन की विशेषताओं और उनकी साधारण तथा कारुणिक स्थितियों के खण्ड-चित्र प्रस्तुत करने वाली कहानियाँ भी लिखी हैं और राजनीतिक विद्रोह से सम्बन्धित कहानियाँ भी। इनकी कई कहानियाँ पात्रों के पिछले जीवन की अस्फुट चित्र–कल्पनाओं के रूप में हैं। कुछ अधूरापन-सा होने पर भी अज्ञेय की कहानियाँ प्रभावपूर्ण होती हैं।

यशपाल प्रगतिशील लेखक थे। जीवन के संघर्षो और विविध परिस्थितियों का उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर सजीव अंकन किया है। उनकी कहानियों में वर्तमान समाज की विशेषताओं पर तीव्र व्यंग्य-प्रहार है। भगवतीचरण वर्माकी शैली बड़ी सरस और आकर्षक है। इनकी कहानियों में पात्र कम होते हैं, परन्तु वे पूर्णत: सजीव और विश्वसनीय हैं। आप आधुनिक मानव और उसके जीवन को अच्छी तरह समझते हैं। सामाजिक तथा ऐतिहासिक–दोनों प्रकार की कहानियाँ उन्होंने लिखी हैं। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने दैनिक जीवन की साधारण घटनाओं को लेकर प्रभावपूर्ण कहानियाँ लिखी हैं। उन्होंने मनोवैज्ञानिक अध्ययन करते हुए कुछ शाश्वत सत्यों और साथ ही सामयिक सत्यों की सुन्दर व्यंजना की है। उनकी कुछ कहानियों में एक सुगठित कथानक न होकर कई सम्बद्ध कथा-खण्ड प्रस्तुत किए गये हैं, जिनके द्वारा उन्होंने किसी सत्य की व्यंजना की है। इन कहानीकारों ने चरित्र-प्रधान, प्रभाववादी, मनोविश्लेषणपरक, भावना-प्रधान, वातावरण-प्रधान, किसी शाश्वत या सामयिक सत्य की व्यंजना करने वाली कई प्रकार की कहानियाँ लिखी हैं। ऐतिहासिक शैली के अलावा, आत्मकथा, पत्र, डायरी आदि अनेक शैलियों का प्रयोग किया गया है।

आधुनिक काल की इस पहली पीढ़ी के कुछ बाद और दूसरी पीढ़ी के कुछ पहले आने वाले उल्लेखनीय कथाकार हैं–उपेन्द्रनाथ अश्क, नागार्जुन, ऊषादेवी मित्र, पहाड़ी, विष्णु प्रभाकर, अमृतराय, रांगेय राघव। दूसरी पीढ़ी के उल्लेखनीय कथाकार हैं–फणीश्वरनाथ रेणु, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मार्कण्डेय, अमरकांत, मोहन राकेश, नरेश मेहता, शिवप्रसाद सिंह, धर्मवीर भारती, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, शैलेश मटियानी, मुद्राराक्षस। हिन्दी की बिल्कुल नई पीढ़ी के कहानीकारों में उल्लेखनीय हैं–निर्मल वर्मा, रामकुमार, विजय चौहान, कृष्ण बलदेव वैद। 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' (राजेन्द्र यादव), 'चाँद और टूटे हुए लोग' (धर्मवीर भारती), 'धरती अब भी घूम रही है' (विष्णु प्रभाकर), 'जानवर और जानवर', 'नए बादल' (मोहन राकेश), 'गीली मिट्टी' (अमृतराय), 'कुमारी' (रेणु), 'भूदान' (मार्कण्डेय), 'चाय का रंग' (देवेन्द्र सत्यार्थी), 'जीने की सजा' (आरिगपूडि), 'नरक का न्याय' (मोहरसिंह सेंगर), 'प्यार के बन्धन' (रावी), 'मेरी तेतीस कहानियाँ' (शैलेश मटियानी) आदि संग्रह चर्चा में रहे हैं। हिन्दी की नवीनतम कहानियों में कथा-तत्त्व की न्यूनता, कामकुण्ठाओं का विश्लेषण, व्यक्ति की पीड़ा, विवशता की अभिव्यक्ति, किसी मन: स्थिति का अंकन और आलोचना-प्रवृत्ति भी दृष्टिगोचर होती है। वर्तमान युग में आँचलिक

कहानियाँ भी लिखी गयी हैं। भावकथाएँ, गाथाएँ और लम्बी कहानियाँ पत्रिकाओं में दिखाई देती हैं।

हिन्दी में हास्य और व्यंग्य प्रधान कहानियाँ भी लिखी गई हैं। इस प्रकार की कहानियाँ जी. पी. श्रीवास्तव, हरिशंकर शर्मा, कृष्णदेव प्रसाद गौड़, अन्नपूर्णानन्द, हरिशंकर परसाई, शरद जोशीआदि ने लिखी हैं। जहूर बख्शी आदि ने बाल कहानियाँ लिखी हैं। नारी कहानीकारों में सुभद्रा कुमारी चौहान, सत्यवती मलिक, कमला चौधरी, शिवरानी देवी, तारा पाण्डे आदि ने अच्छा कार्य किया है।

आज के प्रयोगवादी युग में हिन्दी कहानी सभी रूपों में बढ़ रही है। कुछ कहानीकार कथानक-रहित कहानी लिखने का यत्न कर रहे हैं। कहानी बहुत अमूर्त (ऐबस्ट्रैक्ट) होती जा रही है। आज कहानी में प्रायः एक मनःस्थिति, क्षण-विशेष की अनुभूति, व्यंग्यचित्र या चिन्तन की झलक प्रस्तुत की जाती है। कहानी में विषय-वस्तु क्षीण, पात्र बहुत थोड़े (एक दो ही) और अस्पष्ट होते जा रहे हैं और पुराने ढंग की सरलता समाप्त होती जा रही है। नयी कविता की तरह नयी कहानी भी कहानीपन छोड़कर निबन्ध के निकट (कथात्मक निबन्ध के निकट) पहुंच रही है। भारतेन्दु-काल में जो कहानी घटना-प्रधान थी, प्रेमचन्द युग में जो चरित्र-प्रधान तथा मनोवैज्ञानिक हुई, जैनेन्द्र-अज्ञेय के उत्कर्ष-काल में जो कहानी घटना-प्रधान थी, प्रेमचन्द युग में, जो चरित्र- प्रधान तथा मनोवैज्ञानिक हुई, जैनेन्द्र-अज्ञेय के उत्कर्ष-काल में जो मनोविश्लेषणमय तथा चिन्तनपरक बनी, वही अब कथानकपरक तो है ही नहीं, चरित्र-चित्रणपरक भी नहीं रही। विषय-वस्तु और शिल्प दोनों में वह काफी आगे बढ़ गई है। काशीनाथ सिंह, ज्ञान रंजन, सुरेश सेठ, गोविन्द मिश्र, मृदुला गर्ग, नरेन्द्र मोहन, मृणाल पाण्डेय, उदय प्रकाश, ओम प्रकाश वाल्मीकि, चित्र प्रभा मुदगल, प्रभा खेतान, नासिरा शर्मा आदि अनेक कथाकार हैं जिन्होंने बदलते मनुष्य, समाज, परिस्थितियों, समस्याओं को अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की है।

5

हिन्दी एकांकी का इतिहास

आधुनिक हिन्दी साहित्य की जिन गद्यात्मक विधाओं का विकास विगत एक शताब्दी में हुआ है, उनमें एकांकी का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से, हिन्दी-साहित्य में इसका उद्‌भव उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में माना जाता है। यदि इसके संवादात्मक स्वरूप एवं एक नाट्य विधा के अस्तित्त्व के परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाये तो इसके सूत्र हमें अत्यन्त प्राचीन समय से मिलने लगते हैं।

आधुनिक एकांकी वैज्ञानिक युग की देन है। विज्ञान के फलस्वरूप मानव के समय और शक्ति की बचत हुई है। फिर भी जीवन संघर्ष में मानव की दौड़-धूप अव्याहत जारी है। जीवन की त्रस्तता और व्यस्तता के कारण आधुनिक मानव के पास इतना समय नहीं है कि वह बड़े-बड़े नाटकों, उपन्यासों, महाकाव्यों आदि का सम्पूर्णतः रसास्वादन कर सके और इसलिए गीत, कहानी, एकांकी आदि साहित्य के लघु रूपों को अपनाया जा रहा है। किन्तु एकांकी की लोकप्रियता का एकमात्र कारण समयाभाव ही नहीं है। भोलानाथ तिवारी के शब्दों में ''यह नहीं कहा जा सकता कि चूंकि हमारे पास बड़ी-बड़ी साहित्यिक रचनाओं को पढ़ने के लिए समय नहीं हैं, इसलिए हम गीत, कहानी, एकांकी आदि पढ़ते हैं। बात यह है कि हम जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं और समस्याओं आदि को क्रमबद्ध एवं समग्र रूप से भी अभिव्यक्त देखना चाहते हैं और उन अभिव्यक्तियों का स्वागत करते हैं मगर साथ ही साथ किसी एक महत्त्वपूर्ण

भावना, किसी एक उद्दीप्त क्षण, किसी एक असाधारण एवं प्रभावशाली घटना या घटनांश की अभिव्यक्ति का भी स्वागत करते हैं। हम कभी अनगिन फूलों से सुसज्जित सलोनी वाटिका पसन्द करते हैं और कभी भीनी सुगन्धि देने वाली खिलने को तैयार नन्हीं सी कली। दोनों बातें हैं, दो रुचियाँ हैं, दो पृथक् किन्तु समान रूप से महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण हैं, समय के अभाव या अधिकता की इसमें कोई बात नहीं।''

इस प्रकार, समयाभाव के अतिरिक्त एकांकी की लोकप्रियता के अन्य भी कई कारण हैं यथा देश में सिनेमा के बढ़ते हुए प्रभाव के विरुद्ध हिन्दी रंगमंच के उद्धार द्वारा जीवन और साहित्य में सुरुचि का समावेश करना, रेडियो से हिन्दी एकांकियों की मांग, केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-विभाग की ओर से आयोजित 'यूथ फेस्टीवल' में एकांकी नाटक का भी प्रतियोगिता का एक विषय होना, विश्वविद्यालयों में विशेष अवसरों पर एकांकी नाटकों का अभिनय आदि। इन सब कारणों के परिणामस्वरूप एकांकी नाटक आज एक प्रमुख साहित्यिक विधा बन गया है।

एकांकी ने नाटक से भिन्न अपना स्वतंत्र स्वरूप प्रतिष्ठित कर लिया है। एकांकी बड़े नाटक की अपेक्षा छोटा अवश्य होता है, परन्तु वह उसका संक्षिप्त रूप नहीं है। बड़े नाटक में जीवन की विविधरूपता, अनेक पात्र, कथा का साँगोपांग विस्तार, चरित्र-चित्रण की विविधता, कौतूहल की अनिश्चित स्थिति, वर्णनात्मकता की अधिकता, चरम सीमा तक विकास तथा घटना-विस्तार आदि के कारण कथानक की गति मन्द होती है जबकि एकांकी में, इसके विपरीत, जीवन की एकरूपता, कथा में अनावश्यक विस्तार की उपेक्षा, चरित्र-चित्रण की तीव्र और संक्षिप्त रूप-रेखा, कौतूहल की स्थिति, प्रारम्भ से ही व्यंजकता की अधिकता और प्रभावशीलता, चरम सीमा तक निश्चित बिन्दु में केन्द्रीयकरण तथा घटना-न्यूनता आदि के कारण कथानक की गति क्षिप्र होती है सद्गुरुशरण अवस्थी का कथन है कि ''जीवन की वास्तविकता के एक स्फुलिंग को पकड़कर एकांकीकार उसे ऐसा प्रभावपूर्ण बना देता है कि मानवता के समूचे भाव जगत् को झनझना देने की शक्ति उसमें आ जाती है।''

ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी-एकांकी के विकास-क्रम को निम्नलिखित प्रमुख काल-खण्डों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) भारतेन्दु-द्विवेदी युग (1875-1928)

(2) प्रसाद-युग (1929-37)

(3) प्रसादोत्तर-युग (1938-47)
(4) स्वातंत्र्योत्तर-युग (1948 से अब तक)

वास्तव में प्रारम्भिक एकांकी-प्रयोगों में भी भटकती हुई नाट्य-दृष्टि ही प्रमुखता से उभरकर सामने आई है, किन्तु विकास की दृष्टि से उन्हें नकारा नहीं जा सकता।

भारतेन्दु-द्विवेदी युग

जिस प्रकार भारतेन्दु हिन्दी में अनेकांकी नाटकों के लिखने वालों में प्रथम नाटककार माने जाते हैं उसी प्रकार हिन्दी में सबसे पहला एकांकी भी उन्होंने ही लिखा। यद्यपि इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद अवश्य है। फिर भी भारतेन्दु-प्रणीत 'प्रेमयोगिनी' (1875 ई.) से हिन्दी एकांकी का प्रारम्भ माना जा सकता है। आलोच्य युग में विषयगत दृष्टिकोण को सामने रखकर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ उभरीं। समाज में प्रचलित प्राचीन परम्पराओं, कुप्रथाओं एवं स्वस्थ सामाजिक विकास में बाधक रीति-रिवाजों को दूर करने का प्रयास उन सामाजिक समस्या-प्रधान रचनाओं के माध्यम से किया गया। इन एकांकीकारों ने जहाँ सामाजिक कुरीतियों पर हास्य एवं व्यंग्यपूर्ण प्रहार किये वहीं सामाजिक नव-निर्माण के लिए भी समाज को प्रेरित एवं जाग्रत किया। इन रचनाओं के पात्र भारतीय जन-जीवन के जीवित एवं सजीव पात्र हैं जिनके संवादों द्वारा भारतीय भद्र जीवन में प्रविष्ट पाखण्ड एवं व्याभिचार का भंडाफोड़ होता है। इस दृष्टि से भारतेन्दु-रचित 'भारत-दुर्दशा', प्रतापनारायण मिश्र रचित 'कलि कौतुक रूपक', श्री शरण-रचित 'बाल-विवाह', किशोरीलाल गोस्वामी-रचित 'चौपट चपेट', राधाचरण गोस्वामी-रचित 'भारत में यवन लोक', 'बूढ़े मुँह मुहासे' आदि महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं जिनमें धार्मिक पाखण्ड, सामाजिक रूढ़ियों एवं कुरीतियों पर तीखे व्यंग्य किये गये हैं। देवकीनन्दन रचित 'कलियुगी उनेऊ', 'कलियुग विवाह', राधाकृष्णदास रचित 'दुखिनी बाला', काशीनाथ खत्री रचित 'बाल विधवा' आदि रचनाएं भारतीय नारी के त्रस्त विवाहित जीवन का यथार्थ चित्रण हैं। सामाजिक भ्रष्टाचार का चित्रण कातिक प्रसाद खत्री-रचित 'रेल का विकट खेल' में मिलता है जिसमें रेलवे विभाग में रिश्वत लेने वालों का भण्डा-फोड़ किया गया है। समाज सुधार की परम्परा के पोषक इन एकांकीकारों के प्रयास के फलस्वरूप भारतीय समाज का यथार्थ चित्रण समाज के समक्ष उपस्थित हुआ तथा इन्हीं के द्वारा जन सामान्य को नवीन एवं प्रगतिशील

विचारों को ग्रहण करने की प्रेरणा भी मिली। इन्हीं के प्रयासों का परिणाम था कि भारतीय जनता समाज में प्रचलित रूढ़ियों एवं परम्पराओं के प्रति घृणाभाव से भर उठी तथा उनके उन्मूलन के लिए कृत संकल्प हो गयी।

इस प्रकार भारतेन्दु युग नव-चेतना और जागृति का युग था। देशभक्ति और राष्ट्रीयता का उन्मेष होने से इस काल के एकांकीकारों ने जन-जागृति के विचारों को मुखरित करने वालेनाटक लिखे। जिनमें भारत की तत्कालीन दुर्दशा, पराधीनता पर क्षोभ, अतीत की स्मृति, राष्ट्र में आत्म गौरव की भावना का जागरण, राष्ट्रहित, आशा-निराशा का द्वन्द, उज्ज्वल भविष्य आदि का चित्रण किया गया है। इस युग में सामाजिक नवजागरण के साथ-साथ राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने का प्रयत्न भी किया गया है। इस सम्बन्ध में भारतेन्दु-कृत 'भारत दुर्दशा' एवं 'भारत-जननी', राधाकृष्ण गोस्वामी-कृत 'भारत माता' और 'अमरसिंह राठौर', राधाकृष्ण दास-कृत 'महारानी पद्मावती', रामकृष्ण वर्मा-कृत 'पद्मावती' 'दीर नारी' आदि उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु-कालीन एकांकियों की धार्मिक पौराणिक धारा के अन्तर्गत वे एकांकी आते हैं, जिनमें धार्मिक कथानकों के आधार पर भारतीय संस्कृति का आदर्श रूप प्रस्तुत किया गया है। इस क्षेत्र में भारतेन्दु जी के 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'धनंजय', लाला श्रीनिवासदास का 'प्रींद चरित्र', बद्रीनारायण प्रेमधन का 'प्रयाग राजा-गमन', राधाचरण गोस्वामी का 'श्रीदामा' और 'सती चन्द्रवली' बालकृष्ण भट्ट का 'दमयन्ती स्वयंवर', जैनेन्द्र किशोर का 'सोमावती' अथवा 'धर्मवती', कार्तिक प्रसाद का 'ऊषाहरण', 'गंगोत्तरी', 'द्रौपदी चीर हरण' और 'निस्सहाय हिन्दू', मोहनलाल विष्णुलाल पाण्डया का 'प्रींद', खड्ग बहादुर मल का 'हरतालिका' आदि में धार्मिक कथानकों पर आधारित पौराणिक एकांकियों के माध्यम से सांस्कृतिक आदर्श प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया।

आलोच्य युग में हास्य-व्यंग्य-प्रधानएकांकी सर्वाधिक लिखे गए जो प्रहसन की श्रेणी में आते हैं। ये प्रहसन धार्मिक और सामाजिक दोनों प्रकार के विषयों को अपने भीतर समेटे हुए हैं। इन प्रहसनों पर पारसी रंगमंच का सर्वाधिक प्रभाव है इसलिए उच्चकोटि का हास्य एवं व्यंग्य इनमें नहीं मिलता। फिर भी सामाजिक क्षेत्र में बाल-विवाह, अनमेल विवाह, वेश्यागमन, मद्यपान, विलासप्रियता आदि पर व्यंग्य किया गया है और धार्मिक क्षेत्र में धार्मिक संकीर्णता और उसकी आड़ में किया पाखण्ड, पंडागिरी, कर्मकाण्ड, ज्योतिषियों की धोखेबाजी आदि पर आक्षेप किए गए हैं। इस प्रकार के एकांकियों में कमलाचरण मिश्र का

'अद्‌भुत नाटक', श्री जगन्नाथ का 'वर्ण व्यवस्था', माधोप्रसाद का 'वैसाखनन्दन', घनश्यामदास का 'वृद्धावस्था-विवाह', दुर्गाप्रसाद मिश्र का 'प्रभात मिलन', अम्बिकादत्त व्यास का 'गौ-संकट' और 'मन की उमंग', देवकीनन्दन त्रिपाठी का 'जय नरसिंह की', 'सैकड़ों में दस-दस', 'कलयुगी जनेऊ', 'कलियुगी विवाह', 'एक एक के तीन तीन', 'बैल छः टके का', 'वेश्याविलास' आदि, बालकृष्ण का 'शिक्षादान', खड्‌गबहादुर मल का 'भारत-आरत' आदि उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त रचनाओं में से कुछ का उल्लेख नाटक के अन्तर्गत भी किया जाता है। वास्तव में ये एक अंक के नाटक ही हैं। एकांकी की परम्परा में आते हुए भी इन्हें सभी दृष्टियों से पूर्ण 'एकांकी' नहीं कहा जा सकता। इनमें एकांकी के कुछ तत्त्व अवश्य ढूँढ़े जा सकते हैं।

कुल मिलाकर विचार किया जाये तो ज्ञात होगा कि उस काल के एकांकी-साहित्य को प्रेरित करने वाली कई नाट्य शैलियाँ थीं–(क) संस्कृत की नाट्य परम्परा (ख) अंग्रेजी, बंगला, पारसी रंगमंच और (ग) लोक नाटक। आलोच्य युग के सभी एकांकीकारों ने इन्हें आत्मसात् किया। इस प्रकार इस युग में परम्परा के प्रभाव की प्रधानता रही। नए-नए प्रयोग होते रहे। इसलिए कला की सूक्ष्म दृष्टि इस काल के एकांकीकारों में भले न हों, पर वे आधुनिक एकांकियों के पूर्वगामी अवश्य हैं।

प्रसाद-युग

हिन्दी एकांकी के विकास की दृष्टि से द्वितीय युग प्रसाद के युग से जाना जाता है। इस संदर्भ में आधुनिक एकांकी-साहित्य की प्रथम मौलिक कृति के रूप में प्रसाद के 'एक घूँट' का उल्लेख किया जा सकता है। यह रचना सन् 1929 में प्रकाशित हुई। यहीं से हम एकांकी के शिल्प में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन देखते हैं। रसोद्रेक के लिए संगीत-व्यवस्था, संस्कृत नाट्य प्रणाली का विदूषक, स्वगत कथन आदि प्राचीन परम्पराओं के निर्वाह के साथ ही स्थल की एकता, पात्रों का मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण, गतिशील कथानक, आदि आधुनिक एकांकी की सभी विशेषताएं 'एक घूंट में' मिलती है, अतः भारतेन्दु ने यदि आधुनिक एकांकी की नींव डाली है तो उसे पल्लवित और पुष्पित करने का श्रेय प्रसाद जी को ही है।

वास्तव में आधुनिक ढंग से हिन्दी एकांकियों का विकास प्रसाद-युग में ही हुआ क्योंकि इस युग में कुछ महत्त्वपूर्ण नवीन प्रयोग एकांकी क्षेत्र में हुए। इस युग में एकांकीकारों ने पाश्चात्य अनुकरण पर नवीन शैली में एकांकी लिखना प्रारम्भ किया तथा पाश्चात्य टेकनीक को अपनाया। स्पष्टत: इस युग में एकांकी नाटकों में पाश्चात्य नाट्य सिद्धान्तों की प्रेरणा एवं प्रभाव विद्यमान है। पाश्चात्य नाटककारों हैनरिक, इब्सन, गाल्सवर्दी तथा बर्नार्ड शॉ आदि का प्रभाव इस युग के एकांकियों पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ा तथा इससे एकांकी साहित्य को परिपक्वता की स्थिति पर पहुंचने में सहायता मिली। भारतेन्दु युग में जो एकांकी संस्कृत परिपाटी पर विरंचित हुआ था, इस युग में आकर वह नवीन रूपों में विकसित होने लगा। प्राचीनता का मोह छोड़कर नवीन ढंग के एकांकी नाटक लिखे गये जो कथानक की दृष्टि से मानव जीवन के अत्यधिक निकट थे। प्राचीन कथावस्तु में जो कृत्रिमता होती थी उसके स्थान पर सामाजिक, पारिवारिक एवं दैनिक समस्याओं को एकांकी का विषय बनाना प्रारम्भ किया गया। ये रचनाएं समाजिक यथार्थ के निकट आयीं। प्राचीन कृत्रिम प्रणाली, काव्यमय कथोपकथन, प्राचीन रंगमंच एवं अस्वाभाविकता के बहिष्कार का स्वर इस युग की रचनाओं में प्रमुखतया प्राप्त होता है। नई समस्याएँ, विचारधारा एवं गद्यात्मक शिष्ट भाषा का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

इस युग के अधिकांश एकांकी रंगमंच को दृष्टि में रखकर लिखे गये जिससे उनका अभिनय हो सके और प्रेक्षक अपना ज्ञानवर्धन कर सकें। एकांकी में प्रयुक्त संवादों में सजीवता, संक्षिप्तता एवं मार्मिकता की ओर ध्यान दिया गया। प्रहसन, फेंटेसी, गीति-नाट्य, ओपेरा, संवाद या सम्भाषण, रेडियो प्ले, झांकी तथा मोनोड्रामा आदि एकांकी से नवीन रूपों का विकास इसी युग में हुआ। युगीन सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि का प्रभाव आलोच्य युगीन एकांकीकारों की रचनाओं पर पड़ने के कारण कतिपय प्रवृत्तियों का जन्म हुआ जिनमें सामाजिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक प्रवृत्तियां प्रमुख हैं।

प्रसाद-युग में जिन सामाजिक एकांकियों की रचना हुई उन पर युगीन सामाजिक पृष्ठभूमि का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। इस युग के अनेक एकांकीकारों ने सामाजिक जीवन की विभिन्न पक्षीय समस्याओं का चित्रण किया है तथा उसमें प्रचलित विभिन्न जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों को अपनी आलोचना का केन्द्र बनाया है। बाल-विवाह, विधवा-पुनर्विवाह, जातीयता, अस्पृश्यता की समस्या, मद्यपान, जुआ तथा समाज में फैला व्याभिचार आदि समस्याएँ जिस रूप में

भारतेन्दु युग में परिव्याप्त थीं वह अभी तक उसी रूप में बनी हुई थी। यद्यपि भारतेन्दु युगीन एकांकीकारों ने भी इन पर प्रहार किया था, किंतु इनका निवारण अथवा उन्मूलन सरल नहीं था क्योंकि इनकी जड़ें समाज में बहुत गहरी थीं। अतः प्रसाद युगीन एकांकीकारों ने भी विषय-रूप में इन सामाजिक समस्याओं को अपनी रचनाओं में चित्रित किया।

तत्कालीन समाज की नग्न विकृतियों का चित्रण करने वाले अनेक एकांकियों की रचना इस युग में हुई। जीवानन्द शर्मा कृत 'बाला का विवाह' सुधारवादी दृष्टिकोण को प्रकट करता है। हरिकृष्ण शर्मा कृत 'बुढ़ऊ का ब्याह' वृद्ध अनमेल विवाह एवं दहेज समस्या पर कुठाराघात है। जी. पी. श्रीवास्तव रचित 'गड़बड़झाला' में वृद्धों की अनियंत्रित काम वासना एवं समाज के लोगों का भ्रष्टाचार चित्रित किया गया है। रामसिंह वर्मा कृत 'रेशमी रूमाल' में पतिव्रत धर्म की प्रतिष्ठा, शैक्षिक वृत्तियों एवं रोमांस की त्रुटियों का चित्रण है। प्रेमचन्द कृत 'प्रेम की देवी में' लेखक ने अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन प्रबल रूप में किया है। श्री बद्रीनाथ भट्ट कृत 'विवाह विज्ञापन' में आधुनिक शिक्षित वर्ग की रोमांस वृत्ति पर व्यंग्यात्मक प्रहार है। डॉ. सत्येन्द्र कृत 'बलिदान' में दहेज समस्या का चित्रण है। जी. पी. श्रीवास्तव-कृत 'भूलचूक' से विधवा विवाह समर्थन, 'अच्छा उर्फ अक्ल की मरम्मत' में शिक्षित पति एवं अशिक्षित पत्नी के मध्य उत्पन्न कटुता, 'लकड़बग्घा' में ऋण समस्या आदि पर व्यंग्य किया गया है। इनके अतिरिक्त 'बंटाधार', 'दुमदार आदमी', 'कुर्सीमैन', 'पत्र पत्रिका सम्मेलन', 'न घर का न घाट का', 'चोर के घर मोर' आदि रचनाओं में श्रीवास्तव जी का दृष्टिकोण सुधारवादी रहा है। श्रीवास्तव जी का 'अछूतोद्धार' एकांकी अछूत समस्या पर लिखा गया है। श्री चण्डीप्रसाद हृदयेश कृत 'विनाश लीला' में भारतीय नारी के जन्म से अन्त तक के सामाजिक कष्टों का चित्रण है। पं. हरिशंकर शर्मा कृत 'बिरादरी विभ्राट', 'पाखण्ड प्रदर्शन', तथा 'स्वर्ग की सीधी सड़क' सामाजिक छुआछूत तथा वर्ग वैषम्य की हानियों को चित्रित करते हैं। श्री सुदर्शन कृत 'जब आँखें खुलती हैं' में वेश्या का हृदय-परिवर्तन स्वाधीनता संग्राम के वातावरण में चित्रित किया गया है। आलोच्य युग में श्री रामनरेश त्रिपाठी कृत 'समानाधिकार', 'सीजन डल है', 'स्त्रियों की काउन्सिल', पांडेय बेचन शर्मा उग्र-कृत 'चार बेचारे', बेचारा सम्पादक', बेचारा सुधारक', श्री रामदास-कृत 'नाक में दम', 'जोरू का गुलाम', 'करेन्सी नोट', 'लबड़ धौं धौं' आदि एकांकियों को भी विशेष ख्याति प्राप्त हुई है।

भारतेन्दु युग में जिस राजनीतिक एकांकी की प्रवृत्ति का उदय हुआ था वह प्रसाद-युग में आकर और अधिक गतिशील हो गई। इस युग में राष्ट्रीयता का स्वर सर्वाधिक मुखरित हुआ है। राजनीतिक भावना से प्रभावित होकर एकांकीकारों ने अपनी रचनाओं से स्वतंत्रता-आन्दोलन, विदेशी शासन के प्रति आक्रोश एवं घृणा तथा स्वतंत्रता की भावनाओं का स्वर मुखरित किया है। इस संदर्भ में मंगल प्रसाद विश्वकर्मा कृत 'शेरसिंह', सुदर्शन कृत 'प्रताप प्रतिज्ञा', 'राजपूत की हार', तथा 'जब आंखें खुलती हैं' आदि राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत एकांकी रचनाएं हैं। श्री ब्रजलाल शास्त्री रचित 'दुर्गावती' में विद्रोह एवं स्वातंत्र्य भावना की प्रधानता है। 'पन्ना धाय' में स्वामिभक्ति एवं अपूर्व बलिदान का चित्रण है। बद्रीनाथ भट्ट कृत 'बापू का स्वर्ग समारोह' में राष्ट्रपिता बापू के अपूर्व त्याग एवं बलिदान युक्त चरित्र का उद्घाटन किया गया है। श्री वृन्दावन लाल वर्मा रचित 'दुरंगी' में भारतीय नारियों को देश प्रेम की भावना जाग्रत करने में रत दिखाया गया है। रामनरेश त्रिपाठी रचित 'सीजन डल है' में विदेशी बहिष्कार एवं स्वदेश की भावना का चित्रण है। सेठ गोविन्द दास के 'अपरिग्रह की पराकाष्ठा' में गांधीवाद के अपरिग्रह के सिद्धान्त का चित्रण है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद युग में विभिन्न राजनीतिक दृष्टिकोणों को लेकर एकांकियों की रचना हुई। उन्होंने प्राचीन भारतीय राष्ट्रीय गौरव की स्थापना करते हुए भविष्य में उसकी प्राप्ति की ओर संकेत किया है। भारत भूमि की स्वतंत्रता राष्ट्र-प्रेम, राष्ट्र भक्ति की भावधारा का भारतीय मानव के अन्तःकरण में उद्रेक करना इनका उद्देश्य रहा है। चूंकि ये एकांकीकार स्वयं देशप्रेम की भावना से आपूरित थे, अतः उसके चित्रण में स्वाभाविकता एवं प्रभावोत्पादकता का प्राधान्य रहा है। इनकी रचनाओं का परिणाम यह हुआ कि पूर्व प्रसाद-युग में अंकुरित राष्ट्र-प्रेम की भावना इस युग के एकांकीकारों के विचारों की खाद प्राप्त करके भारतीय जनता के हृदय में अधिक पुष्पित एवं पुल्लवित हो उठी।

प्रसाद-युगीन एकांकीकारों ने अनेक ऐतिहासिक एकांकियों की रचना करके प्राचीन भारतीय गौरव एवं अतीत के स्वरूप का स्मरण भारतीय जनता को कराया। यद्यपि विदेशी सरकार का भय होने के कारण ये भावना प्रत्यक्ष रूप से प्रगट न हुई किन्तु इसमें निरन्तर विकास के चिह्न अंकित होते चले गये। जैसे-जैसे स्वतंत्रता आन्दोलनों में तीव्रता आई, त्यों-त्यों उनका स्वर एकांकियों में अधिकाधिक मुखरित होने लगा। इन एकांकीकारों ने भारतीय नारी के पतिव्रत धर्म के महान आदर्श, उनकी त्याग एवं बलिदानमयी भावना अपने राष्ट्र के हित के

लिए सर्वस्व त्याग की भावना, राष्ट्रहित के लिए प्राणों की बलि चढ़ाना, कर्त्तव्यों के प्रति जागरुकता आदि सद्‌गुणों का चित्रण अपनी कृतियों में किया है।

मंगलाप्रसाद विश्वकर्मा कृत 'शेरसिंह' में राष्ट्रीयता, स्वातंत्र्य प्रेम तथा भारतीय अतीत के गौरवशाली स्वरूप की प्रतिष्ठा है। श्री आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव-कृत 'नूरजहां', 'चाणक्य और चन्द्रगुप्त', 'शिवाजी और भारत राजलक्ष्मी' ऐतिहासिक कृतियाँ हैं। श्री ब्रजलाल शास्त्री रचित 'दुर्गावती', 'पप्रिनी', 'पन्ना', 'तारा', 'किरण देवी', आदि ऐतिहासिक आदर्शवाद से प्रभावित अतीत गौरव को स्पष्ट करने वाली रचनाएं हैं। श्री सुदर्शनकृत 'राजपूत की हार', 'प्रताप प्रतिज्ञा', आदि में राजपूती शौर्य, राजपूती स्त्रियों का स्वदेश हित हेतु कर्त्तव्य का पालन एवं देश प्रेम की भावना का प्रभावपूर्ण वर्णन हुआ है। सेठ गोविन्ददास ने तो बहुत बड़ी संख्या में ऐतिहासिक एकांकियों की रचना की है, जिनमें 'बुद्ध के सच्चे स्नेही कौन'? 'बुद्ध की एक शिष्या', 'सहित या रहित', 'अपरिग्रह की पराकाष्ठा', 'चैतन्य का संन्यास', 'सूखे संतरे' आदि ऐतिहासिक धारा के अन्तर्गत आते हैं। इनमें प्राचीन भारतीय गौरव एवं संस्कृति की प्रतिष्ठा, आचार-विचार का प्रतिपादन सेठ जी का प्रमुख उद्देश्य रहा है। गोविन्द वल्लभ पंत के 'विष कन्या', 'भस्म रेखा', 'एकाग्रता की परीक्षा' आदि ऐतिहासिक कथावस्तु पर आधारित हैं। इस प्रकार प्रसाद युग में अनेक ऐतिहासिक एकांकियों की रचना हुई जिनके माध्यम से भारत के अतीतमय गौरव एवं संस्कृति पर दृष्टिपात किया गया।

प्रसाद-युगीन कुछ एकांकीकारों ने धार्मिक पौराणिक क्षेत्र में भी प्रवेश किया है। प्रसाद-युग के धार्मिक एकांकी अपने पूर्व युग में विरचित एकांकी नाटकों से भिन्न थे। भारतेन्दु-युग में इनका विषय प्रधान रूप से राम तथा कृष्ण की कथाओं से ही सम्बद्ध रहा। प्रसाद युग में अन्य पौराणिक कथाओं को भी महत्त्व दिया गया क्योंकि सामाजिक सुधार की प्रवृत्ति का प्राधान्य होने के कारण धार्मिक एकांकियों से जनता सन्तुष्ट नहीं होती थी। जनता की धार्मिक अश्रद्धा का कारण धार्मिक भ्रष्टाचारों का प्रधान्य एवं वास्तविक धर्म के स्वरूप का लोप होना था, अतः वह धार्मिक क्षेत्र में सुधार परमावश्यक समझती थी, अतः कुछ धार्मिक कथाओं को आधार रूप में ग्रहण कर भारत के प्राचीन धार्मिक आदर्शों को प्रस्तुत करना इस युग के कलाकारों को युक्ति संगत प्रतीत हुआ। धार्मिक पौराणिक एकांकी धारा को प्रवाहित करने में राधेश्याम कथावाचक कृत 'कृष्ण-सुदामा', 'शान्ति के दूत भगवान', 'सेवक के रूप में भगवान कृष्ण', जयदेव शर्मा रचित 'न्याय और अन्याय', जयशंकर प्रसाद कृत 'सज्जन' और

'करुणालय' आनन्दी प्रसाद-कृत 'पार्वती और सीता', चतुरसेन शास्त्री कृत 'सीताराम', 'राधा-कृष्ण', 'हरिश्चन्द्र शैव्या', आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार प्रसाद-युग में कुछ एकांकीकारों ने धार्मिक पौराणिक एकांकी की प्रवृत्ति को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योग दिया।

भारतेन्दु-युग में जिस हास्य-व्यंग्य-प्रधान धारा को सामाजिक सुधार-हेतु माध्यम के रूप में स्वीकार किया गया था उसका निर्वाह प्रसाद-युग में भी दृष्टिगोचर होता है। इन एकांकीकारों ने समाज में प्रचलित अनेक जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों, कुप्रथाओं एवं परम्पराओं पर व्यंग्य किये हैं। उनका लक्ष्य सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक सुधार ही अधिक रहा है। श्री बद्रीनाथ भट्ट रचित 'चुंगी की उम्मेदवारी' में चुनाव की प्रणाली पर व्यंग्य किया गया है। श्री जी. पी. श्रीवास्तव रचित 'दुमदार आदमी', 'पत्र-पत्रिका सम्मेलन', 'अच्छा उर्फ अक्ल की मरम्मत', 'न घर का न घाट का', 'गड़बड़झाला', 'लकड़बग्घा', 'घर का मनेजर' आदि हास्य व्यंग्य प्रधान एकांकी हैं जिनमें विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों व रूढ़ियों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किये गये हैं। इन रचनाओं में लेखक ने दहेज समस्या, विवाह समस्या तथा सामाजिक विरूपताओं एवं मिथ्या प्रदर्शन की भावना पर सुन्दर व्यंग्य किया है। इसी सन्दर्भ में द्वारिकाप्रसाद गुप्त रचित 'बशर्ते कि' बद्रीनाथ रचित 'लबड़ धौं-धौं', 'पुराने हकीम का नया नौकर', 'मिस अमेरिकन', 'रेगड़ समाचार के एडीटर की धूल दच्छना' आदि हास्य-व्यंग्य प्रधान रचनाएं हैं जिनमें मध्यम तथा अल्प शिक्षित वर्ग की समस्याओं का चित्रण किया गया है। भट्ट जी का यह हास्य शिष्ट एवं सुरुचिपूर्ण बन पड़ा है। श्री रामचन्द्र रघुनाथ रचित 'पाठशाला का एक दृष्य', 'सभी हा : हा रू', 'मदद मदद', 'यमराज का क्रोध', रूप नारायण पांडेय रचित 'समालोचना रहस्य', गरीबदास कृत 'मियाँ की जूती मियां के सिर', मुकन्दीलाल श्रीवास्तव कृत 'घर का सुख कहीं नहीं है', श्री गोविन्द वल्लभ पंत रचित '140 डिग्री. ', 'काला जादू', पांडेय बेचन शर्मा उग्र-कृत 'चार बेचारे', 'बेचारा अध्यापक', 'बेचारा सुधारक', सेठ गोविन्ददास कृत 'हंगर स्ट्राइक', 'उठाओ खाओ खाना अथवा बफेडिनर', 'वह मेरा क्यों?' आदि रचनाएं इसी श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रसाद-युग में भी विभिन्न एकांकीकारों ने विविध क्षेत्रीय समस्याओं एवं परिस्थितियों के उद्घाटन हेतु हास्य व्यंग्य को महत्त्व दिया तथा उसका सफलतापूर्वक प्रयोग भी किया। प्रसाद-युग के उपर्युक्त प्रतिभाशाली

एकांकीकारों के अतिरिक्त अन्य अनेक एकांकीकार भी हुए जिन्होंने एकांकी के क्षेत्र में अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। अनेक एकांकीकारों ने अन्य भाषाओं में लिखित एकांकियों का हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किया। यद्यपि इस युग में आधुनिक युग की अपेक्षा विकास नगण्य कहा जाता है, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि प्रसाद-युग में आकर नाट्यकला विषयक मान्यताओं में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इस युग ने आगामी एकांकीकारों को एक पुष्ट आधारभूमि प्रदान की जिसमें आधुनिक एकांकी साहित्य और भी स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ।

प्रसादोत्तर-युग

प्रसादोत्तर-युग हिन्दी एकांकी के विकास की तीसरी अवस्था है जिसका समय सन् 1938 से 1947 ई. (स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व) तक रहा। इसके भी हम दो उप-सोपान मान सकते हैं–

(1) 1938 ई. से 1940 ई. तक और

(2) 1941 ई. से 1947 ई. तक।

प्रथम सोपान अर्थात् इस काल के प्रारम्भिक समय में हिन्दी एकांकी में अपने समय की विभिन्न समस्याओं एवं परिस्थितियों पर तर्क-वितर्क मिलता है। तभी कुछ विचित्र एवं क्रांतिकारी परिस्थितियों ने विषय, शैली और दृष्टिकोण को भी नया मोड़ दिया। हिन्दी के अनेक एकांकीकार इस समय पाश्चात्य नाट्य शैलियों एवं विकसित प्रवृत्तियों से प्रभावित हो उनका अनुकरण कर रहे थे। इब्सन, विल्यिम आर्चर, बर्नार्ड शॉ आदि ख्याति प्राप्त पाश्चात्य लेखकों का प्रभाव हिन्दी एकांकीकारों पर पड़ ही रहा था, अतः इस युग के एकांकीकारों ने परम्परागत एकांकी-तत्त्वों का निर्वाह करने के साथ-साथ अभिनव शिल्प-रूपों को भी स्थान दिया तथा विषय की दृष्टि से एकांकी को मात्र मनोरंजन की वस्तु न बनाकर उसमें मानव जीवन की सामयिक समस्याओं एवं विरूपताओं का चित्रण प्रारम्भ कर दिया। अर्थात् इस समय हिन्दी एकांकी आदर्शवाद के एकांगी घेरे से निकल कर यथार्थवाद की ओर बढ़ा। सन् 1940 से 1947 तक का समय भारत के लिए आपत्तियों का समय था। युद्ध की विभीषिकाएं, बंगाल का अकाल, आजादी की हुंकार, विदेशी शासकों के लोमहर्षक अत्याचार, चोर बाजारी आदि इन्हीं सात वर्षों के भीतर की ही बातें हैं। इन सबने हमारे चिन्तन और हमारी कला को प्रभावित किया। एकांकी भी इनसे अछूता नहीं रह सका।

कृत्रिमता की बजाय स्वाभाविक और सहज जीवन को प्रतिबिम्बित करने वाले एकांकी की रचना प्रारम्भ हुई। इन एकांकियों में नाटकीय अभिनय के स्थान पर सरल अभिनयात्मक संकेत दिये जाने लगे। इसमें परम्परागत रंगमंच-विधान सम्पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गया और उससे सहजता, सरलता, स्वाभाविकता एवं यथार्थ के दर्शन होने लगे। शिल्प विधान के अनावश्यक आडम्बर बन्धन से इस युग का एकांकी साहित्य मुक्त हो गया। संकलन त्रय को वस्तुतः इसी समय एकांकी का अनिवार्य अंग माना जाने लगा। अब एकांकी केवल साहित्यिक विधा ही न रह गयी अपितु इस युग में रंगमंच की स्थापना के साथ उसके स्वरूप में भी अन्तर परिलक्षित हुआ। इस समय तक 'हंस' तथा 'विश्वमित्र' आदि पत्रिकाओं में एकांकी नाटक एकांकी के नाम से प्रकाशित होने प्रारम्भ हो गये तथा इनकी प्रारम्भिक भूमिकाओं में एकांकी के शिल्प आदि पर विचार प्रस्तुत किये जाने लगे। जिस प्रकार भारतेन्दु-युग और प्रसाद-युग में हिन्दी एकांकी की विविध प्रवृत्तियाँ उभरी थीं उसी प्रकार प्रसादोत्तर युग में भी हिन्दी एकांकी की विविध प्रवृत्तियां परिलक्षित होती हैं। वास्तव में प्रस्तुत युग में भी पूर्वयुगीन प्रवृत्तियों को ही आधार बनाकर एकांकियों की रचना हुई किन्तु उनको आदर्शवाद के स्थान पर यथार्थवादी आधारभूमि पर निर्मित किया गया।

प्रसादोत्तर-युग में यद्यपि एकांकी की अनेक प्रवृत्तियों को प्रश्रय मिला है तथापि सामाजिक एकांकी की प्रवृत्ति पर लगभग सभी युगीन एकांकीकारों ने अपनी लेखनी चलाई। प्रस्तुत युग के प्रमुख एकांकीकार डा.रामकुमार वर्मा ने तो अनेक सामाजिक समस्या प्रधान एकांकियों की रचना करके हिन्दी एकांकी साहित्य को बहुमूल्य धरोहर प्रदान की है। इन्होंने जीवन की वास्तविकता को अपने एकांकियों का आधार बनाया। इस दृष्टि से इनके 'एक तोले अफीम की कीमत', 'अठारह जुलाई की शाम', 'दस मिनट', 'स्वर्ग का कमरा', 'जवानी की डिब्बी', 'आंखों का आकाश', 'रंगीन स्वप्न', आदि एकांकी सामाजिक एकांकी की प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। वर्मा जी के समान उपेन्द्रनाथ 'अश्क'का ध्यान भी विविध वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं की ओर गया। इनकी एकांकी रचनाओं में–'चरवाहे', 'चिलमन', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'पहेली', 'सूखी डाली', 'अन्धी गली', 'तूफान से पहले', आदि सामाजिक दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें लेखक ने युगीन सामाजिक रूढ़ियों, परम्पराओं, विरूपताओं विकृतियों, एवं अज्ञानताओं का बड़ा ही प्रभावोत्पादक किन्तु व्यंग्यात्मक चित्र उपस्थित किया है। युगीन एकांकीकार

भुवनेश्वर-रचित 'श्यामा एक वैवाहिक विडम्बना', 'स्ट्राइक', 'एक साम्यहीन साम्यवादी' तथा 'प्रतिमा का विवाह' आदि प्रसिद्ध हैं। इसमें सामाजिक बाह्याडम्बर, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, यौन विषयक समस्याओं एवं प्राचीन अप्रगतिशील मान्यताओं का चित्रण किया गया है, जो मानव जीवन के विकास पथ को अवरुद्ध किए हैं। श्री जगदीश चंद्र माथुर का दृष्टिकोण भी सामाजिक जीवन की समस्याओं के प्रति स्वस्थ एवं उदार रहा है। वे उन एकांकियों को सफल नहीं मानते जो समाज से निरपेक्ष होकर मात्र साहित्यिक विधा बनकर रह जाते हैं। उन्होंने 'ओ मेरे सपने' के पूर्व निवेदन में लिखा है कि 'कौन ऐसा लेखक होगा कि जिसकी कलम पर सामाजिक समस्याएँ सवार न होती हों अनजाने ही या डंके की चोट के साथ ?' इस विचार के अनुसार उनके 'मेरी बाँसुरी', 'खिड़की की राह', 'कबूतर खाना', 'भोर का तारा', 'खंडहर', आदि एकांकी उल्लेखनीय हैं। इनमें सामाजिक बन्धनों के प्रति तीव्र विद्रोही भावना व्यक्त हुई है। श्री शम्भुदयाल सक्सेना रचित 'कन्यादान', 'नेहरू के बाद', 'मुर्दो का व्यापार', 'नया समाज', 'नया हल नया खेत', 'सगाई', 'मृत्युदान' आदि एकांकी सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत करते हैं। सक्सेना जी पर गाँधीवादी जीवन का प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है। यही कारण है कि इनकी रचनाओं में सादा जीवन का महत्त्व, मानवतावादी दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा, नैतिक उन्नयन के प्रति आग्रह, बाह्याडम्बर के प्रति घृणा एवं कर्त्तव्य के प्रति जागरुकता के दर्शन होते हैं। हरिकृष्ण प्रेमी ने 'बादलों के पार', 'वाणी मन्दिर', 'सेवा मन्दिर', 'घर या होटल', 'निष्ठुर न्याय' आदि एकांकी रचनाओं में विविध सामाजिक समस्याओं का अंकन किया है जिनमें विधवा समस्या, 'नारी की आधुनिकता', वर्ग वैषम्य, जातीय बन्धन की संकीर्णता, प्राचीन परम्पराओं एवं मान्यताओं की अर्थहीनता, पुरुष की वासना लोलुपता एवं दुश्चरित्रता आदि का चित्रण प्रमुख रूप के किया है। भगवतीचरण वर्माकृत 'मैं और केवल मैं', 'चौपाल में' तथा 'बुझता दीपक', में पीड़ित मानव की अन्तर्वेदना का करुण स्वर उभर कर सामने आया है। श्री रामवृक्ष बेनीपुरीरचित 'नया समाज', 'अमर ज्योति', तथा 'गाँव का देवता' आदि रचनाएं सामाजिक समस्या प्रधान हैं। श्री सद्गुरुशरण अवस्थी ने भारतीय संस्कृति के आदर्शों को उपयुक्त एवं उचित तर्को की कसौटी पर कसकर उनको समाज के लिए उपयोगी सिद्ध किया जिनमें बुद्ध, तर्क एवं विवेक का प्राधान्य है। इस दृष्टि से 'हाँ में नहीं का रहस्य', 'खद्दर', 'वे दोनों' आदि विशेष महत्त्वपूर्ण रचनाएं हैं। इनके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त विद्यालंकाररचित 'प्यास' तथा 'दीनू', श्री यज्ञदत्त शर्मा

कृत 'छोटी-बात', 'साथ', 'दुविधा', एस.सी. खत्री रचित, 'बन्दर की खोपड़ी', 'प्यारे सपने', श्री सज्जाद जहीर रचित 'बीमार' आदि रचनाओं में सामाजिक जीवन के सत्य को उभारते हुए और उनका सर्वपक्षीय चित्रण किया गया है।

प्रसादोत्तर-युग राजनीतिक क्रांति का युग था। गाँधी जी का प्रभाव राजनीतिक जीवन में विशेष रूप से पड़ रहा था। दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार का दमन चक्र भी राजनीतिक क्रांति को कुचलने के लिए तीव्र गति से चल रहा था। एकांकीकारों ने तत्कालीन राजनीतिक समस्याओं एवं गतिविधियों का चित्रण करना तथा देशवासियों में देशप्रेम एवं स्वतंत्रता की भावना को प्रबल करना अपना महान कर्त्तव्य समझा। श्री भगवती चरण वर्मा ने 'बुझता दीपक' में राजनीतिक दृष्टि से कांग्रेस के उच्च पदाधिकारियों अथवा नेताओं के खोखलेपन पर भी व्यंग्यात्मक प्रहार किया है। श्री हरिकृष्ण प्रेमी ने अपनी राजनीतिक रचनाओं में राष्ट्र के नव-निर्माण, देशभक्तों भारतीय नेताओं एवं जनता के स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु किये जाने वाले कार्यों, हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष, साम्प्रदायिक एकता की आवश्यकता, दासता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए कृत संकल्प देशभक्तों की चारित्रिक महानता आदि को चित्रित किया है। इस दृष्टि से इनकी 'राष्ट्र मन्दिर', 'मातृ-मन्दिर', 'मान-मन्दिर' तथा 'न्याय मन्दिर आदि उल्लेखनीय रचनाएं हैं। श्री लक्ष्मी नारायण मिश्र रचित 'देश के शत्रु' शीर्षक एकांकी में उन स्वार्थलोलुप व्यक्तियों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया गया है, जो अपने क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति हेतु देश के प्रति अपने कर्त्तव्य को भुलाकर देशद्रोही बन बैठे हैं। जगदीश चंद्र माथुररचित 'भोर का तारा' शीर्षक एकांकी में देशभक्त कवि के महान बलिदान की कहानी है। डा. सुधीन्द्र रचित 'खून की होली', 'नया वर्ष', 'नया संदेश', 'राखी', 'संग्राम' आदि तथा चन्द्रगुप्त विद्यालंकार रचित 'कासमोपोलिटन क्लबों' आदि रचनाएँ राजनीतिक भावना से ओत-प्रोत हैं। इस प्रकार युगीन एकांकीकारों ने राजनीतिक भावना से प्रभावित होकर राष्ट्रीयता का स्वर अपनी रचनाओं में प्रस्फुटित किया है।

आलोच्य युग में कुछ देशद्रोही वैयक्तिक स्वार्थों के कारण ब्रिटिश शासकों का साथ दे रहे थे। ऐसे देश-द्रोहियों को देशभक्ति की शिक्षा देने की दृष्टि से एकांकीकारों ने ऐतिहासिक पात्रों के आदर्श एवं त्यागमय चरित्र को प्रस्तुत करके प्राचीन भारतीय गौरव की ओर ध्यान भी आकर्षित करवाया। डॉ. वर्मा के ऐतिहासिक एकांकियों में 'चारुमित्र', 'पृथ्वीराज की आँखें', 'दीपदान', 'रात का रहस्य', 'प्रतिशोध', 'राज श्री', आदि प्रमुख हैं। जगदीशचन्द्र माथुर ने 'कलिंग

विजय', तथा 'शारदीया', शीर्षक एकांकियों की रचना ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर की है तथा भारतीय सांस्कृतिक वातावरण का प्रभावोत्पादक स्वरूप चित्रित किया है। राष्ट्रीय ऐतिहासिक भावना पर 'सिकन्दर', 'जेरुसलम' आदि एकांकियों की रचना करके भुवनेश्वर प्रसाद ने अपने देश प्रेम का परिचय दिया है।

हरिकृष्ण प्रेमी रचित 'मान मन्दिर', 'न्याय मन्दिर', 'मातृ भूमि का मान', 'प्रेम अन्धा है', 'रूपशिखा' आदि राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत ऐतिहासिक रचनाएं हैं। श्री यज्ञदत्त शर्मा रचित 'प्रतिशोध' तथा 'हेलन' में भारत के गौरवमय अतीत की झाँकी प्रस्तुत की गई है। डा. सत्येन्द्ररचित 'कुणाल', 'प्रायश्चित, 'विक्रम का आत्ममेघ' में प्राचीन कथानक लेकर स्वस्थ तथा तार्किक विचारधारा को प्रतिपादित किया गया है। भारतीय सांस्कृतिक गौरव की प्रतिष्ठा, अतीत कालीन भारतीय गौरव की महत्ता तथा नागरिकों के चारित्रिक बल की अभिवृद्धि करने वाले आदर्श पात्रों की सृष्टि करके लेखक ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में सहयोग प्रदान किया है। गिरिजाकुमार माथुर रचित 'विषपान', 'कमल और रोटी', 'वासवदत्ता' आदि में देशभक्तिपूर्ण आत्म बलिदान तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु किये गये शौर्यपूर्ण कार्यों का चित्रण है। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी रचित 'संघमित्र', 'सिंहल विजय', 'नेत्रदान', 'तथागत', आदि इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं पर आधारित हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रसादोत्तर युग में अनेक एकांकीकारों ने बहुत बड़ी संख्या में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर एकांकियों की रचना करके प्राचीन भारतीय गौरव को वर्तमान के समक्ष रखा है।

धर्म-प्रधान देश के नागरिक होने के कारण भारतीय हिन्दी एकांकीकारों ने अपने एकांकियों की रचना धार्मिक आधार पर करने की प्रवृत्ति इस युग में भी नहीं छोड़ी। श्री शम्भुदयाल सक्सेना ने विशेष रूप से धार्मिक पौराणिक प्रसंगों पर आधारित एकांकियों की रचना की है। इन्होंने प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक गौरव की प्रतिष्ठा करने की दृष्टि से उन गौरवशाली चित्रों को उपस्थित किया जिन्होंने भारतीय हिन्दू संस्कृति की मर्यादा को बनाये रखा। इनके द्वारा रचित 'सीताहरण', 'शिला का उद्धार', 'उतराई', 'सोने की मूर्ति', 'विदा', 'वनपथ', 'तापसी', 'पंजवटी' आदि एकांकी प्रमुख हैं। लगभग सभी एकांकियों में हिन्दू संस्कृति की महत्ता भारतीय आर्य सभ्यता के उच्चादर्शों, बौद्ध धर्म की भव्यता तथा भारतीय नैतिक दृष्टिकोण की श्रेष्ठता के स्वरूप का चित्रण किया गया है। डा. रामकुमार वर्मा ने 'अन्धकार' तथा 'राजरानी सीता', शीर्षक एकांकियों में पाप, पुण्य, प्रेम तथा वासना संबंधी प्रश्नों को उठाते हुए यह चित्रित किया है कि प्रेम के बिना

वासना असम्भव है। लक्ष्मीनारायण मिश्र रचित 'अशोक वन', शीर्षक एकांकी में लेखक ने सीता के आदर्श चरित्र की विशेषताओं, पतिव्रत, चारित्रिक बल, तार्किक बुद्ध तथा सात्विक प्रवृत्ति की आकर्षक झांकी प्रस्तुत करके नीति एवं मर्यादा पर विशेष बल दिया है।

प्रो. सद्गुरुशरण अवस्थी रचित 'कैकेयी', 'सुदामा', 'प्रींद', 'शम्बूक', 'त्रिशंकु' आदि एकांकियों में प्राचीन पौराणिक एवं धार्मिक पात्रों को मौलिक ढंग से नवीन तर्क, विचार, आदर्श एवं नैतिक तत्त्वों सहित प्रस्तुत किया है। तथा इन पात्रों के माध्यम से प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का गौरव गुणगान किया है। अवस्थी जी ने अतीत की व्याख्या आधुनिक तथा नवीन दृष्टिकोण से की है।

आलोच्य युग में अनेक एकांकीकारों ने अनेक हास्य व्यंग्य प्रधान एकांकियों की रचना करके विभिन्न समसामयिक समस्याओं की अभिव्यक्ति एवं समाधान प्रस्तुत किया है। इन एकांकीकारों ने उन विभिन्न समस्याओं पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया है। जो सामाजिक, साहित्यिक एवं राजनीतिक जीवन के लिए अभिशाप बनी हुई थीं। उपेन्द्रनाथ 'अश्क'ने विशेष रूप से इस श्रेणी के एकांकियों की रचना की। इनकी 'कइसा साब काइसी बीबी', 'जोंक', 'पक्का गाना', 'घपले' आदि रचनाएँ हास्य व्यंग्य प्रधान हैं। भगवती चरण वर्मा रचित 'दो कलाकार' तथा 'सबसे बड़ा आदमी', में हास्यमय वातावरण की सृष्टि करते हुए व्यंग्यात्मक प्रहार किये गये हैं। गिरिजाकुमार माथुर'बरात चढ़े', 'मध्यस्थ', 'पिकनिक', श्री पृथक्वीनाथ शर्मा रचित 'मुक्ति' तथा डा.रामकुमार वर्मा रचित 'रूप की बीमारी' आदि रचनाएं हास्य व्यंग्य प्रधान हैं।

मनोवैज्ञानिक एकांकी की प्रवृत्ति का जन्म भी प्रसादोत्तर युग में हुआ। पाश्चात्य एकांकीकारों के प्रभाव स्वरूप हिन्दी एकांकीकारों ने भी पात्रों के मन की गहराइयों में पहुंचकर उनके मनोभावों के चित्रण को परमावश्यक समझा। जगदीशचन्द्र माथुर रचित 'मकड़ी का जाला' शीर्षक एकांकी में अतीत की घटनाओं को स्वप्न के माध्यम से चित्रित करते हुए अवचेतन मन की ग्रंथियों का अत्यन्त कलात्मक ढंग से चित्रण किया है 'भुवनेश्वर प्रसाद'रचित 'ऊसर', 'प्रतिमा का विवाह' तथा 'लाटरी' आदि मनोविश्लेषण प्रधान मनोवैज्ञानिक रचनाएं हैं। इन रचनाओं पर फ्रायड के मनोविज्ञान का स्पष्ट प्रभाव है। श्री शम्भुदयाल सक्सेना रचित 'जीवन धारणी', 'नन्दरानी', 'पंचवटी' आदि, गिरिजाकुमार माथुर रचित 'अपराधी', श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' रचित 'छटा बेटा', 'भंवर', 'अंधी

गली', 'मेमना', 'सूखी डाली' आदि मनोवैज्ञानिक रचनाएं हैं। इन एकांकियों में मन की अतृप्त इच्छाओं, महत्त्वाकांक्षाओं तथा मन की दलित अनुभूतियों का सजीव चित्रण किया गया है।

इस प्रकार, प्रसादोत्तर युग में पहुंचकर, हर दृष्टि से एकांकी साहित्य का एक स्वतंत्र अस्तित्त्व परिलक्षित होता है। अनेक पाश्चात्य नाटककारों जैसे इब्सन, शॉ, गाल्सवर्दी, चेखव आदि एकांकीकारों की रचनाओं का हिन्दी अनुवाद प्रारम्भ हो गया था। इन अंग्रेजी एकांकियों के हिन्दी अनुवादों की माँग रेडियो के क्षेत्र में अधिक थी। प्रो. अमरनाथ गुप्त ने ए. ए. मिलन के एकांकी का हिन्दी अनुवाद किया। कामेश्वर भार्गव द्वारा 'पुजारी' शीर्षक हिन्दी अनुवाद प्राप्त हुआ जो 'विशप्स कैन्डिलस्टिक्स' का हिन्दी अनुवाद है। इसके अतिरिक्त हैराल्ड ब्रिगहाउस की रचनाओं के भी हिन्दी अनुवाद हुए। इस प्रकार आलोच्य युगीन एकांकीकारों ने विभिन्न नवीन प्रयोगों के द्वारा हिन्दी एकांकी साहित्य को समृद्धिशाली बनाया गया।

स्वातंत्र्योत्तर युग

हिन्दी एकांकी के विकास की चौथी अवस्था स्वतंत्रता के पश्चात् प्रारम्भ होती है, जिसे स्वातंत्र्योत्तर युग के नाम से जाना जाता है। इस अवस्था में हिन्दी एकांकियों पर रेडियो का प्रभाव बड़ी गहराई से पड़ा है। रेडियो नाटकों के रूप में नाटकों का नवीन रूप हमारे समक्ष आया। रेडियो माध्यम होने के कारण श्रोतागण इसमें रुचि लेने लगे। इसलिए रेडियो एकांकियों की मांग इस युग में अधिक रही। डॉ. दशरथ ओझाने लिखा है कि 'हिन्दी के जितने-नाटक आज रेडियो स्टेशनों पर अभिनीत होते हैं उतने सिनेमा की प्रयोगशालाओं में भी नहीं होते होंगे, अतः नाट्यकला का भविष्य रेडियो-रूपक के रचयिताओं के हाथ में है।'

स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी एकांकी का स्वरूप विविधता लिए हुए हैं। इनमें एक ओर परम्परागत शैली में राष्ट्रीय भावना प्रधान एकांकी लिखे गये तो दूसरी ओर ध्वनि नाट्य तथा गीति नाट्य का भी विकास हुआ। इस युग के एकांकीकारों ने सामाजिक, राजनीतिक, मानवतावादी तथा यथार्थवादी विचारधाराओं से प्रभावित होकर एकांकियों की रचना की। इन एकांकीकारों का दृष्टिकोण प्रगतिशील तत्त्वों से प्रभावित रहा। जिससे इनकी रचनाओं में पूँजीवाद विरोध, वर्ग संघर्ष, सड़ी-गली रूढ़ियों के प्रति अनास्था, मानव अन्तर्मन की सूक्ष्म भावनाओं

का विश्लेषण, भ्रष्टाचार उन्मूलन, कृषक् एवं मजदूर की दयनीय स्थिति तथा ब्रिटिश सरकार के प्रति असन्तोष आदि विचार व्यक्त हुए।

इस क्षेत्र में विनोद रस्तोगी रचित 'बहू की विदा', कणाद ऋषि भटनागर रचित 'नया रास्ता', तथा 'अपना घर' दहेज की कुप्रथा का पर्दाफाश करते हैं। विनोद रस्तोगी, जयनाथ नलिन, लक्ष्मीनारायण लाल, राजाराम शास्त्री, कैलाश देव, विष्णु प्रभाकर, प्रभाकर माचवे, रेवतीसरण शर्मा, श्री चिरंजीत, भारत भूषण अग्रवाल, कृष्ण किशोर, करतार सिंह दुग्गल, स्वरूप कुमार बख्शी, गोविंद लाल माथुर आदि ने समाज में परिव्याप्त विभिन्न सामाजिक रूढ़ियों एवं विकृतियों के चित्र खींचे हैं। इस युग के एकांकीकारों का यथार्थपरक दृष्टिकोण एवं मानवीय मूल्यों के प्रति विशेष आग्रह रहा है। विष्णु प्रभाकर के 'बन्धन मुक्त' में अछूतोद्धार, 'पाप' में अविवाहित युवती का अनुचित पैगाम, 'साहस' में निर्धनता और वेश्यावृत्ति, 'प्रतिशोध' तथा 'इंसान' में हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों से उत्पन्न साम्प्रदायिकता की समस्या, 'वीर पूजा' में शरणार्थी समस्या, 'किरण और कुहासा' में अन्तर्जातीय-विवाह की सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया गया है। विष्णु प्रभाकर पर गाँधीवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इनके 'स्वतंत्रता का अर्थ', 'काम', सर्वोदय, 'समाज सेवा', 'नया काश्मीर' आदि एकांकियों में गांधीवादी सामाजिक एवं आर्थिक विचारधाराओं की अभिव्यक्ति हुई है। चिरंजीत के एकांकी यथार्थ एवं कल्पना का सम्मिलित रूप प्रकट करते हैं। सामाजिक एकांकियों में इनका यथार्थवादी आलोचनात्मक एवं व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण रहा है। कणाद ऋषि भटनागर कृत 'नया रास्ता' तथा 'लांछन' में नारी स्वातंत्र्य एवं समानाधिकार का स्वर मुखरित हुआ है। देवीलाल सामर कृत 'परित्यक्त', देवराज दिनेश कृत 'समस्या सुलझ गई', विधवा पुनर्विवाह का समर्थन करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वातंत्र्योत्तर एकांकीकारों ने अपनी रचनाओं में उन विविध सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया है, जो सहज ही मानव संवेदनाओं का संस्पर्श करती हैं।

आलोच्य युग में हिन्दी एकांकी में राजनीतिक जीवन, स्वाधीनता संघर्ष, बंगाल का अकाल, भुखमरी, फासीवाद का विरोध, जागीरदारी और देशी नरेशों का जीवन तथा अन्य अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएं प्रकट हुई हैं। गाँधी जी द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु चलाये गये विभिन्न आन्दोलनों एवं क्रिया-कलापों का चित्रण भी इन एकांकियों में मिलता है। स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् हिन्दी एकांकीकारों की लेखनी निर्बाध रूप से निर्भय होकर चल पड़ी, अतः उन्होंने

अपनी लेखनी से ब्रिटिश प्रशासकों के काले कारनामों का भी भंडाफोड़ उन्मुक्त रूप से किया तथा देशद्रोहियों की वैयक्तिक स्वार्थों की पूर्ति हेतु ब्रिटिश सरकार के प्रति चाटुकारिता की प्रवृत्ति का चित्रण करते हुए उनकी कटु आलोचना भी की है। जयनाथ नलिन की राष्ट्रीय रचनाओं में सृजनात्मक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। देश की स्वतंत्रता, इसके लिए किया गया बलिदान, त्याग, सतत् उद्योग एवं कर्म की आवश्यकता के महत्त्व का प्रतिपादन इनकी रचनाओं में हुआ है। इनके 'विद्रोही की गिरफ्तारी', 'देश की मिट्टी', 'युग के बाद', 'लाल दिन' आदि राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण एकांकी हैं। विष्णु प्रभाकर ने जो राजनीतिक भावना से परिपूर्ण एकांकी लिखे उनमें राजनीतिक उथल-पुथल, समाज पर राजनीतिक प्रभाव, स्वतंत्रता आन्दोलन तथा राजनीतिक गौरव का चित्रांकन किया है। इस श्रेणी के प्रमुख एकांकी–'क्रांति', 'कांग्रेस मैन बनो', 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' आदि हैं। 'हमारा स्वाधीनता संग्राम', संयम, स्वतंत्रता का अर्थ, काम, सर्वोदय आदि गांधीवादी भावना से प्रभावित रचनाएं हैं। राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य एवं जागरुकता का चित्रण प्रेमराज शर्मा-कृत 'गाँधी की आंधी'। देवीलाल सागर ने 'बहादुर शाह', 'वाजिद अली शाह', तथा 'शेरशाह सूरी' में परिपूर्णानन्द वर्मा ने राष्ट्रीय एकता एवं संगठन का संकेत किया है। भारतीय नारी द्वारा राजनीतिक क्षेत्र में दिये गये सक्रिय सहयोग का चित्रण भी इन एकांकीकारों ने किया है।

प्रसादोत्तर-युग में ऐतिहासिक राजनीतिक एकांकी की धारा तीव्र वेग से प्रवाहित हो रही थी। इस युग के एकांकीकारों ने प्राचीन ऐतिहासिक पात्रों के महान चरित्रों को समक्ष रख भारतीय इतिहास का गौरवमय चित्र सामने रखा तथा देशद्रोहियों को उनके दुष्कृत्यी पर धिक्कारा। इसी धारा का पोषण स्वातंत्र्योत्तर युगीन एकांकीकारों ने उन्मुक्त हृदय से किया है। इन एकांकीकारों ने मुगलकाल से लेकर ब्रिटिश काल तक के इतिहास को अपनी एकांकी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई का इतिहास प्रस्तुत कर आगामी पीढ़ी के लिए एक अमूल्य धरोहर प्रदान की है। साथ ही गाँधीवाद से प्रभावित एकांकीकारों ने गांधी के सत्य, अहिंसा एवं मानवतावादी एवं शान्तिपूर्ण अहिंसात्मक आन्दोलन की स्वतंत्रता के युद्ध की पृष्ठभूमि में अभिव्यक्ति की है। श्री विनोद रस्तोगी ने 'पुरुष का पाप', 'पत्नी परित्याग', 'साम्राज्य और सोहाग', 'प्यार और प्यास' आदि एकांकियों में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को आधार बना आधुनिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। देवीलाल सागर ने 'वीर बल्लू', 'ओ नीला घोड़ा वा असवार', तथा 'जीवन दान', शीर्षक ऐतिहासिक एकांकियों में

प्राचीन राजपूती शौर्य, मातृभूमि प्रेम, स्वातंत्रय प्रेम तथा त्याग का सुन्दर चित्रण किया है। प्रो. जयनाथ नलिन ने 'देश की मिट्टी', 'विद्रोही की गिरफ्तारी' आदि एकांकियों में देश की स्वतंत्रता, देश हेतु किए गए शौर्यपूर्ण बलिदान, देश सेवा तथा देश के प्रति कर्त्तव्य का सन्देश दिया है। श्री परिपूर्णानन्द वर्मा ने 'वाजिद अली शाह', 'शेरशाह सूरी' तथा 'बहादुरशाह' आदि में तीनों मुगल बादशाहों के शासन-काल की सुन्दर झांकी प्रस्तुत की है। प्रेमनारायण टंडन ने 'अजात शत्रु', 'गान्धार पतन', 'संकल्प', 'माता' की रचना ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर की है। विष्णु प्रभाकर रचित 'अशोक' शीर्षक एकांकी जहाँ हिंसा पर अहिंसा, असत्य पर सत्य तथा दानवता पर मानवता की विजय को चित्रित करता है वहीं ऐतिहासिक पात्र कलिंग कुमार के देशभक्तिपूर्ण बलिदान, शौर्य, वीरता एवं दृढ़ता का भी सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस प्रकार ये एकांकीकार ऐतिहासिक एकांकी प्रवृत्ति को आगे बढ़ाने का कार्य कर रहे हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर युगीन एकांकीकारों ने अपनी रचनाओं में प्राचीन सांस्कृतिक, पौराणिक, धार्मिक तथा नैतिक प्रसंगों की अभिव्यक्ति अपनी एकांकी रचनाओं में नवीन विचारों तथा तर्क की कसौटी पर नवीन ढंग से की है। प्रो. कैलाशदेव बृहस्पति ने अतीत भारत की सांस्कृतिक परम्परा का पुनरुत्थान तथा उसके आदर्शमय अतीत गौरव का चित्रांकन अपने पौराणिक तथा ऐतिहासिक रूपकों में किया है। इसके 'सागर मंथन', 'विश्वामित्र', 'स्वर्ग में क्रान्ति', आदि महत्त्वपूर्ण रेडियो रूपक हैं जिनमें भारतीय सांस्कृतिक गौरव का कलात्मक चित्रण किया गया है। कणाद ऋषि भटनागर ने 'आज का ताजा अखबार', में भारतीय संस्कृति की महत्ता चित्रित की है। ओंकारनाथ दिनकर रचित गणतंत्र की गंगा, अभिसारिका, सीताराम दीक्षित रचित'रक्षाबन्धन', देवीलाल सामर रचित 'आत्मा की खोज', 'ईश्वर की खोज' आदि में पौराणिक एवं धार्मिक कथानकों के आधार पर प्राचीन भारतीय राजनैतिक, सांस्कृतिक मानवतावादी एवं दार्शनिक आदर्शों की प्रतिष्ठा की है। इनमें से कतिपय एकांकियों में गांधीवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है।

आलोच्य युगीन एकांकीकारों ने विभिन्न वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं का चित्रण हास्य व्यंग्य प्रधान शैली में किया है। जैसे देवीलाल सामर ने 'वल्लभ', 'तवायफ के घर बगावत', 'उपन्यास का परिच्छेद', 'अमीर की बस्ती अछूत' आदि में आश्रयहीन तिरस्कृत विधवाओं, समाज के उनके प्रति दुर्व्यवहार, छुआछूत, रूढ़ियों तथा परिवारों में होने वाले छोटे-छोटे

अत्याचारों पर व्यंग्य किया है। प्रो. जयनाथ नलिन ने 'संवेदना सदन', 'शान्ति सम्मेलन', 'वर निर्वाचन', 'नेता', 'मेल मिलाप' आदि व्यंग्य प्रधान एकांकी लिखे हैं। लक्ष्मीनारायण लाल ने 'गीत के बोल', 'मूर्ख', 'सरकारी नौकरी', 'कला का मूल्य', 'रिश्तेदार' आदि भावना प्रधान कटु व्यंग्य मिश्रित एकांकियों का सृजन किया है। कृष्ण किशोर श्रीवास्तव रचित 'मछली के आंसू', जीवन का अनुवाद', 'आँख', 'बेवकूफ की रानी' आदि में सामाजिक यथार्थ चित्रण कर कटु व्यंग्यात्मक प्रहार किया गया है। इसके अतिरिक्त राजाराम शास्त्री, श्री चिरंजीत आदि को हास्य रस के छोटे-छोटे व्यंग्यात्मक एकांकी लिखने में अच्छी सफलता मिली है।

उपर्युक्त एकांकीकारों के अतिरिक्त स्वातंत्र्योत्तर युग में अन्य अनेक प्रतिभा सम्पन्न एकांकीकार भी उल्लेखनीय हैं जिन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय देते हुए हिन्दी एकांकी को सम्पन्न एवं समृद्ध बनाने में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। कुछ एकांकीकारों ने मनोविश्लेषण प्रधान एकांकियों की रचना की जिनमें मानसिक कुण्ठाओं एवं जटिल भावना-ग्रन्थियों का तार्किक विश्लेषण प्रस्तुत किया। इस युग में विविध विषयों एवं समस्याओं को लेकर बहुत बड़ी संख्या में एकांकियों की रचना हुई।

संक्षिप्तत:, हिन्दी एकांकी का विकास क्रमश: भारतेन्दु-युग, प्रसाद-युग, प्रसादोत्तर-युग तथा स्वतंत्र्योत्तर-युग में सम्पन्न हुआ। भारतेन्दु युग में जो एकांकी लिखे गये वे प्राय: नाटक का ही लघु रूप थे। इस युग में एकांकी का स्वतंत्र रूप नहीं मिलता। किन्तु प्रसाद-युग से प्रारम्भ होकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक इसका स्वतंत्र स्वरूप निश्चित हुआ जो निश्चित रूप से प्रगति युग कहा जा सकता है। ऐसे विकास-क्रम को देखते हुए कहा जा सकता है कि निश्चय ही हिन्दी एकांकी का भविष्य उज्जवल होगा।

6

हिन्दी आत्मकथा का इतिहास

आत्मकथा स्वानुभूति का सबसे सरल माध्यम है। आत्मकथा के द्वारा लेखक अपने जीवन, परिवेश, महत्त्वपूर्ण घटनाओं, विचारधारा, निजी अनुभव, अपनी क्षमताओं और दुर्बलताओं तथा अपने समय की सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है।

आरंभिक-युग

हिन्दी में आत्मकथाओं की एक लंबी परंपरा रही है। हिंदी की प्रथम आत्मकथा बनारसीदास जैन कृत 'अर्द्धकथा' (1641 ई.) है। आत्मकथा की मूलभूत विशेषताओं–निरपेक्षता और तटस्थता को इसमें सहज ही देखा जा सकता है। इसमें लेखक ने अपने गुणों और अवगुणों का यथार्थ चित्रण किया है। पद्य में लिखी इस आत्मकथा के अतिरिक्त पूरे मध्यकाल में हिंदी में कोई दूसरी आत्मकथा नहीं मिलती।

अन्य कई गद्य विधाओं के साथ आत्मकथा भी भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय में विकसित हुई। भारतेंदु ने अपनी पत्रिकाओं के माध्यम से इस विधा का पल्लवन किया। उनकी स्वयं की आत्मकथा 'एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती' का आरंभिक अंश 'प्रथम खेल' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। उनकी संक्षिप्त-सी आत्मकथा की भाषा आम-बोलचाल के शब्दों से निर्मित हुई है, जो एक तरह से बाद की आत्मकथाओं के लिए आधार दृष्टि का काम करती है।

भारतेंदु के अतिरिक्त इस काल के आत्मकथाकारों में सुधाकर द्विवेदीकृत 'रामकहानी' और अंबिकादत्त व्यासकृत 'निजवृतांत' को महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। कलेवर की दृष्टि से इन आत्मकथाओं को भी संक्षिप्त कहा जा सकता है। व्यास जी की आत्मकथा मात्र 56 पृष्ठों की है। इसमें उन्होंने सरल भाषा का प्रयोग करते हुए अपने जीवन संघर्षों को स्वर दिया है।

स्वामी दयानंद सरस्वती की आत्मकथा सन् 1875 में प्रकाश में आई। इस आत्मकथा में दयानंद सरस्वती के जीवन के विविध पक्षों यथा-ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय, विद्वत्ता, सत्यनिष्ठा और निर्भीकता आदि का सजीव चित्रण हुआ है। सत्यानंद अग्निहोत्री-कृत 'मुझ में देव जीवन का विकास' का पहला खण्ड सन् 1909 में और दूसरा खण्ड सन् 1918 में प्रकाशित हुआ। इस आत्मकथा में आत्मश्लाघा की प्रधानता है। सन् 1921 में भाई परमानंद की आत्मकथा 'आपबीती' प्रकाशित हुई। इसे किसी क्रांतिकारी की प्रथम आत्मकथा माना जा सकता है। इसमें लेखक ने स्वतंत्रता आंदोलन में अपने योगदान, अपनी जेल यात्रा और अपने ऊपर पड़े आर्य समाज के प्रभाव को रेखांकित किया है। सन् 1924 में स्वामी श्रद्धानंद की आत्मकथा 'कल्याणमार्ग का पथिक' प्रकाशित हुई। इसमें उन्होंने अपने जीवन संघर्षों और आत्मोत्थान का वर्णन किया है।

स्वतंत्रता-पूर्व युग

हिंदी के आत्मकथात्मक साहित्य के विकास में 'हंस' के आत्मकथांक का विशिष्ट योगदान है। सन् 1932 में प्रकाशित इस अंक में जयशंकर प्रसाद, वैद्य हरिदास, विनोदशंकर व्यास, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, दयाराम निगम, मौलवी महेशप्रसाद, गोपालराम गहमरी, सुदर्शन, शिवपूजन सहाय, रायकृष्णदास, श्रीराम शर्मा आदि साहित्यकारों और गैर-साहित्यकारों के जीवन के कुछ अंशों को प्रेमचंद ने स्थान दिया है।

इस काल की सबसे महत्त्वपूर्ण आत्मकथा श्यामसुंदर दास-कृत 'मेरी आत्मकहानी' (सन् 1941) है। इसमें लेखक ने अपने जीवन की निजी घटनाओं को कम स्थान दिया है। इसकी बजाय काशी के इतिहास और समकालीन साहित्यिक गतिविधियों को भरपूर स्थान मिला है। लगभग इसी समय बाबू गुलाबराय की आत्मकथा 'मेरी असफलताएँ' प्रकाशित हुई। इस आत्मकथा में लेखक ने व्यंग्यपूर्ण रोचक शैली में अपने जीवन की असफलताओं का सजीव चित्रण किया है।

सन् 1946 में राहुल सांकृत्यायन की आत्मकथा 'मेरी जीवन यात्रा' का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। सन् 1949 में दूसरा तथा सन् 1967 में उनकी मृत्यु के उपरांत इसके तीन भाग और प्रकाशित हुए। इस बृहत् आकार की आत्मकथा की विशेषता इसकी वर्णनात्मक शैली है।

सन् 1947 के आरंभ में देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथा इसी शीर्षक से प्रकाशित हुई। इस बृहदकाय आत्मकथा में राजेंद्र बाबू ने बड़ी सादगी और निश्छलता से स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान देश की दशा का वर्णन किया है।

स्वातंत्र्योत्तर युग

सन् 1948 में वियोगी हरि की आत्मकथा 'मेरा जीवन प्रवाह' प्रकाशित हुई। इस आत्मकथा के समाज सेवा से संबंधित अंश में समाज के निम्न वर्ग का लेखक ने बहुत मार्मिक वर्णन किया है। यशपाल कृत 'सिंहावलोकन' का प्रथम भाग सन् 1951 में प्रकाशित हुआ। इसका दूसरा भाग सन् 1952 और तीसरा सन् 1955 में आया। यशपाल की आत्मकथा की विशेषता उसकी रोचक और मर्मस्पर्शी शैली है। सन् 1952 में शांतिप्रिय द्विवेदी की आत्मकथा 'परिव्राजक की प्रजा' प्रकाशित हुई। इसमें लेखक ने अपने जीवन के प्रारंभिक इक्तालीस वर्षों की करुण कथा का वर्णन किया है। सन् 1953 में यायावर प्रवृत्ति के लेखक देवेंद्र सत्यार्थी की आत्मकथा 'चाँद-सूरज के बीरन' प्रकाशित हुई। इसमें लेखक ने अपने जीवन की आरंभिक घटनाओं का चित्रण किया है।

सन् 1960 में प्रकाशित पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की आत्मकथा 'अपनी खबर' बहुत चर्चित हुई। इसमें उनके जीवन की विद्रूपताओं के बीच युगीन परिवेश की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है।

हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा हिंदी की सर्वाधिक सफल और महत्त्वपूर्ण आत्मकथा मानी जाती है। 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' (सन् 1969), 'नीड़ का निर्माण फिर' (सन् 1970), 'बसेरे से दूर' (सन् 1977) और 'दशद्वार से सोपान तक' (सन् 1985) चार भागों में विभाजित उनकी आत्मकथा इस विधा को नए शिखर पर ले गई। प्रथम खंड में बच्चन जी ने अपने बचपन से यौवन तक के चित्र खींचे हैं। द्वितीय भाग में आत्म-विश्लेषणात्मक पद्धति को अधिक स्थान मिला है। तीसरे भाग में लेखक ने अपने विदेश प्रवास का वर्णन किया है तथा चौथे और अंतिम भाग में बच्चन ने अपने जीवन के अंतिम वर्षों

के अनुभवों को संचित किया है। अत्यंत विस्तृत होने के बावजूद बच्चन जी की आत्मकथा की विशेषता उसका सुव्यवस्थित होना है। उनके गद्य की भाषा सहज-सरल है। बच्चन की आत्मकथा ने अनेक साहित्यकारों को अपने जीवन को लिपिबद्ध करने के लिए प्रेरित किया। उनके बाद प्रकाशित आत्मकथाओं में वृन्दावनलाल वर्मा की 'अपनी कहानी' (सन् 1970), देवराज उपाध्याय की 'यौवन के द्वार पर' (सन् 1970), शिवपूजन सहाय की 'मेरा जीवन' (सन् 1985), प्रतिभा अग्रवाल की 'दस्तक जिंदगी की' (सन् 1990) और भीष्म साहनी की 'आज के अतीत' (सन् 2003) प्रकाशित हुई। देश विभाजन की त्रासदी को भीष्म साहनी ने जीवंत भाषा में चित्रित किया है। उनकी शैली मर्मस्पर्शी है।

समकालीन आत्मकथा साहित्य में दलित आत्मकथाओं का उल्लेखनीय योगदान है। ओमप्रकाश बाल्मीकि कृत 'जूठन', मोहनदास नैमिशराय कृत 'अपने-अपने पिंजरे' और कौशल्या बैसंत्री कृत 'दोहरा अभिशाप' आदि आत्मकथाओं ने इस विधा को यथार्थ अभिव्यक्ति की नई ऊँचाई पर पहुँचाया है। वर्तमान समय में महिला और दलित रचनाकारों ने इस विधा को गहरे सामाजिक सरोकारों से जोड़ा है। इस संदर्भ में मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हिंदी आत्मकथा साहित्य एक लंबी यात्रा के बाद आज उस मुकाम पर पहुँचा है जहाँ वह आत्मश्लाघा के दुर्गुण से मुक्त होकर व्यक्तिगत गुण-दोषों की सच्चाई को बयान करने में सक्षम है।

7

हिन्दी यात्रा-साहित्य का इतिहास

यात्रा-साहित्य का उद्देश्य–यात्रा करना मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्ति है। हम अगर मानव इतिहास पर नजर डालें तो पाएँगे कि मनुष्य के विकास की गाथा में यायावरी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। अपने जीवन काल में हर आदमी कभी-न-कभी कोई-न-कोई यात्रा अवश्य करता है, लेकिन सृजनात्मक प्रतिभा के धनी अपने यात्रा अनुभवों को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर यात्रा-साहित्य की रचना करने में सक्षम हो पाते हैं। यात्रा-साहित्य का उद्देश्य लेखक के यात्रा अनुभवों को पाठकों के साथ बाँटना और पाठकों को भी उन स्थानों की यात्रा के लिए प्रेरित करना है। इन स्थानों की प्राकृतिक विशिष्टता, सामाजिक संरचना, सामाज के विविध वर्गों के सह-संबंध, वहाँ की भाषा, संस्कृति और सोच की जानकारी भी इस साहित्य से प्राप्त होती है।

आरंभिक युग

हिंदी साहित्य में अन्य गद्य विधाओं की भाँति ही भारतेंदु-युग से यात्रा-साहित्य का आरंभ माना जा सकता है। उनके संपादन में निकलने वाली पत्रिकाओं में 'हरिद्वार', 'लखनऊ', 'जबलपुर', 'सरयूपार की यात्रा', 'वैद्यनाथ की यात्रा' और 'जनकपुर की यात्रा' आदि यात्रा-साहित्य प्रकाशित हुआ। इन यात्रा-वृतांतों की भाषा व्यंग्यपूर्ण है और शैली बड़ी रोचक और सजीव है। इस समय के यात्रा-वृतांतों में हम दामोदर शास्त्री कृत 'मेरी पूर्व दिग्यात्रा' (सन् 1885), देवी प्रसाद खत्री कृत

'रामेश्वर यात्रा' (सन् 1893) को महत्त्वपूर्ण मान सकते हैं किंतु यह यात्रा-साहित्य परिचयात्मक और किंचित स्थूल वर्णनों से युक्त है। बाबू शिवप्रसाद गुप्त द्वारा लिखे गए यात्रा-वृतांत 'पृथ्वी प्रदक्षिणा' (सन् 1924) को हम आरंभिक यात्रा-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान दे सकते हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता चित्रात्मकता है। इसमें संसार भर के अनेक स्थानों का रोचक वर्णन है। लगभग इसी समय स्वामी सत्यदेव परिव्राजक कृत 'मेरी कैलाश यात्रा' (सन् 1915) तथा 'मेरी जर्मन यात्रा' (सन् 1926) महत्त्वपूर्ण हैं। इन्होंने सन् 1936 में 'यात्रा मित्र' नामक पुस्तक लिखी, जो यात्रा-साहित्य के महत्त्व को स्थापित करने का काम करती है। विदेशी यात्रा-विवरणों में कन्हैयालाल मिश्र कृत 'हमारी जापान यात्रा' (सन् 1931), रामनारायण मिश्र कृत 'यूरोप यात्रा के छः मास' और मौलवी महेशप्रसाद कृत 'मेरी ईरान यात्रा' (सन् 1930) यात्रा-साहित्य के अच्छे उदाहरण हैं।

स्वतंत्रता-पूर्व युग

यात्रा-साहित्य के विकास में राहुल सांकृत्यायान का योगदान अप्रतिम है। इतिवृत्त-प्रधान शैली होने के बावजूद गुणवत्ता और परिमाण की दृष्टि से इनके यात्रा-वृतांतों की तुलना में कोई दूसरा लेखक कहीं नहीं ठहरता है। 'मेरी तिब्बत यात्रा', 'मेरी लद्दाख यात्रा', 'किन्नर देश में', 'रूस में 25 मास', 'तिब्बत में सवा वर्ष', 'मेरी यूरोप यात्रा', 'यात्र के पन्ने', 'जापान, ईरान, एशिया के दुर्गम खंडों में' आदि इनके कुछ प्रमुख यात्रा-वृतांत हैं। राहुल सांकृत्यायन के यात्रा-साहित्य में दो प्रकार की दृष्टि को साफ देखा जा सकता है। उनके एक प्रकार के लेखन में यात्राओं का केवल सामान्य वर्णन है और दूसरे प्रकार के यात्रा-साहित्य को शुद्ध साहित्यिक कहा जा सकता है। इस दूसरे प्रकार के यात्रा-साहित्य में राहुल सांकृत्यायन ने स्थान के साथ-साथ अपने समय को भी लिपिबद्ध किया है। सन् 1948 में इन्होंने 'घुम्मकड़ शास्त्र' नामक ग्रन्थ की रचना की जिससे यात्रा करने की कला को सीखा जा सकता है। इनका अधिकांश यात्रा-साहित्य सन् 1926 से 1956 के बीच लिखा गया।

स्वातंत्र्योत्तर युग

राहुल सांकृत्यायन के बाद यात्रा-साहित्य में बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि-कथाकार अज्ञेय का नाम बड़े सम्मान से लिया जाता है। अज्ञेय अपने यात्रा-साहित्य को यात्रा-संस्मरण कहना पसंद करते थे। इससे उनका आशय

यात्रा-वृतांतों में संस्मरण का समावेश कर देना था। उनका मानना था कि यात्राएँ न केवल बाहर की जाती हैं बल्कि वे हमारे अंदर की ओर भी की जाती हैं। 'अरे यायावर रहेगा याद' (सन् 1953) और 'एक बूँद सहसा उछली' (सन् 1960) उनके द्वारा लिखित यात्रा-साहित्य की प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। 'अरे यायावर रहेगा याद' में उनके भारत भ्रमण का वर्णन है और दूसरी पुस्तक 'एक बूँद सहसा उछली में' उनकी विदेशी यात्राओं को शब्दबद्ध किया गया है। अज्ञेय के यात्रा-साहित्य की भाषा गद्य भाषा के नए मुकाम तक ले जाती है।

आजादी के बाद हिंदी साहित्य में बहुतायत से यात्रा-साहित्य का सृजन हुआ। अनेक प्रगतिशील लेखकों ने इस विधा को समृद्धि प्रदान की। रामवृक्ष बेनीपुरी कृत 'पैरों में पंख बाँधकर' (सन् 1952) तथा 'उड़ते चलो उड़ते चलो', यशपाल कृत 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' (सन् 1953), भगवतशरण उपाध्याय कृत 'कलकत्ता से पेकिंग तक' (सन् 1953) तथा 'सागर की लहरों पर' (सन् 1959), प्रभाकर माचवे कृत 'गोरी नजरों में हम' (सन् 1964) उल्लेखनीय हैं। हिंदी यात्रा-साहित्य के संदर्भ में मोहन राकेश तथा निर्मल वर्मा को भी बड़े हस्ताक्षर माना जाता है। इन्होंने यात्रा-साहित्य को नए अर्थों से समन्वित किया। मोहन राकेश द्वारा लिखित 'आखिरी चट्टान तक' (सन् 1953) में दक्षिण भारत का विस्तार से वर्णन किया गया है। दक्षिण भारतीय जीवन पद्धति के विविध बिम्बों को इसमें लेखक ने यथावत् प्रस्तुत कर दिया है। इनके यात्रा-साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कहानी की-सी रोचकता और नाटक का-सा आकर्षण देखा जा सकता है। निर्मल वर्मा ने 'चीड़ों पर चाँदनी' (सन् 1964) में यूरोपीय जीवन के चित्रों को उकेरा है। निर्मल वर्मा के यात्रा-साहित्य में न केवल अपने समय का वर्णन रहता है बल्कि इतिहास और संस्कृति के अनेक बिंदुओं को भी इसमें अभिव्यक्ति मिलती है। विदेशी संदर्भों को भी उनके गद्य की सहजता बोझिल नहीं होने देती।

कोई भी लेखक अच्छा लेखक तभी बनता है जब वह जीवन को समीप से देखता है और जीवन को समीप से देखने का सबसे सरल माध्यम यात्रा करना है। रचनात्मक लेखन करने वाला हर लेखक अपने साहित्य में किसी न किसी रूप में यात्रा-साहित्य का सृजन अवश्य करता है। हमने उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण में देखा कि हिंदी में यात्रा विषयक प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। हिंदी गद्य के साथ-साथ इसने भी पर्याप्त विकास किया है। अधिकांश लेखकों ने इस विधा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है।

8

हिन्दी रिपोर्ताज का इतिहास

'रिपोर्ताज' का अर्थ एवं उद्देश्य–जीवन की सूचनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए रिपोर्ताज का जन्म हुआ। रिपोर्ताज पत्रकारिता के क्षेत्र की विधा है। इस शब्द का उद्‌भव फ्रांसीसी भाषा से माना जाता है। इस विधा को हम गद्य विधाओं में सबसे नया कह सकते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय यूरोप के रचनाकारों ने युद्ध के मोर्चे से साहित्यिक रिपोर्ट तैयार की। इन रिपोर्टों को ही बाद में रिपोर्ताज कहा गया। वस्तुत: यथार्थ घटनाओं को संवेदनशील साहित्यिक शैली में प्रस्तुत कर देने को ही रिपोर्ताज कहा जाता है।

आरंभिक युग

हिंदी खड़ी बोली गद्य के आरंभ के साथ ही अनेक नई विधाओं का चलन हुआ। इन विधाओं में कुछ तो सायास थीं और कुछ के गुण अनायास ही कुछ गद्यकारों के लेखन में आ गए थे। वास्तविक रूप में तो रिपोर्ताज का जन्म हिंदी में बहुत बाद में हुआ लेकिन भारतेंदुयुगीन साहित्य में इसकी कुछ विशेषताओं को देखा जा सकता है। उदाहरण स्वरूप, भारतेंदु ने स्वयं जनवरी, 1877 की 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में दिल्ली दरबार का वर्णन किया है, जिसमें रिपोर्ताज की झलक देखी जा सकती है। रिपोर्ताज लेखन का प्रथम सायास प्रयास शिवदान सिंह चौहान द्वारा लिखित 'लक्ष्मीपुरा' को मान जा सकता है। यह सन् 1938 में 'रूपाभ' पत्रिका में प्रकाशित हुआ। इसके कुछ समय बाद ही 'हंस' पत्रिका में

उनका दूसरा रिपोर्ताज 'मौत के खिलाफ जिन्दगी की लड़ाई' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। हिंदी साहित्य में यह प्रगतिशील साहित्य के आरंभ का काल भी था। कई प्रगतिशील लेखकों ने इस विधा को समृद्ध किया। शिवदान सिंह चौहान के अतिरिक्त अमृतराय और प्रकाशचंद गुप्त ने बड़े जीवंत रिपोर्ताजों की रचना की।

रांगेय राघव रिपोर्ताज की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ लेखक कहे जा सकते हैं। सन् 1946 में प्रकाशित 'तूफानों के बीच में' नामक रिपोर्ताज में इन्होंने बंगाल के अकाल का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। रांगेय राघव अपने रिपोर्ताजों में वास्तविक घटनाओं के बीच में से सजीव पात्रों की सृष्टि करते हैं। वे गरीबों और शोषितों के लिए प्रतिबद्ध लेखक हैं। इस पुस्तक के निर्धन और अकाल पीड़ित निरीह पात्रों में उनकी लेखकीय प्रतिबद्धता को देखा जा सकता है। लेखक विपदाग्रस्त मानवीयता के बीच संबल की तरह खड़ा दिखाई देता है।

स्वातंत्र्योत्तर युग

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के रिपोर्ताज लेखन का हिंदी में चलन बढ़ा। इस समय के लेखकों ने अभिव्यक्ति की विविध शैलियों को आधार बनाकर नए प्रयोग करने आरंभ कर दिए थे। रामनारायण उपाध्याय कृत 'अमीर और गरीब' रिपोर्ताज संग्रह में व्यंग्यात्मक शैली को आधार बनाकर समाज के शाश्वत विभाजन को चित्रित किया गया है। फणीश्वरनाथ रेणु के रिपोर्ताजों ने इस विधा को नई ताजगी दी। 'ऋण जल धन जल' रिपोर्ताज संग्रह में बिहार के अकाल को अभिव्यक्ति मिली है और 'नेपाली क्रांतिकथा' में नेपाल के लोकतांत्रिक आंदोलन को कथ्य बनाया गया है।

अन्य महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताजों में Hkanr आनंद कौशल्यायन कृत 'देश की मिट्टी बुलाती है', धर्मवीर भारती कृत 'युद्धयात्रा' और शमशेर बहादुर सिंह कृत 'प्लाट का मोर्चा' का नाम लिया जा सकता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अपने समय की समस्याओं से जूझती जनता को हमारे लेखकों ने अपने रिपोर्ताजों में हमारे सामने प्रस्तुत किया है। लेकिन हिंदी रिपोर्ताज के बारे में यह भी सच है कि इस विधा को वह ऊँचाई नहीं मिल सकी जो कि इसे मिलनी चाहिए थी।

9

हिन्दी रेखाचित्र का इतिहास

रेखाचित्र का अर्थ–'रेखाचित्र' शब्द अंग्रेजी के 'स्कैच' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। जैसे 'स्कैच' में रेखाओं के माध्यम से किसी व्यक्ति या वस्तु का चित्र प्रस्तुत किया जाता है, ठीक वैसे ही शब्द रेखाओं के माध्यम से किसी व्यक्ति के व्यक्तित्त्व को उसके समग्र रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। ये व्यक्तित्त्व प्रायः वे होते हैं जिनसे लेखक किसी न किसी रूप में प्रभावित रहा हो या जिनसे लेखक की घनिष्ठता अथवा समीपता हो।

आरंभिक युग

रेखाचित्र को स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित करने का श्रेय पद्म सिंह शर्मा कृत 'पद्म पराग' को दिया जा सकता है। 'पद्म पराग' में संस्मरणात्मक निबंधों और रेखाचित्रों का संकलन है। इन रेखाचित्रों में समकालीन महत्त्वपूर्ण लोगों को विषय बनाया गया है। पद्म सिंह शर्मा से प्रभावित होकर श्रीराम शर्मा, हरिशंकर शर्मा और बनारसीदास चतुर्वेदी आदि ने रेखाचित्र लिखने आरंभ किए। श्रीराम शर्मा के रेखाचित्रों का प्रथम संग्रह 'बोलती प्रतिमा' शीर्षक से सन् 1937 में प्रकाशित हुआ। इसकी विशेषता यह है कि इसमें समाज के निम्नवर्ग के पात्रों का सजीव चित्रण हुआ है।

बनारसीदास चतुर्वेदी के रेखाचित्रों की शैली सरस और व्यंग्यपूर्ण है। रेखाचित्र के स्वरूप के बारे में इन्होंने सैद्धांतिक विवेचन भी किया है। इनका

कथन है कि, ''जिस प्रकार एक अच्छा चित्र खींचने के लिए कैमरे का लैंस बढ़िया होना चाहिए और फिल्म भी काफी कोमल या सैंसिटिव, उसी प्रकार साफ चित्रण के लिए रेखाचित्रकार में विश्लेषणात्मक बुद्ध तथा भावुकतापूर्ण हृदय दोनों का सामंजस्य होना चाहिए पर-दु:खकातरता, संवेदनशीलता, विवेक और संतुलन इन सब गुणों की आवश्यकता है।'' नि:संदेह बनारसीदास चतुर्वेदी के लेखन में उपर्युक्त सभी विशेषताएँ हम देख सकते हैं। राष्ट्रीयता की भावना के साथ-साथ वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को इनके रेखाचित्रों में देखा जा सकता है। इनके रेखाचित्र 'हमारे साथी' और 'प्रकृति के प्रागंण' नामक ग्रंथों में संकलित हैं।

उत्कर्ष युग

रामवृक्ष बेनीपुरी निर्विवाद रूप से हिंदी के सर्वश्रेष्ठ रेखाचित्रकार माने जाते हैं। इनके रेखाचित्रों में हम सरल भाषा शैली में सिद्धहस्त कलाकारी को देख सकते हैं। परिमाण की दृष्टि से इन्होंने अनेक रेखाचित्रों की रचना की है। 'माटी की मूरतें' (सन् 1946) संग्रह से इन्हें विशेष ख्याति मिली। इस संग्रह में इन्होंने समाज के उपेक्षित पात्रों को गढ़कर नायक का दर्जा दे दिया। उदाहरण स्वरूप 'रजिया' नामक रेखाचित्र के माध्यम से निम्नवर्ग की एक बालिका को जीवंत कर दिया गया है। इस संग्रह के अन्य रेखाचित्रों में बलदेव सिंह, मंगर, बालगोबिन भगत, बुधिया, सरजू भैया प्रमुख हैं। इन रेखाचित्रों की श्रेष्ठता का अनुमान मैथिलीशरण गुप्त के इस कथन से लगाया जा सकता है, ''लोग माटी की मूरतें बनाकर सोने के भाव बेचते हैं पर बेनीपुरी सोने की मूरतें बनाकर माटी के मोल बेच रहे हैं।'' सन् 1950 में रामवृक्ष बेनीपुरी का दूसरा रेखाचित्रसंग्रह 'गेहूँ और गुलाब' प्रकाशित हुआ। इसमें इनके 25 रेखाचित्र संकलित हैं। कलेवर की दृष्टि से लेखक ने इन्हें अपने पुराने रेखाचित्रों की अपेक्षा छोटा रखा है। रामवृक्ष बेनीपुरी के रेखाचित्रों की भाषा भावना प्रधान है। कुछ आलोचक तो उनकी भाषा को गद्य काव्य की संज्ञा भी दे चुके हैं। बेनीपुरी के रेखाचित्रों के बारे में संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इन्हें जीवन में जो भी पात्र मिले इन्होंने अपनी कुशल लेखनी से उन्हें जीवंत कर दिया। विषय की विविधता और शैली की सरसता का इनके यहाँ अपूर्व संयोजन मिलता है।

महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों ने विधा के रूप में संस्मरण और रेखाचित्र की सीमाओं का उल्लंघन किया। उनके लेखन को संस्मरणात्मक रेखाचित्रों की श्रेणी

में रखा जा सकता है। 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी' और ' शृंखला की कड़ियाँ' इनके संग्रह हैं। 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' में समाज के शोषित वर्ग और नारी के प्रति इनकी सहानुभूति प्रकट हुई है। 'पथ के साथी' में इन्होंने अपने साथी साहित्यकारों के चित्रों को लिपिबद्ध किया है। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर को शैली की दृष्टि से रामवृक्ष बेनीपुरी के समान ही सम्मान प्राप्त है। इनके बहुविध विषयों में जीवन की प्रेरणा देने वाले रेखाचित्रों की भरमार है। 'भूले हुए चेहरे', 'बाजे पायलिया के घुंघरू', 'जिन्दगी मुस्काई', 'दीप जले शंख बजे', 'क्षण बोले कण मुस्काए', 'महके आँगन चहके द्वार' और 'माटी हो गई सोना' इनके रेखाचित्रों के संग्रह हैं।

प्रकाशचंद्र गुप्त ने इस विधा को स्थापित करने के लिए 'रेखाचित्र' नाम से ही संकलन प्रकाशित कराया। इनके रेखाचित्रों की विशेषता यह है कि इन्होंने अपने विषयों को मनुष्य की परिधि से बाहर ले जाते हुए पेड़-पौधों तथा पशु-पक्षियों तक को अपने रेखाचित्रों में स्थान दिया है।

विष्णु प्रभाकर के रेखाचित्र 'जाने-अनजाने', 'कुछ शब्द कुछ रेखाएँ' और 'हँसते निर्झर दहकती भट्टी' में संकलित हैं। इनके रेखाचित्रों में विशाल कैनवस पर सामाजिक सजगता के साथ मानवीय चित्र उकेरे गए हैं। इनके अन्य समकालीन रेखाचित्रकारों में देवेंद्र सत्यार्थी, डॉ. नगेन्द्र, विनयमोहन शर्मा, जगदीशचंद्र माथुर आदि का नाम लिया जा सकता है। समकालीन हिंदी साहित्य में रचनाकारों ने विधा के बंधनों को थोड़ा शिथिल किया है। आज हम परंपरागत मानदंडों पर कसकर कई विधाओं को नहीं देख सकते। रेखाचित्र विधा का भी रूप बदला है। उसको हम कहीं कहानी के भीतर तो कहीं संस्मरण अथवा आत्मकथा के भीतर अन्तर्भुक्त पाते हैं और कहीं स्वतंत्र विधा के रूप में भी देख सकते हैं। हिंदी रेखाचित्र ने अपनी सीमाओं का लगातार अतिक्रमण किया है। यह इस विधा के भविष्य के लिए शुभ संकेत है। रेखाचित्र का अर्थ–'रेखाचित्र' शब्द अंग्रेजी के 'स्कैच' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। जैसे 'स्कैच' में रेखाओं के माध्यम से किसी व्यक्ति या वस्तु का चित्र प्रस्तुत किया जाता है, ठीक वैसे ही शब्द रेखाओं के माध्यम से किसी व्यक्ति के व्यक्तित्त्व को उसके समग्र रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। ये व्यक्तित्त्व प्रायः वे होते हैं जिनसे लेखक किसी न किसी रूप में प्रभावित रहा हो या जिनसे लेखक की घनिष्ठता अथवा समीपता हो।

10

हिन्दी व्यंग्य का इतिहास

व्यंग्य का जन्म अपने समय की विद्रूपताओं के भीतर से उपजे असंतोष से होता है। विद्वानों में इस बात पर मतभेद लगातार बना रहा है कि व्यंग्य को एक अलग विधा माना जाए या कि वह किसी भी विधा के भीतर 'स्पिरिट' के रूप में मौजूद रहे। दरअसल व्यंग्य एक माध्यम है जिसके द्वारा व्यंग्यकार जीवन की विसंगतियों, खोखलेपन और पाखंड को दुनिया के सामने उजागर करता है। जिनसे हम सब परिचित तो होते हैं किंतु उन स्थितियों को दूर करने, बदलने की कोशिश नहीं करते बल्कि बहुधा उन्हीं विद्रूपताओं-विसंगतियों के बीच जीने की, उनसे समझौता करने की आदत बना लेते हैं। व्यंग्यकार अपनी रचनाओं में ऐसे पात्रों और स्थितियों की योजना करता है, जो इन अवांछित स्थितियों के प्रति पाठकों को सचेत करते हैं। जैसा कि 'व्यंग्य' नाम से ही स्पष्ट है, इस विधा में सामाजिक विसंगतियों का चित्रण सीधे-सीधे (अभिधा में) न होकर प्रेक्षत: (व्यंजना के माध्यम से) होता है। इसीलिए व्यंग्य में मारक क्षमता अधिक होती है।

आरंभिक युग

हिंदी में संत-साहित्य से व्यंग्य का आरंभ माना जा सकता है। कबीर व्यंग्य के आदि प्रणेता हैं। उन्होंने मध्यकाल की सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्यपूर्ण शैली में प्रहार किया है। जाति-भेद, हिंदू-मुस्लमानों के धर्माडंबर, गरीबी-अमीरी, रूढ़िवादिता आदि पर कबीर के व्यंग्य बड़े मारक हैं।

'जो तू बामन-बमनी जाया। आन द्वार काहे नहिं आया'।,

'क्या तेरा साहिब बहरा है',

'कांकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई चुनाय। ता चढ़ि मुल्ला बांगि दे क्या बहरा हुआ खुदाय'

आदि अनेक उद्धरण कबीर की व्यंग्य-क्षमता के प्रमाण हैं। लेकिन उत्तर-मध्यकालीन सामंती समाज कबीर आदि संतों के समाज-बोध को समझ पाने में असफल रहा और पूरे रीतिकाल में व्यंग्य रचनाओं की उपस्थिति नगण्य रही। कबीर के बाद भारतेंदु ने सामाजिक विषमताओं के प्रति व्यंग्य को हथियार बनाया। अंग्रेजों के खिलाफ लिखते हुए वे कहते हैं, ''होय मनुष्य क्यों भये, हम गुलाम वे भूप।'' इस पंक्ति में औपनिवेशिक भारत की मूल समस्या हमें दिखाई देती है। पराधीन भारत की समस्याएँ वर्तमान भारत से अलग थीं। 'अंधेर नगरी' और 'मुकरियों' में गुलाम भारत की विडंबनापूर्ण परिस्थितियों, अंग्रेजी साम्राज्यवाद और उनकी शोषक दृष्टि के प्रति आक्रोश को देखा जा सकता है। भारतेंदु-युग के अन्य महत्त्वपूर्ण व्यंग्यकार बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' और प्रतापनारायण मिश्र हैं। किंतु प्रेमघन की कृति 'हास्यबिंदु' और प्रतापनारायण मिश्र के निबंधों में व्यंग्य सहायक प्रवृत्ति के रूप में मौजूद है। व्यंग्य इनकी रचनाओं में केंद्रीय भूमिका का निर्वहन नहीं करता है। व्यंग्य का पूर्ण उन्मेष इनके बाद के व्यंग्य रचनाकार बालमुकुंद गुप्त की रचनाओं में दिखाई देता है। 'शिवशंभु के चिट्ठे' नामक अपनी प्रसिद्ध व्यंग्य लेखमाला में इन्होंने समसामयिक परिस्थितियों पर तीव्र व्यंग्य किए। राजनीति और तत्कालीन शासन-व्यवस्था से टकराव इनकी व्यंग्य रचनाओं की आधार सामग्री का काम करते हैं।

स्वतंत्रता-पूर्व युग

युगीन समस्याओं पर व्यंग्य करने की प्रवृत्ति प्रेमचंद में भी बहुत मिलती है। इन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों में आम आदमी और कृषक् वर्ग की दैनंदिन कठिनाइयों पर करारा व्यंग्य किया है। प्रेमचंद के बाद के रचनाकारों में निराला साहित्य में इसे देखा जा सकता है। इनकी 'कुकुरमुत्ता' आदि रचनाओं में व्यंग्य की अभिव्यक्ति विद्रूपता फैलाने वाले समाज के खिलाफ चुनौती के रूप में हुई है। इनके अलावा स्वतंत्रता-पूर्व के रचनाकारों में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' और रांगेय राघव का नाम भी लिया जा सकता है, लेकिन इन लेखकों में व्यंग्य की वह धार नहीं है, जो हमें भारतेंदु अथवा बालमुकुंद गुप्त की रचनाओं में दिखाई देती है।

स्वातंत्र्योत्तर युग

सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ और देश की आजादी के साथ ही आम आदमी खुशहाली के सपने देखने लगा। लेकिन विपरीत परिस्थितियों और राजनीतिक अदूरदर्शिता के कारण आम आदमी के ये सपने पूरे नहीं हो सके। स्वतंत्रता के बाद भारत में समाज, राजनीति, धर्म, शिक्षा, आदि सभी क्षेत्रों में असंगतियाँ बढ़ी हैं। सामाजिक-नैतिक मूल्यों का पतन हुआ है। आम आदमी के लिए शांतिपूर्वक जीवन जीने के अवसर कम हुए हैं। सत्य, सदाचरण, ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठा आदि शाश्वत मूल्यों का स्थान अनेक विसंगतियों ने ले लिया है। आजादी पूर्व देखे गए स्वप्न तो बीसवीं शताब्दी के छठे दशक तक आते-आते ही खण्डित हो गए। गुलाम भारत में होने वाले शोषण-अत्याचार आजादी के बाद कम होने के बजाय और अधिक बढ़ गए। व्यक्ति और समाज की आंतरिक जटिलताओं के साथ-साथ अन्तर्विरोध भी बढ़े हैं। व्यक्ति निजी स्वार्थ तक सीमित होकर रह गया है। ये विसंगतियाँ और जटिलताएँ व्यंग्य के लिए आधारभूमि बनीं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में व्यंग्य का पर्याप्त सृजन हुआ है। निरन्तर बढ़ती सामाजिक विषमताओं से विक्षुब्ध होकर करुणापूर्ण व्यंग्य लेखन की एक लम्बी परम्परा मिलती है। हरिशंकर परसाई इस परम्परा के प्रतिनिधि रचनाकार हैं।

परसाई की रचनाएं 'आजाद भारत का सृजनात्मक इतिहास' कही जा सकती हैं। इन रचनाओं का वर्तमान भारत की यथार्थ स्थितियों के संदर्भ में ही आकलन किया जा सकता है। सामान्य सामाजिक स्थितियों को परसाई ने वैचारिक चिन्तन से पुष्ट करके प्रस्तुत किया है। स्वतंत्र भारत के सकारात्मक-नकारात्मक सभी पहलुओं की परसाई ने बखूबी पड़ताल की है। परसाई की रचनाओं में उस पीड़ित भारत की छटपटाहट को महसूस किया जा सकता है, जो शोषकों के तिलिस्म में कैद है। शोषक इस तिलिस्म को बनाए रखने के लिए तरह-तरह के छद्म करते हैं। इन छद्मों का खुलासा परसाई करते हैं। अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता और सतर्क वैज्ञानिक दृष्टि के कारण परसाई छद्म के उन सभी रूपों को आसानी से पहचान लेते हैं जिन तक सामान्यत: रूढ़िवादी दृष्टि नहीं पहुँच पाती। परसाई का रचना संसार बहुत व्यापक है। निजी अनुभूतियों की निर्वैयक्तिक अभिव्यक्ति उनके व्यंग्य लेखन की विशिष्टता है। परसाई की सृजनशील दृष्टि निम्नवर्गीय सामान्य आदमी से प्रारम्भ होकर बहुराष्ट्रीय समस्याओं तक को अपने भीतर समेटती है। परसाई व्यंग्य के माध्यम से सृजन और संहार

दोनों एक साथ करते हैं। परसाई का व्यंग्य जब शोषक वर्ग के प्रति होता है तो वह उस वर्ग के प्रति घृणा और आक्रोश उत्पन्न करता है, लेकिन जब वही व्यंग्य अभावग्रस्त व्यक्ति पर होता है तो करुणा पैदा करता है।

परसाई के व्यंग्य लेखन की भाषा सप्रयास नहीं है। उनका मानना है कि समाज में रहने के कारण वह हमें अनुभव देता है और विषयानुरूप नई भाषा सिखाता है। यही कारण है कि परसाई की भाषा उनके कथ्य का अनुसरण करती हैं।

शरद जोशी भी परसाई की ही तरह एक अलग भाषाई तेवर के साथ व्यंग्य लेखन करते हैं। शिल्प की सजगता इनके व्यंग्य लेखन की विशेषता है। भाषा में वक्रता के द्वारा ये शब्दों और विशेषणों का विशिष्ट संयोजन करते हैं।

श्रीलाल शुक्ल का नाम भी स्वातंत्र्योत्तर व्यंग्य लेखन में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। इनके उपन्यास 'रागदरबारी' ने मोहभंग की स्थितियों के यथार्थ को सजीव रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। रवींद्रनाथ त्यागी का लेखन आत्म-व्यंग्य के कारण महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इनके लेखन को हम हास्य और व्यंग्य का संयोजन कह सकते हैं। यह न सिर्फ पाठक को प्रफुल्लित करता है बल्कि उसे सोचने के लिए बाध्य भी करता है।

लतीफ घोंघी के व्यंग्य में राजनीतिक और सामाजिक यथार्थ को विषय बनाया गया है। इनके व्यंग्य में मारकता का अभाव है, किंतु इनका कथ्य बहुत व्यापक है। नारी-शोषण, कालाबाजारी, भुखमरी, शैक्षिक-साहित्यिक दुनिया की गड़बड़ियाँ आदि विषयों के साथ-साथ इन्होंने आम आदमी की दैनिक परेशानियों को अपने व्यंग्यों में स्थान दिया है। भाषा में उर्दू का पुट है।

सामाजिक मूल्यों के विघटन को केंद्र में रखकर समकालीन साहित्यिक परिदृश्य में व्यंग्य का लगातार सृजन हो रहा है। वर्तमान महत्त्वपूर्ण व्यंग्य लेखकों में नरेन्द्र कोहली, प्रेम जनमेजय, हरीश नवल, ज्ञान चतुर्वेदी, अशोक शुक्ल और शंकर पुणतांबेकर, गिरीश पन्कज आदि का नाम लिया जा सकता है। नरेन्द्र कोहली ने अपने व्यंग्यों में नए प्रयोगों पर विशेष ध्यान दिया है। इनके व्यंग्यों का असंगत शिल्प इन्हें अपने समकालीनों में विशिष्ट बनाता है। आज व्यंग्य को सामाजिक सतर्कता के हथियार के रूप में देखा जाता है। नए व्यंग्यकारों में आलोक पुराणिक, सुशील सिद्धार्थ, दीपक श्रीवास्तव, सुभाष चंदर, अरुण अर्णव खरे, पिलकेंद्र अरोडा, रामकिशोर उपाध्याय, डा. स्नेहलता पाठक, ब्रजेश कानूनगो, पीयूष पांडे, निर्मल गुप्त, अशोक मिश्र, अलंकार रस्तोगी, केके

अस्थाना, देवेंद्र सिंह सिसोदिया, आरिफा एविस, मलय, शशिकांत सिंह शशि, अशोक गौतम, आदि प्रमुख हैं।

व्यंग्य आलोचना

हिंदी व्यंग आलोचना परम्परा में सबसे पहले जी.पी श्रीवास्तव का नाम लिया जाता है जिन्होंने हास्य व्यंग्य आलोचना की प्रारंभिक अवधारणाएं हमारे सामने प्रस्तुत की इसके बाद डॉ श्यामसुंदर घोष, डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी, डॉ शेरजंग गर्ग, डॉ. शंकर पुताम्बेकर, बालेंद्र शेखर तिवारी, नंदलाल, डॉ. सुरेश महेश्वरी, डॉ. हरिशंकर दुबे, डॉ. भगवान दास काहार, बापूराव देसाई, मधुसूदन पाटिल, डॉ.रमेश तिवारी, सुरेश कान्त, सुभाष चंद्र, प्रेम जन्मेजय, गौतम सान्याल इत्यादि ने व्यंग्य आलोचना में मुख्य भूमिका निभाई है। इसके बावजूद भी मुख्यधारा के आलोचकों में डॉ. धनंजय, डॉ मलय इत्यादि आलोचकों भी समय के लिए सक्रिय होकर व्यंग्य आलोचना को प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से समृद्ध किया है।

11

हिन्दी संस्मरण का इतिहास

संस्मरण और रेखाचित्र में बहुत सूक्ष्म अंतर है। कुछ विद्वानों ने तो इन दोनों विधाओं को एक-दूसरे की पूरक विधा भी कहा है। संस्मरण का सामान्य अर्थ होता है सम्यक् स्मरण। सामान्यत: इसमें चारित्रिक गुणों से युक्त किसी महान व्यक्ति को याद करते हुए उसके परिवेश के साथ उसका प्रभावशाली वर्णन किया जाता है। इसमें लेखक स्वानुभूत विषय का यथावत अंकन न करके उसका पुनर्सृजन करता है। रेखाचित्र की तरह यह वर्ण्य विषय के प्रति तटस्थ नहीं होता। आत्मकथात्मक विधा होते हुए भी संस्मरण आत्मकथा से पर्याप्त भिन्नता रखता है।

आरंभिक युग

बालमुकुंद गुप्त द्वारा सन् 1907 में प्रतापनारायण मिश्र पर लिखे संस्मरण को हिंदी का प्रथम संस्मरण माना जाता है। बाद में इस काल की एकमात्र संस्मरण पुस्तक 'हरिऔध' पर केंद्रित गुप्त जी द्वारा लिखित 'हरिऔध' के संस्मरण' के नाम से प्रकाशित हुई। इसमें हरिऔध को वर्ण्य विषय बनाकर पंद्रह संस्मरणों की रचना की गई है।

द्विवेदी युग

हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं ने गद्य विधाओं के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। 'सरस्वती' में स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कई संस्मरण

लिखे। उन्होंने अपने साथी लेखकों को नई गद्य विधाओं के लिए प्रेरित भी किया। इस समय के प्रमुख संस्मरण लेखकों में द्विवेदी जी के अतिरिक्त रामकुमार खेमका, काशीप्रसाद जायसवाल और श्यामसुंदर दास हैं। श्यामसुंदर दास ने लाला भगवानदीन पर रोचक संस्मरण लिखे। अपने समकालीन साहित्यकारों पर उस समय से आरंभ हुई परंपरा आज तक लगातार चल रही है।

छायावादोत्तर युग

रेखाचित्र की तरह ही संस्मरण को गद्य की विशिष्ट विधा के रूप में स्थापित करने की दिशा में भी पद्म सिंह शर्मा (1876-1932) का महत्त्वपूर्ण योगदान माना जाता है। इनके संस्मरण 'प्रबंध मंजरी' और 'पद्म पराग' में संकलित हैं। महाकवि अकबर, सत्यनारायण कविरत्न और भीमसेन शर्मा आदि पर लिखे हुए इनके संस्मरणों ने इस विधा को स्थिरता प्रदान करने में मदद की। विनोद की एक हल्की रेखा इनकी पूरी रचनाओं के भीतर देखी जा सकती है।

महादेवी वर्मा ने अपने संस्मरणों में अपने जीवन में आए अनमोल पलों को अपने 'पथ के साथी' में संकलित किया है। अपने समकालीन साहित्यकारों पर इन रेखाचित्रों में अब तक किसी भी लेखक द्वारा लिखी गई सर्वश्रेष्ठ टिप्पणी कहें तो इसमें कोई अतिशयोक्ति की बात न होगी।

निराला के 'बिल्लेसुर बकरिहा' और 'कुल्लीभाट' में संस्मरण और रेखाचित्र का अनुपम संयोग हुआ है। इन्हें किसी एक विधा के अन्तर्गत रखना संभव नहीं है, लेकिन अपनी सजीवता और व्यंग्य के कारण इन्हें अप्रतिम कहा जा सकता है।

प्रकाशचंद गुप्त ने 'पुरानी स्मृतियाँ' नामक संग्रह में अपने संस्मरणों को लिपिबद्ध किया। इलाचंद्र जोशी कृत 'मेरे प्राथमिक जीवन की स्मृतियाँ' और वृंदावनलाल वर्मा कृत 'कुछ संस्मरण' इस काल की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

❐❐❐